हिन्दी-सार

रामप्रसाद एण्ड संस, आगरा

हिन्दी-सार

[हाई स्कूल तथा समकक्ष कक्षाओं के लिए
जनरल हिन्दी की पुस्तक]

लेखक

आचार्य श्यामबिहारी विरागी, एम०ए०, एम०एल०सी०,
प्रधानाचार्य, टाउन इण्टर कॉलेज, बलिया

अखिलेशचन्द्र उपाध्याय, एम०ए०,
प्रधानाचार्य, राज इण्टर कॉलेज, जौनपुर

कु० सन्दोहिनी सक्सेना, एम०ए०, एम०एड्०,
प्रवक्ता, हिन्दी-विभाग, करामतहुसैन गर्ल्स कॉलेज, लखनऊ

तथा

गंगासहाय 'प्रेमी'
के० ई० एम० वी० इण्टर कॉलेज, अतरौली (अलीगढ़)

रामप्रसाद एण्ड सन्स
पुस्तक-प्रकाशक : आगरा

प्रथम संस्करण जनवरी १९५८, द्वितीय संस्करण अगस्त १९५८
तृतीय संस्करण अगस्त १९५९

मूल्य : दो रुपये पचास नये पैसे

मुद्रक
नरसिंहनाथ भार्गव, बी० एस-सी०
दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा

हिन्दी, अँग्रेजी, बंगला, मराठी का गम्भीर अध्ययन किया। साहित्यिक रुचि के कारण आपको रेलवे की नौकरी में सन्तोष नहीं था। हिन्दी की उन्नति होती न देखकर आपने नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया। उन्हीं दिनों इण्डियन प्रेस, प्रयाग से 'सरस्वती' नामक पत्रिका निकली। आपने इसके सम्पादन का काम संभाल लिया। इन सेवाओं से प्रसन्न होकर 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' ने आपको 'आचार्य' की और 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' ने 'विद्या-वाचस्पति' की उपाधियों से विभूषित किया। आप इन दोनों संस्थाओं के सभापति भी रहे। आपका देहान्त संवत् १९९५ में हुआ।

रचनाएँ—द्विवेदी जी की रचनाएँ मौलिक एवं अनूदित दोनों प्रकार की हैं। 'अद्भुत अलाप', 'रसज्ञ-रंजन', 'साहित्य-सीकर', विचित्र-चित्रण', आदि आपके निबन्धों के संग्रह हैं। 'कालिदास की निरंकुशता', 'सम्पत्ति-शास्त्र' तथा 'हिन्दी भाषा की उत्पत्ति' आपकी स्वतन्त्र रचनाएँ हैं। आपने संस्कृत के 'कुमारसम्भव', 'रघुवंश', 'किरातार्जुनीय' और 'महाभारत' का हिन्दी में अनुवाद किया। अँग्रेजी से अनुवाद की गई आपकी पुस्तकें हैं 'बेकन-विचारमाला', 'शिक्षा', और 'स्वाधीनता'। आपकी वास्तविक ख्याति तो 'सरस्वती' के सम्पादन के परिणामस्वरूप ही हुई।

भाषा—द्विवेदी जी गद्य के लिये बोलचाल की, किन्तु व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध, सरल भाषा लिखने के पक्षपाती थे। भाषा में प्रवाह लाने के लिये आपने उर्दू, फारसी, अँग्रेजी के शब्दों तथा मुहावरों का प्रयोग भी किया है। आपकी भाषा भावानुकूल रहती है अतः गम्भीर विषयों पर लिखते समय वह संस्कृत-प्रधान हो गई है। अशुद्धियों को दूर कर तथा काँट-छाँट करके संशोधित भाषा को ही सामने लाने के कारण मानो आप भाषा-सम्राट हो गये हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को यदि हिन्दी-गद्य का जन्मदाता कहा जाये तो द्विवेदी जी को उसका पालनकर्ता कहना चाहिये। आपने स्वयं शुद्ध एवं परिमार्जित भाषा का प्रयोग करने के साथ-साथ दूसरों को वैसा ही करने के लिए प्रोत्साहित किया। द्विवेदी जी ने बहुत से ऐसे लेखकों और कवियों को कलम पकड़ कर लिखना सिखाया, जो आज हिन्दी-साहित्य में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं।

शैली—जिस समय द्विवेदी जी ने साहित्य-क्षेत्र में पदार्पण किया उस समय

तक बहुत कम विषयों पर निबन्ध लिखे गये थे। जो कुछ साहित्य-र[चना] भी रही थी उस पर आलोचना करने वाला कोई न था। खोज सम्बन्धी तो कोई लिखा ही न गया था अतः इस नई दिशा की ओर द्विवेदी जी अग्रसर हुए तथा उपर्युक्त तीनों प्रकार के अनेक निबन्ध लिखे। इन तीन प्रकार के विषयों के अनुरूप आपने तीन प्रकार की शैलियाँ अपनाई हैं—(१) परिचयात्मक, (२) आलोचनात्मक, और (३) गवेषणात्मक।

(१) **परिचयात्मक**—इस शैली के अन्तर्गत वे निबन्ध हैं जिनका उद्देश्य पाठकों में साहित्यिक रुचि उत्पन्न करना, उनको नये विषयों से अवगत कराना तथा नवीन लेखकों को प्रोत्साहन देना था। ऐसे निबन्धों की भाषा सरल एवं व्यावहारिक है। एक ही भाव को कई ढङ्ग से उन्होंने व्यक्त किया है जिससे बात साधारण पाठक की समझ में भी आ जाये। इन निबन्धों में हास्य-व्यङ्ग की प्रधानता है। उर्दू शब्दों का प्रयोग भी आपने खूब किया है।

(२) **आलोचनात्मक**—द्विवेदी जी के आलोचनात्मक निबन्धों की भाषा अधिक साहित्यिक, उर्दू-संस्कृत के तत्सम शब्दों से पूर्ण तथा शैली गम्भीर और संयत है किन्तु कहीं-कहीं आलोचना करने में यह बहुत व्यङ्ग-युक्त और कटाक्ष-पूर्ण है। इसका कारण उनकी स्पष्टवादिता है। द्विवेदी जी के ये लेख बहुत ओजपूर्ण हैं अतः प्रभावपूर्ण भी हैं।

(३) **गवेषणात्मक**—इस शैली के अन्तर्गत वे निबन्ध हैं जिनकी भाषा शुद्ध संस्कृत शब्दों से पूर्ण है। यह शैली शिष्ट, संयत और गम्भीर है। इसमें भी कहीं-कहीं तो अत्यन्त सरल एवं छोटे-छोटे वाक्य हैं किन्तु कहीं-कहीं दुरूहता आ गई है परन्तु वह दुरूहता ऐसी नहीं है जिसे अस्वाभाविक कहा जा सके और भाव समझने में कठिनता हो।

द्विवेदी जी की रचना-शैली से ही प्रेरणा लेकर अनेक लेखकों ने लिखा है।

४. डा० श्यामसुन्दरदास

परिचय—डा० श्यामसुन्दरदास जी का जन्म बनारस में संवत् १९३२ में एक पंजाबी खत्री घराने में हुआ। आपके पूर्वज लाहौर से आकर यहाँ बस गये थे। आपकी शिक्षा संस्कृत-व्याकरण और धार्मिक ग्रन्थों के द्वारा आरम्भ

ग्रहण करने के बाद आप बहुत दिन तक सेण्ट जॉन्स कालेज में हिन्दी के अवैतनिक अध्यापक रहे । आजकल आप स्वतन्त्र रूप से साहित्य-सेवा कर रहे हैं ।

गुलाबराय जी हिन्दी के उच्चकोटि के निबन्धकार हैं । कला और साहित्य पर आपका अधिकार है । आप तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान के भी पंडित हैं । गुलाबराय जी के दार्शनिक निबन्ध हिन्दी-साहित्य में अनोखे हैं ।

गुलाबराय जी कई वर्ष आगरे से प्रकाशित 'साहित्य-सन्देश' मासिक पत्र के सम्पादक रहे हैं । आपकी सबसे बड़ी देन है छात्रोपयोगी निबन्ध । छात्रों के हित की दृष्टि से डा० श्यामसुन्दरदास के बाद आपका ही नम्बर है । अब तक आपने हिन्दी की जो सेवाएँ की हैं, उनसे आपका स्थान हिन्दी-साहित्य में गौरवपूर्ण बन गया है । आपकी इन्हीं साहित्यिक सेवाओं का सम्मान करते हुए आगरा विश्वविद्यालय ने सन् १९५७ में आपको "साहित्याचार्य" (डी० लिट्०) की उपाधि से विभूषित किया । आप हिन्दी साहित्य सम्मेलन व ब्रजभाषा सम्मेलन के प्रधान रह चुके हैं ।

रचनाएँ—गुलाबराय जी हिन्दी के एक सफल निबन्धकार हैं । मौलिक रचनाओं के अतिरिक्त आपने कई पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद भी किया है । आपकी मौलिक पुस्तकों में 'तर्कशास्त्र', 'कर्त्तव्यशास्त्र', 'नवरस', 'विज्ञान-विनोद', 'सिद्धान्त और अध्ययन', 'काव्य के रूप', 'बौद्ध धर्म', 'हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास', 'हिन्दी नाट्य-विमर्श' आदि प्रसिद्ध हैं । 'ठलुआ क्लब', 'मेरी असफलताएँ' जैसी व्यंग-विनोद की रचनाएँ भी आपने हिन्दी-संसार को दी हैं । निबन्धों के संग्रह 'प्रबन्ध-प्रभाकर', 'प्रबन्ध-माला' आदि नामों से हुए हैं ।

भाषा—गुलाबराय जी सीधी-सादी भाषा लिखने के पक्ष में हैं । भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ सरल मुहावरे और अङ्गरेजी शब्दों का प्रयोग भी पाया जाता है किन्तु अङ्गरेजी शब्दों के पर्यायवाची हिन्दी में अवश्य दिये हैं । आपकी भाषा संस्कृत-निष्ठ और परिष्कृत होते हुए भी यत्र-तत्र उर्दू शब्दों एवं मुहावरों के प्रयोग से प्रवाहशील बन गई है ।

आपके निबन्ध दो प्रकार के हैं—भावात्मक, और विचारात्मक । निबन्धों के अनुसार भाषा भी दो प्रकार की है । भावात्मक निबन्धों में संस्कृत के तत्सम

शब्दों के साथ उर्दू के प्रचलित शब्द मिलते हैं। मुहावरों और अङ्गरेजी के प्रचलित शब्दों के प्रयोग के साथ-साथ वाक्यों की बनावट भी अङ्गरेजी ढङ्ग की है। कहीं-कहीं संस्कृत की कहावतें और श्लोक भी हैं। दूसरे प्रकार के निबन्धों की भाषा पहली की अपेक्षा अधिक संस्कृत-गर्भित है। उसमें उर्दू के शब्द बहुत कम हैं और वाक्य-रचना पर भी अङ्गरेजी का प्रभाव नहीं है।

शैली—समास-प्रधान शैली में विचारात्मक निबन्ध लिखने वालों में बाबू गुलाबराय का प्रमुख स्थान है। आपके विचारात्मक निबन्धों में विचार और भावना का अनोखा मेल है। वाक्य विषय के अनुसार लम्बे और छोटे होने गये हैं। जहाँ वाक्य अधिक लम्बे हैं, साथ ही भाव भी गूढ़ हैं, वहाँ पाठक को समझने में कठिनाई होती है।

आपके भावात्मक निबन्धों को तार्किक शैली के निबन्ध भी कहा जा सकता है, क्योंकि उनमें विषय-विवेचन के लिये तर्क का काफी सहारा लिया गया है। इस शैली पर रामचन्द्र शुक्ल की छाप है। अङ्गरेजी का प्रभाव होने के कारण अङ्गरेजी न जानने वालों के लिये यह शैली कठिन और दुर्बोध हैं।

हास्य-व्यंग्य के निबन्ध लिखने में भी गुलाबराय जी कुशल हैं, किन्तु आपने किसी पर तीखा कटाक्ष नहीं किया है। आपने अपनी आलोचना को विवादग्रस्त विषयों में पक्ष लेने से सदा बचाये रखा है।

६. डा० वृन्दावनलाल वर्मा

परिचय—आपका जन्म संवत् १६४७ में झाँसी जिले के मऊरानीपुर गाँव में हुआ था। आपके परबाबा झाँसी राज्य के दीवान थे और १८५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम में झाँसी की रानी महारानी लक्ष्मीबाई के साथ वीरगति को प्राप्त हुए थे। वर्माजी ने बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त की है। पहले आप झाँसी के प्रसिद्ध वकीलों में थे। सन् १६४२ (संवत् १६६७) से वकालत छोड़कर साहित्य-सेवा करने लगे हैं। प्रारम्भ में आपकी रचनाएँ 'सरस्वती' और 'सुधा' पत्रिका में प्रकाशित होती थीं। आज वृन्दावनलाल वर्मा प्रमुख हिन्दी-उपन्यास-कारों में से हैं। आपकी साहित्यिक सेवाओं का सम्मान करते हुए सन् १६५८

में आगरा विश्वविद्यालय ने आपको "साहित्याचार्य" (डी० लिट्०) की उपाधि से विभूषित किया ।

आपने कुछ दिन से 'मयूर प्रकाशन' नाम की संस्था खोल ली है । आपकी सब रचनाएँ यहीं से प्रकाशित होती हैं । आपको अपने जीवन-काल में ही जो प्रसिद्धि मिल गई है, वह बहुत कम लेखकों को मिली है । अपनी रचनाओं से जितना धन आपने कमाया है, उतना मैथिलीशरण गुप्त के अतिरिक्त सम्भवत: कोई नहीं कमा पाया है । वर्माजी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के सभापति भी रह चुके हैं । शिकार और कथा-लेखन आपके प्रिय व्यसन हैं ।

रचनाएँ—वर्माजी ने उपन्यास, नाटक, एकाङ्की, कथा-साहित्य के सभी रूपों को अपनाया है । आपने लगभग दो दर्जन ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यास लिखे होंगे, जिनमें 'गढ़कुण्डार', 'मृगनयनी', 'विराटा की पद्मिनी', 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई', 'कुण्डली चक्र' और 'अचल मेरा कोई' विशेष प्रसिद्ध हैं । 'झाँसी की रानी' आपका नाटक भी है । वर्माजी ने लगभग एक दर्जन नाटक लिखे हैं, जिनमें 'हंस मयूर', 'पूर्व की ओर', 'काश्मीर का काँटा' और 'टंटा गुरु' अच्छे हैं । 'नीलकंठ' और 'लो भई पंचो लो' एकाङ्की संग्रह हैं तथा 'हरसिंगार', 'कलाकार का दण्ड', 'दबे पाँव' कहानी-संग्रह । 'मृगनयनी' नामक उपन्यास पर आपको पाँच पुरस्कार मिल चुके हैं ।

भाषा—वर्माजी की भाषा सरल, सुबोध खड़ी बोली है । सीधे-सादे आडम्बर-रहित ढंग से अपनी बात कहने के लिए आप प्रसिद्ध हैं । आपकी भाषा में सर्वत्र एकरूपता के दर्शन होते हैं । सभी स्थलों और सभी पात्रों में भाषा एकसी रहती है । बुन्देलखण्ड से विशेष प्रेम होने के कारण वहाँ की देहाती भाषा के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है । प्रसिद्ध गद्य-लेखकों में आपकी भाषा अत्यन्त निर्दोष है । व्याकरण के सामान्य नियमों की लापरवाही, विभक्तियों और विराम-चिन्हों का गलत प्रयोग, निरर्थक सर्वनामों की भरमार, वाक्यों में अँग्रेजी गठन तथा लिंग के अनिश्चित प्रयोग कहीं-कहीं कथा का प्रवाह रोकते हैं । भावात्मक प्रसंगों में आपको भाषा की दृष्टि से विशेष सफलता मिली किन्तु वर्णनात्मक स्थलों की भाषा कहीं-कहीं खटकने वाली है ।

शैली—वर्माजी एक सफल ऐतिहासिक उपन्यास-लेखक हैं। आपको सामाजिक उपन्यासों और नाटकों में विशेष सफलता नहीं मिली। सब नाटक अभिनेय भी नहीं हैं। यद्यपि कथानकों का आधार बुन्देलखण्ड रहा है, किन्तु साहित्य में आकर वह सारे विश्व की सम्पत्ति बन गया है। आपके उपन्यासों में आचरणशील चरित्रों का चित्रण हुआ है। इन उपन्यासों में जिस कला का विकास हुआ है, उसे इतिहास और रोमांस का मिलन कहा जा सकता है। आपने बुन्देलखण्ड के जंगलों में भ्रमण किया है, वहाँ की ऐतिहासिक सामग्री का स्वयं निरीक्षण किया है, इसलिये वर्णनों में बड़ी सजीवता है। शिकार का शौक होने के कारण जंगल और जंगली जानवरों का भी आपने बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। वर्माजी का मत है कि ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास की घटनाओं का उल्लंघन न करते हुए कल्पना की छूट है।

आपके उपन्यासों के विषय में आचार्य चतुरसेन का मत देखिये :—"इन उपन्यासों में वर्माजी का अध्ययन प्रगट है। उनका मानव-प्रकृति-निरीक्षण और कल्पना को सर्वजन-सुलभ बनाने का कौशल भी साधारण नहीं है। एक बात विचारणीय है कि इन उपन्यासों में लेखक की सहानुभूति ऊँची जाति के पक्ष में है।"

१०. वियोगी हरि

परिचय—श्री वियोगी हरि का जन्म संवत् १९५३ में बुन्देलखण्ड के छतरपुर राज्य में हुआ। वियोगीजी का वास्तविक नाम हरिप्रसाद द्विवेदी है। इन्होंने हिन्दी व संस्कृत की साधारण शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् अँग्रेजी पढ़ना आरम्भ किया। इन्हें बचपन से साहित्य से तो प्रेम था ही उस पर छतरपुर की महारानी कमलकुमारी से प्रोत्साहन मिला जो आरम्भ से ही आपको पुत्र के समान मानती थीं। उनके साथ बहुत से तीर्थों की यात्राएँ कीं, जिनके कारण आप पूरे दार्शनिक बन गये।

तीर्थ-यात्रा के लिये वियोगी हरि जी एक बार प्रयाग आये थे। तभी श्री टंडनजी ने उन्हें हिन्दी साहित्य सम्मेलन में कार्य करने के लिये रोक लिया। इसके बाद आप कई वर्ष सम्मेलन में कार्य करते रहे। गांधीजी के सम्पर्क में

आकर आप हरिजन सेवक संघ में सम्मिलित हुए और बहुत दिन से दिल्ली में हरिजन बस्ती की उद्योगशाला के व्यवस्थापक हैं।

वियोगी हरिजी बहुत दिनों तक 'हरिजन सेवक' और 'सम्मेलन पत्रिका' के सम्पादक रह चुके हैं। इन्हें 'वीर सतसई' पर साहित्य सम्मेलन का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिल चुका है। वियोगी हरि राष्ट्र-सेवा और साहित्य-सेवा दोनों में समान रूप से संलग्न रहे हैं।

रचनाएँ—वियोगी हरिजी एक प्रसिद्ध कवि, लेखक और सम्पादक हैं। काव्य-ग्रन्थों में 'वीर सतसई', 'प्रेम शतक', 'प्रेम पथिक', 'प्रेम परिचय', 'वीरवाणी', 'कवि कीर्तन' तथा गद्य-काव्यों में 'तरंगिणी', 'अन्तर्नाद', 'प्रार्थना' और 'श्रद्धाकण' मुख्य हैं। आपके निबन्धों का संग्रह 'साहित्य-विहार' नाम से निकला है। इनके अतिरिक्त आपने लगभग दो दर्जन ग्रन्थों का सम्पादन किया है, जिनमें 'ब्रजमाधुरी सार', 'प्रेमयोग' तथा 'विनय-पत्रिका' प्रसिद्ध हैं।

भाषा—वियोगी हरिजी ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में लिखते हैं। आपकी कविताएँ ब्रजभाषा में तथा गद्य-रचनाएँ खड़ी बोली में हैं। आपकी ब्रजभाषा बड़ी सरस और कोमल है जिसमें दार्शनिक विचार तक बड़ी सरलता से प्रकट किये हैं। आपकी गद्य की भाषा दो प्रकार की है; एक शुद्ध साहित्यिक तथा दूसरी व्यावहारिक। पहली भाषा शुद्ध संस्कृत-प्रधान है, और दूसरी में संस्कृत-तत्सम शब्दों के साथ उर्दू के व्यावहारिक शब्द भी मिले हैं।

वियोगीजी की भाषा लच्छेदार और प्रवाहपूर्ण है। विषय को सरल बनाने के लिये आप बीच-बीच में हिन्दी तथा संस्कृत के कवियों की प्रसिद्ध उक्तियाँ भी प्रयोग में लाते हैं। मुहावरों का प्रयोग तो उनकी भाषा की जान है। भाषा में एक ऐसी मादकता है कि पाठक अपने आप उधर खिंच जाता है। वाक्य-विन्यास एवं शब्दावली बड़ी मधुर है। लम्बे-लम्बे वाक्य लिखने पर भी भाषा की रोचकता और प्रवाह ज्यों का त्यों बना रहता है।

शैली—ईश्वर के प्रति प्रेम प्रकट करते-करते शैली में ऐसा प्रभाव एवं प्रवाह आ गया है कि उन्हें एक प्रसिद्ध अन्योक्ति-लेखक कहा जा सकता है। कठिन से कठिन विषय को सरलता से प्रकट करना आप खूब जानते हैं। यद्यपि वियोगी जी का काव्य ही मुख्य क्षेत्र रहा है किन्तु कभी-कभी निबन्धों

के रूप में भी आपका लेखन-चमत्कार दिखाई दे जाता है। कवि होने के कारण इनके गद्य में भी बड़ी भावुकता एवं विचार-शीलता रहती है।

वियोगी हरि के निबन्ध दो भागों में बाँटे जा सकते हैं। पहले भावात्मक, जिनमें संस्कृत-प्रधान बड़े-बड़े समासों वाली पदावली है। कहीं-कहीं यह शैली क्लिष्ट भी हो गई है। दूसरे निबन्ध हैं विचारात्मक, जिनमें हिन्दी और उर्दू शब्दों का मेल है। इनके दार्शनिक निबन्ध भी इसी शैली में हैं। इस शैली की भाषा व्यावहारिक है।

भावात्मक निबन्धों में कहीं-कहीं व्यंग का भी पुट है, जिससे एक अनोखा चमत्कार उत्पन्न हो गया है। इस व्यंग का प्रभाव प्रशंसनीय है। गद्य-काव्य के क्षेत्र में आपने एक नई दिशा का संकेत किया है। इनमें स्थान-स्थान पर उनके हृदय की उज्ज्वलता और विशालता के दर्शन होते हैं।

११. सेठ गोविन्ददास

परिचय—सेठ गोविन्ददास का जन्म संवत् १६५३ में जबलपुर में प्रसिद्ध सेठ राजा गोकुलदास जी के यहाँ हुआ। इनके पूर्वज मारवाड़ से यहाँ आकर बस गये थे और अपने परिश्रम से बहुत बड़ी सम्पत्ति पैदा की थी। गोविन्ददास जी के पिता का जीवन अत्यन्त विलासपूर्ण एवं राजा-नवाबों का सा था, किन्तु माता और बाबा सात्विक रुचि के थे। वे अधिकतर अपने बाबा के साथ ही रहे, इसलिये पिता का उन पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। कुछ कारणों से स्कूल में शिक्षा प्राप्त न कर सके और घर पर ही अँग्रेजी, हिन्दी, उर्दू एवं संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। उनका विवाह बचपन में ही हो गया था।

युवा होने पर इन्होंने साहित्य-सेवा के साथ-साथ राजनीति में भी भाग लेना आरम्भ किया। एक प्रकार से साहित्य-सेवा ही उन्हें राजनीति में लाई। इनका परिवार अँग्रेज सरकार का अनन्य भक्त था, इसलिये स्वातन्त्र्य-संग्राम में भाग लेते समय गोविन्ददास जी को अपने सम्बन्धियों का पद-पद पर विरोध भी सहना पड़ा। कुछ दिन आप जबलपुर म्यूनिस्पैलिटी के मेम्बर रह चुके हैं। जबलपुर क्षेत्र से बहुत वर्षों से आप एम० पी० हैं। अभी नया मन्त्रिमण्डल

बनने पर आप अस्थायी स्पीकर नियुक्त हुये थे। हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाने वालों में गोविन्ददासजी का प्रमुख स्थान है। एक बार आप साहित्य सम्मेलन के सभापति भी रह चुके हैं जिसने उन्हें 'साहित्य-वाचस्पति' की उपाधि प्रदान की थी।

रचनाएँ—सेठ गोविन्ददास एक कुशल नाटककार के रूप में साहित्य-जगत् में आये थे। इधर इन्होंने एकांकी लेखकों में भी अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली है। इनके नाटक 'हर्ष', 'प्रकाश', 'कर्त्तव्य', 'सेवा-पथ', 'कुलीनता', 'शशि-गुप्त', 'दुःख क्यों', 'कर्ण', 'बड़ा पापी कौन' आदि हैं। अभी कुछ वर्ष पूर्व इनकी आत्म-कथा धारावाहिक रूप में 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में प्रकाशित हुई थी।

भाषा—सेठ गोविन्ददास की भाषा शुद्ध खड़ी बोली है। भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्द प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं किन्तु कहीं प्रवाह एवं सजीवता का अभाव नहीं है। उनकी भाषा में सर्वत्र निराला सौन्दर्य भरा है, जिसमें पाठक स्वयं तल्लीन् हो जाता है। वाक्य छोटे-छोटे एवं भावानुकूल हैं। कुशल व्याख्यानदाता होने के कारण संवादों में कहीं-कहीं वक्तृता का सा आनन्द मिल जाता है। प्रसंग एवं पात्र के अनुसार इनकी भाषा में परिवर्तन भी होता गया है।

शैली—गोविन्ददास जी ने पुराण, इतिहास एवं वर्तमान युग से कथानक लेकर नाटक लिखे हैं जिनमें वर्तमान जीवन पर प्रभाव डालने की अद्भुत शक्ति है। ये सभी नाटक अभिनय के योग्य हैं। दृश्य के प्रारम्भ में विस्तार के साथ स्टेज की सजावट एवं पात्रों का विवरण दे दिया गया है। कुछ एकांकी नाटक समस्या-प्रधान भी हैं। 'प्रकाश' नाटक के आरम्भ में 'प्रतीकवादें' से भी काम लिया गया है।

अभिनेयता के अतिरिक्त रहस्य, आकस्मिकता आदि की इनके नाटकों में कमी है। तीन प्रारम्भिक नाटकों—'कर्त्तव्य', 'शशिगुप्त' और 'प्रकाश'—के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है :—"यद्यपि इन तीनों नाटकों के वस्तु-विन्यास और कथोपकथन में विशेष रूप से आकर्षित करने वाला अनूठा-पन नहीं है, पर इनकी रचना बहुत ठिकाने की है।" असंख्य धन और अतुल

सम्पत्ति के एकमात्र स्वामी होते हुए भी देश और साहित्य-सेवा का त्यागपूर्ण जीवन अपनाकर आपने भावी सन्तान के लिए आदर्श उपस्थित किया है।

१२. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी

परिचय—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का जन्म संवत् १९६४ में बलिया जिला के दुबे छपरा नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता ज्योतिष के विद्वान् एवं संस्कृत के प्रेमी थे। अतएव द्विवेदी जी को मिडिल पास करने के बाद संस्कृत का अध्ययन कराया गया। हिन्दू विश्वविद्यालय काशी से ज्योतिषाचार्य की उपाधि प्राप्त करके इनकी रुचि हिन्दी की ओर हुई। आप कवीन्द्र रवीन्द्र द्वारा स्थापित शान्ति-निकेतन में हिन्दी का अध्यापन करने लगे। यहाँ रहकर बंगला और हिन्दी का गहन अध्ययन किया तथा कई हिन्दी और बंगला लेखकों के सम्पर्क में आये जिससे आपकी लेखन-कला का पूर्ण विकास हुआ। कुछ दिनों बाद आप एक प्रसिद्ध आलोचक और निबन्धकार समझे जाने लगे। आपकी योग्यता से प्रभावित होकर लखनऊ विश्वविद्यालय ने 'डाक्टर ऑफ लिटरेचर' की उपाधि से आपको सुशोभित किया। द्विवेदी जी को 'कबीर' नामक ग्रन्थ पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन का मंगलाप्रसाद पारितोषिक भी मिल चुका है।

सभी प्रकार के साहित्यिक निबन्धों में द्विवेदी जी का एक-सा अधिकार है, किन्तु भक्ति-काल सम्बन्धी शोध करके उन्होंने एक नया और व्यापक दृष्टिकोण उपस्थित किया है। द्विवेदी जी ने सामाजिक और राजनीतिक विषयों पर भी लेखनी चलाई है। बहुत दिनों तक शान्ति-निकेतन में रहने के बाद अब आप हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष हैं।

रचनाएँ—हजारीप्रसाद जी प्रसिद्ध निबन्धकार और समालोचक हैं। आपने भारतीय संस्कृति, इतिहास, साहित्य, दर्शन एवं ज्योतिष का गम्भीरतापूर्ण विवेचन किया है। इनकी प्राचीन साहित्य सम्बन्धी खोज बहुत सराहनीय है। मौलिक रचनाएँ 'सूर सुषमा', 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', 'कबीर' और 'बाणभट्ट की आत्म-कथा' हैं। 'अशोक के फूल'; 'विचार और वितर्क', 'प्रबन्ध-संग्रह' और 'लाल कनेर' निबन्धों के संग्रह हैं।

भाषा—भाषा पर हजारीप्रसाद जी का असाधारण अधिकार है। भाषा संस्कृत के तत्सम शब्दों से युक्त, भावों के अनुकूल, गम्भीर और सरस है। यह भाषा विदेशी प्रभाव से सर्वथा रहित है। स्थान-स्थान पर उर्दू और अँग्रेजी के शब्दों के प्रयोग से वह और भी प्रभावपूर्ण हो गई है। यद्यपि उसमें मुहावरों को स्थान नहीं मिला है, फिर भी भाषा की व्यावहारिकता और बोधगम्यता में कोई अन्तर नहीं आने पाया है।

भाषा में विषय के अनुसार ही शब्द प्रयुक्त हुए हैं। जहाँ विषय कठिन है, वहाँ संस्कृत के तत्सम शब्दों की अधिकता है। साधारण एवं सरल विषयों में संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ उर्दू और अँग्रेजी के शब्द भी आ गये हैं। आलोचनात्मक और विचारपूर्ण निबन्धों की भाषा संस्कृत-गर्भित है। कहीं-कहीं आपका गद्य व्यंग्यपूर्ण शैली से भी सुशोभित है। ऐसे प्रसंगों में उर्दू शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक-सा है।

शैली—हजारीप्रसाद जी हिन्दी-साहित्य में 'कादम्बरी' के समान समास-प्रधान गद्य लेकर उतरे, जिसका दर्शन 'बाणभट्ट की आत्म-कथा' में होता है। शैली की दृष्टि से आपको विचार-प्रधान निबन्ध-लेखकों की श्रेणी में रखा जा सकता है। इसमें ये रामचन्द्र शुक्ल का अनुगमन-सा करते मालूम होते हैं। शैली में हास-परिहास और सजीवता भी खूब मिलती है। विचार-प्रधान लेखों में वाक्य लम्बे हो गये हैं तथा भाव-प्रधान रचनाओं में छोटे-छोटे। द्विवेदी जी परिच्छेदों का आरम्भ या तो सूत्र के समान छोटे वाक्य से करते हैं अथवा प्रश्न द्वारा, जिसका समर्थन बड़ी पटुता से तर्क द्वारा करते हैं।

हजारीप्रसाद जी की आलोचनात्मक शैली बड़ी मौलिक है। उसमें कठोरता के स्थान पर प्रेम और सहानुभूति है। विषय का स्वाभाविक स्पष्टीकरण उनकी शैली की निजी विशेषता है। गम्भीर विचारों को भी सरलता और स्पष्टता से कहने में आप बड़े चतुर हैं।

१३. डा० सम्पूर्णानन्द

परिचय—डा० सम्पूर्णानन्द जी का जन्म संवत् १९४८ में काशी के एक मध्यम कायस्थ परिवार में हुआ। इन्होंने क्विन्स कालेज बनारस से बी० एस-सी०

तथा टीचर्स ट्रेनिंग कालेज प्रयाग से एल० टी० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। अध्यापन की ओर आरम्भ से ही रुचि होने के कारण आप प्रेम महाविद्यालय वृन्दावन, इन्दौर, बीकानेर तथा काशी विद्यापीठ में अध्यापन-कार्य कर चुके हैं।

काशी में रहते हुए सम्पूर्णानन्द जी ने राजनीति में प्रवेश किया और सक्रिय भाग लेना आरम्भ कर दिया। उसी के कारण जेल-यात्रा भी करनी पड़ी। राजनीतिक क्षेत्र में भी आपने अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया और उत्तर प्रदेश के प्रमुख नेताओं में गिने जाने लगे। आप राजनीति के कुशल ज्ञाता, दार्शनिक तथा अच्छे समाजवादी लेखक हैं। राजनीति और साहित्य दोनों पर आपका समान अधिकार है। आप एक स्वतन्त्र विचारक भी हैं। राजनीति के व्यापक झंझटों में फँसे रहने पर भी आपने साहित्य-सेवा चालू रखी है। एक बार आप हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधान भी चुने जा चुके हैं। शिक्षा से स्नेह और ममता होने के कारण आपने पिछली बार शिक्षा-मन्त्री के रूप में उत्तर प्रदेश में प्रशंसनीय कार्य किये। इस समय आप उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री हैं।

रचनाएँ—समाजवाद, राजनीति, दर्शन एवं शिक्षा सम्बन्धी विषयों पर इनके अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। इन ग्रन्थों में 'चिद्विलास', 'अन्तर्राष्ट्रीय विधान', 'ब्राह्मण सावधान', 'गणेश', तथा 'भाषा-शक्ति' विशेष प्रसिद्ध हैं। आपको 'समाजवाद' नामक पुस्तक पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक भी मिल चुका है। कुछ दिन पूर्व इनकी 'नासदीय सूक्त की टीका' प्रकाशित हुई है। यह सूक्त वेद का वह स्थल है, जिसकी कोई टीका उपलब्ध नहीं है।

भाषा—डाक्टर सम्पूर्णानन्द की भाषा शुद्ध हिन्दी है। संस्कृत भाषा के गहन अध्ययन और विचारों की दार्शनिकता के कारण भाषा में संस्कृत-तत्सम शब्दों के प्रयोग बहुत मिलते हैं। इन्होंने उर्दू एवं अँग्रेजी के शब्दों का प्रयोग कहीं नहीं किया है। मुहावरों का भी भाषा में अभाव-सा है। इसीलिये न भाषा व्यावहारिक है और न साधारण-जन के मनोरंजन का साधन। वास्तव में उन्होंने विषय ही ऐसे चुने हैं, जिनका मनोविनोद अथवा जन-साधारण से कोई सम्बन्ध नहीं है। जिस विषय को उठाया है, उसे तर्क-सहित क्रमबद्ध

रूप में समझाकर ही छोड़ा है। वाक्य लम्बे होने पर भी भाषा में शिथिलता नहीं आने पाई है। यह भाषा साहित्यिक भाषा के आदर्श रूप में मानी जा सकती है।

शैली—डा० सम्पूर्णानन्द अपने गम्भीर अध्ययन, मनन और चिन्तन के लिये प्रसिद्ध हैं। इनकी सभी रचनाएँ इनके व्यक्तित्व से प्रभावित हैं। सम्पूर्णानन्द जी की शैली पांडित्यपूर्ण एवं गम्भीर है। भावों और भाषा में एक अनोखी समानता दिखाई देती है। योग और दर्शन सम्बन्धी निवन्धों में आपकी गम्भीर शैली के दर्शन होते हैं। सामान्य विषयों का वर्णन करते समय यह शैली ओजपूर्ण हो गई है। कहीं-कहीं व्याख्यान-शैली का प्रयोग भी आपने किया है। विचार-विवेचन में आपका ध्यान विषय के एक-एक अङ्ग पर जाता है और जब तक उसको पूरी तरह समझा नहीं देते, आपको सन्तोष नहीं होता। यद्यपि गम्भीर भाव और भाषा की गहनता के कारण आपकी रचनाएँ कहीं-कहीं क्लिष्ट हो गई हैं, किन्तु उनमें नीरसता और अधिक-विस्तार-रूप दोष नहीं आने पाया है। आपके निबन्ध प्रौढ़-शैली में लिखे होने के कारण हिन्दी-साहित्य की स्थायी सम्पत्ति हैं।

१४. भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव

परिचय—भगवतीप्रसाद जी का जन्म संवत् १९६८ में आजमगढ़ में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय कालेज में प्राप्त करके इन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय में प्रवेश किया। वहाँ से भौतिक-विज्ञान में एम० एस-सी० परीक्षा उत्तीर्ण की। पहले आप किशोरी रमण कालेज, मथुरा में अध्यापक थे। अब जब से धर्म समाज कालेज, अलीगढ़ में डिग्री कक्षाएँ खुली हैं, तब से यहीं अध्यापन-कार्य कर रहे हैं। इनका व्यक्तित्व बड़ा सरल, सौम्य और प्रभावशाली है। पिछले २० वर्षों से आप प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाओं में विज्ञान सम्बन्धी लेख लिखते रहे हैं। विज्ञान जैसे कठिन और नीरस विषय को सरल एवं सरस भाषा में जन-साधारण तक पहुँचाने के कारण भगवतीप्रसाद जी को विशेष ख्याति मिली है। ऑल इण्डिया रेडियो से वैज्ञानिक विषयों पर इनकी वार्ता प्रायः प्रसारित होती रहती है। इस समय लखनऊ से निकलने वाली "हिन्दी विश्व-भारती" पत्रिका के 'भौतिक-विज्ञान' नामक स्तम्भ का आप सम्पादन कर रहे हैं।

रचनाएँ—भगवतीप्रसाद जी के लेख प्रायः पत्र-पत्रिकाओं में निकलते रहते हैं। इन लेखों के संग्रह 'विज्ञान के चमत्कार' और 'परमाणु शक्ति' के नाम से हुए हैं। इनके अतिरिक्त अन्य रचनाओं के नाम 'विज्ञान की प्रगति', 'विज्ञान और जीवन', 'प्रगति के पथ पर', 'वायु की कहानी' तथा 'घरेलू बिजली' हैं। 'विज्ञान और जीवन' नामक रचना पर मध्यभारत सरकार से पुरस्कार भी मिल चुका है। साहित्य-जगत् में आपको विशेष ख्याति इन्हीं लेखों के कारण मिली है।

भाषा—इनकी सभी रचनाएँ सरल, सुबोध एवं शुद्ध खड़ी बोली में हैं। कहीं-कहीं प्रचलित उर्दू शब्दों एवं मुहावरों के प्रयोग से भाषा में गजब का प्रवाह आ गया है। वाक्य-रचना अँग्रेजी ढङ्ग की है और भाषा पर अँग्रेजी शैली की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। अँग्रेजी शब्दों से बचने की बहुत चेष्टा करते हुये भी ये कुछ प्रचलित एवं पारिभाषिक अँग्रेजी शब्दों के प्रयोग से नहीं बच पाये हैं। भाषा में स्वाभाविकता और मधुरता के दर्शन सर्वत्र होते हैं। वैसे तो आपने अधिकतर छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग किया है पर कहीं-कहीं वाक्य बहुत बड़े हो गये हैं जो विषय की दुरूहता को देखते हुए क्षम्य हैं।

शैली—विज्ञान जैसे गहन एवं साहित्य की दृष्टि से नीरस विषय में रोचकता उत्पन्न कर देने में भगवतीप्रसाद जी बड़े कुशल हैं। नवीनतम वैज्ञानिक खोजों का परिचय, उनके चमत्कार और भविष्य में उनसे होने वाले हानि-लाभ के विषय में संकेत करके वे विज्ञान जैसे उपेक्षित विषय के प्रति भी जन-साधारण की रुचि जाग्रत कर देते हैं। इनके लेखो में विचारों की सम्बद्धता के साथ-साथ तर्कपूर्णता भी है। भाषा की सरसता एवं वर्णन की सजीवता के कारण इनकी रचनाओं में पाठकों को उपन्यास का सा आनन्द आ जाता है। निबन्ध पढ़कर तो साधारण व्यक्ति भी विज्ञान की गहनता को भूल जाता है और इसे उपेक्षा की वस्तु न समझकर जीवन का अभिन्न अंग समझने लगता है। वैज्ञानिक विषयों पर लिखने वाले गिने-चुने लोगों में इनका प्रमुख स्थान है। अध्यापक होने के नाते इनकी सभी रचनाओं में बात को समझाकर कहने की विशेषता पाई जाती है।

: २ :

कवि-परिचय

१. कबीरदास

परिचय—कबीर के जीवन-चरित्र के विषय में विद्वानों में मतभेद है। अधिकांश लोगों का मत है कि इनका जन्म संवत् १४५६ में काशी में एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ। वह लोक-लज्जावश इन्हें लहर-तारा तालाब के किनारे डाल गई। वहाँ से नीरू और नीमा नाम के निःसन्तान जुलाहा-दम्पति ने इन्हें उठाकर पालन-पोषण किया। कबीर शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके, उन्होंने जो कुछ ज्ञान पाया वह साधु-सन्तों की संगत में रहकर ही। वे जुलाहे का काम करके ही अपनी जीविका चलाते थे। इनका विवाह लोई नाम की स्त्री से हुआ, जिससे कमाल नाम का पुत्र और कमाली नाम की पुत्री उत्पन्न हुई।

कबीर के गुरू स्वामी रामानन्द जी थे। कहा जाता है कि कबीर एक दिन अँधेरे ही 'पंच-गङ्गा' घाट की सीढ़ियों पर जा लेटे। रामानन्द जी प्रतिदिन सवेरे ही वहाँ स्नान करने आते थे। अँधेरे में उनका पैर कबीर के सीने पर पड़ गया, जिससे उनके मुख से सहसा 'राम-राम' शब्द निकल गया। कबीर ने उसी को गुरू-मन्त्र मान लिया। उन्होने ऐसा इसलिये किया था कि नीच जाति का होने के कारण प्रत्यक्ष रूप में रामानन्द जी उन्हें दीक्षा नहीं देते।

कबीर बहुत बड़े समाज-सुधारक भी थे। ढोंग और दंभ के वे बड़े विरोधी थे। उनमें एक पैगम्बर का विश्वास था। कबीरदास जी का चलाया हुआ कबीर पंथ अभी भी प्रचलित है। लोगों का विश्वास है कि काशी में मरने से

मुक्ति होती है तथा मगहर में मरने से नरक। ढोंग के विरोधी होने के कारण कबीर अन्तिम समय मगहर चले आये थे, जहाँ संवत् १५७५ में उनका देहान्त हुआ।

रचनाएँ—कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे, अतः उन्होंने स्वयं कोई पुस्तक नहीं लिखी। बाद में उनके शिष्य धर्मदास ने 'बीजक' के नाम से कबीर की सब वाणियों का संग्रह किया है। इसके तीन भाग हैं—साखी, सबद और रमैनी। बाद में इनके बहुत से शिष्यों ने अपनी रचनाओं पर कबीर की छाप डालकर बहुत-सी पुस्तकें बनाईं।

कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे। आपने ज्ञान भी भिन्न-भिन्न प्रान्तों के सन्तों की संगति से प्राप्त किया। इस कारण इनकी भाषा में अवधी, ब्रजभाषा, राजस्थानी, गुजराती, पंजाबी आदि बोलियों के शब्द पाये जाते हैं। कबीर की भाषा पंचमेल खिचड़ी है, जिसे सधुक्कड़ी नाम दिया जाता है। कबीर ने शब्दों के प्रयोग में इच्छा को ही प्रधान माना है। आपको जो शब्द अच्छा लगा है, उसका बेधड़क प्रयोग किया है। काव्य-शास्त्र के नियमों से अनभिज्ञ होने के कारण शब्दों को बुरी तरह तोड़ा-मरोड़ा है। वास्तव में कबीर का उद्देश्य कविता करना नहीं था, वे तो अपनी बात जनता तक पहुँचाना चाहते थे, इसलिये ऐसी भाषा का प्रयोग किया, जिसे सब कोई समझ सके। इन दोषों के होते हुए भी उनकी भाषा में बड़ा प्रभाव है। साधारण पाठक भी उसे पढ़कर आनन्द ले सकता है।

काव्य की विशेषताएँ—अपढ़ होने के कारण कबीर को न तो काव्य के गुण-दोष का ज्ञान था, न छन्द सम्बन्धी नियमों का ही ज्ञान था। उनके पास तो अनुभव, ज्ञान और उत्तम विचारों का भंडार था। आपने अपनी कविता में इन्हीं को प्रकट किया है। उनकी कविता एक ऐसे हृदय से निकली हुई कविता है, जिसमें न बाहरी दिखावा है, न चमत्कार। कबीर भगवान् के अनन्य भक्त थे। उन्होंने कविताओं में रोजा, नमाज, पशु-बलि, मूर्ति-पूजा, तिलक-छापा आदि ढोंग और दिखावे की चीजों का घोर विरोध किया है। कबीर की निर्गुण भक्ति पर भारतीय अद्वैतवाद और मुस्लिम एकेश्वरवाद का प्रभाव है। उनकी रचनाओं को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

(क) आपकी कविता का पहला रूप वह है जिसमें ढोंग और रूढ़ियों का

विरोध करते हुए आपने पंडित, मौलवी, योगी, साधकों को फटकारा है। इन कविताओं में विचित्र आत्म-विश्वास पाया जाता है। कबीर ने दूसरों पर इस प्रकार जमकर चोट की है मानो उनमें कोई कमी है ही नहीं। इन कविताओं की उक्तियाँ ऐसी सीधी और तर्क इतने तीखे हैं कि हृदय में सीधे प्रवेश कर जाते हैं।

(ख) कबीर ने कविता के दूसरे रूप में लोगों को उपदेश दिये हैं। यह कविता जन-साधारण के लिये है, अतः इसमें न विचारों की वह गूढ़ता है और न उक्तियों का तीखापन। सीधे-सादे शब्दों में अपनी बात जनता तक पहुँचाने की चेष्टा की गई है। इनमें गुरू-महिमा, ईश्वर-महिमा, सन्तगुण-वर्णन आदि विषय हैं।

(ग) कबीर की कविता का तीसरा रूप ही कवित्व का परिचय कराने वाला है। इसमें अलङ्कार और रस न होते हुए भी अनुभव का चमत्कार है तथा अन्य कविताओं की अपेक्षा सरसता और मधुरता भी अधिक है। कहीं-कहीं अलङ्कारों की स्वाभाविक छटा के भी दर्शन हो जाते हैं।

कबीर निर्गुण धारा की ज्ञानमार्गीय शाखा के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं।

२. मलिक मुहम्मद जायसी

परिचय—जायसी का जन्म संवत् १५५७ में रायबरेली जिला के जायस नामक स्थान में हुआ। कुछ लोग इनका जन्म संवत् १५५१ मानते हैं। जायस में रहने के कारण ही ये जायसी कहलाते थे। इनके विषय में अन्य पारिवारिक विवरण उपलब्ध नहीं है। ये एक आँख के काने तथा रंग के अत्यन्त काले थे। चेहरे पर चेचक के दाग भी बताये जाते हैं। एक बार शेरशाह जायसी की कुरूपता पर हँस पड़ा था तो इन्होंने कह डाला—मोहि का हँससि कि को हरहि (मुझ पर हँस रहे हो अथवा मुझे बनाने वाले कुम्हार [ईश्वर] पर)। जायसी सूफी विचारधारा के सन्त थे। उनका जीवन भी साधुओं जैसा ही था। बताया जाता है कि जायसी के आशीर्वाद से अमेठी नरेश के पुत्र उत्पन्न हुआ था तब से अमेठी में इनका मान बहुत बढ़ गया और ये वहीं रहने लगे। जायसी की समाधि भी अमेठी में ही बताई जाती है। इनका पारिवारिक जीवन विशेष सन्तुष्ट नहीं बताया जाता। इनकी मृत्यु संवत् १५९९ में हुई।

रचनाएँ—जायसी की लिखी बीस के लगभग पुस्तकें बताई जाती हैं, पर

आजकल केवल तीन प्राप्त हैं—'पद्मावत', 'अखरावट' और 'आखिरी कलाम'। जायसी की प्रसिद्धि का कारण पद्मावत ही है। यह रतनसेन और पद्मावती की प्रेम-कथा को लेकर लिखा गया है। अखरावट में अकरादि क्रम से उपदेश हैं और आखिरी कलाम में जायसी के दार्शनिक विचार हैं।

भाषा—जायसी की भाषा अवधी है। उस प्रदेश के निवासी होने के कारण जायसी की भाषा ठेठ देहाती है। मुसलमान होने के कारण जायसी की रचनाओं में अरबी-फारसी के शब्द अधिक तथा संस्कृत के बहुत कम हैं। जायसी की भाषा अत्यन्त मधुर है तथा उसमें पूर्वी और पश्चिमी दोनों प्रकार की अवधी का समावेश है। उसमें पश्चिमी की अपेक्षा पूर्वी का प्रयोग अधिक है। जायसी की भाषा में कहीं-कहीं अप्रचलित शब्दों के प्रयोग ने शिथिलता उत्पन्न कर दी है। जायसी ने समास वाले पदों का बहुत कम प्रयोग किया है। इससे सरलता और सरसता दोनों बढ़ी हैं।

काव्य की विशेषताएँ—जायसी निर्गुण भक्ति शाखा की प्रेममार्गी धारा के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। इन्होंने ईश्वर की प्राप्ति का साधन प्रेम माना है तथा आत्मा को पति एवं परमात्मा को पत्नी माना है। भाव और कला दोनों दृष्टियों से जायसी की कविता सुन्दर है। अवधी भाषा में महाकाव्य की सफल सम्भावना को जायसी ने ही सर्वप्रथम साहित्य-जगत् के सामने रखा। तुलसी ने 'मानस' की रचना पद्मावत की ही शैली पर की है।

जायसी साहित्य-जगत् में प्रेम की अनुभूति और विरह-वर्णन के लिये विशेष प्रसिद्ध हैं। प्रसङ्गवश जायसी ने जो ऋतु-वर्णन किये हैं, वे भी बड़े अनूठे हैं। विरह की अवस्था में जायसी की सारी प्रकृति विरह में व्याकुल दीखती है—"गेहूँ का हृदय फट गया तथा कौवा-भौंरा उसी के धुएँ से काले हो गये हैं।" जायसी के 'बारहमासों' में प्रकृति का सम्बन्ध मानव-हृदय से जोड़ा गया है। इस प्रकार की भावना हिन्दी-साहित्य में सर्वप्रथम जायसी की ही है।

३. सूरदास

परिचय—सूरदास के जीवन-वृत्त के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग इनका जन्म-स्थान दिल्ली के समीप सीही गाँव मानते हैं, और कुछ

के राजापुर नामक गाँव में हुआ। कुछ लोग एटा जिले के सोरों स्थान को भी इनकी जन्म-भूमि मानते हैं। इनके पिता का नाम आत्माराम और माता का नाम हुलसी था। बुरे नक्षत्र में पैदा होने के कारण माता-पिता ने पुत्र को अमंगलकारी समझकर त्याग दिया और मुनियाँ नाम की दासी ने पालन-पोषण किया। तुलसीदास जी कुछ दिन राम-भक्त नरहरिदास से संस्कृत पढ़कर काशी चले गए। वहाँ उन्होंने शेष सनातन नाम के विद्वान से सभी शास्त्र पढ़े। राम-कथा सर्वप्रथम उन्होंने नरहरिदास से ही सुनी, जिसका अंकुर 'रामचरितमानस' के रूप में प्रकट हुआ।

दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से आपका विवाह हुआ। उसके रूप-जाल मे ये बुरी तरह फँसे रहते थे। एक बार जब वह अपने पीहर गई तो ये भी रात में वहाँ पहुँच गए। उसे बड़ी लज्जा मालूम हुई और उसने इन्हें बुरी तरह फटकारा। उसकी फटकार का आप पर इतना प्रभाव पड़ा कि घर छोड़कर तुरन्त विरक्त बन गए। शेष जीवन काशी और अयोध्या में ही बीता। संवत् १६८० में काशी के असी घाट पर तुलसीदास का देहान्त हुआ। इनकी मृत्यु के विषय में यह दोहा बहुत प्रसिद्ध है—

संवत् सोरह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण कृष्णा तीज शनि, तुलसी तज्यौ शरीर।।

रचनाएँ—तुलसीदास जी के समय तक कविता लिखने की पाँच शैलि[याँ] प्रचलित थीं। आपने उन पाँचों में रचनाएँ लिखी हैं। (१) वीरगाथा काल की छप्पय-पद्धति के उदाहरण उनकी रचनाओं में जहाँ-तहाँ मिलते हैं। (२) विद्या-पति और सूरदास की गीत-पद्धति में 'गीतावली' और 'विनय-पत्रिका' बनाई। (३) कबीर की नीति सम्बन्धी दोहा-पद्धति पर 'दोहावली' की रचना की। (४) जायसी की दोहा-चौपाई पद्धति में 'रामचरितमानस' रचा, और (५) चारणों की कवित्त-पद्धति पर 'कवितावली' बनाई। इनके अतिरिक्त तुलसीदास जी की 'रामाज्ञा प्रश्नावली', 'वैराग्य संदीपनी', 'पार्वती मंगल', 'रामलला नहछू', 'बरवै रामायण', 'कृष्ण गीतावली' और 'जानकी-मंगल' नाम की पुस्तकें और बताई जाती हैं। वास्तव में अकेला 'रामचरितमानस' ही आपका नाम अमर करने के लिए काफी है। संसार की सभी प्रसिद्ध भाषाओं में इसके अनु-

वाद हो चुके हैं, तथा जितनी टीकाएँ इसकी प्रचलित हैं, उतनी अन्य किसी पुस्तक की नहीं ।

भाषा—तुलसीदास जी ब्रजभाषा और अवधी दोनों के ही पंडित थे। उन्होंने अवधी में रामचरितमानस तथा ब्रजभाषा में विनय-पत्रिका आदि ग्रन्थ लिखे हैं । आपने संस्कृत की कोमलकान्त पदावली का प्रयोग भी खूब किया है । इसके अतिरिक्त उर्दू, फारसी के प्रचलित शब्दों के प्रयोग में भी संकोच नहीं किया है । अवधी में संस्कृत के तत्सम शब्द अधिक प्रयुक्त हुए हैं । उसमें कहीं-कहीं भोजपुरी, गुजराती, बंगाली के शब्द भी दिखाई दे जाते हैं । आपकी ब्रजभाषा बड़ी सुन्दर और सरस बन पड़ी है जिसमें उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि का भी बड़ा स्वाभाविक प्रयोग हुआ है ।

काव्य की विशेषताएँ—सगुणधारा की रामभक्ति शाखा के कवियों में तुलसीदास जी सर्वश्रेष्ठ हैं । सगुणोपासक होते हुए भी उन्होंने निर्गुण का कभी विरोध नहीं किया । उनका हृदय विशाल और दृष्टिकोण व्यापक था । राम के भक्त होते हुए भी तुलसीदास ने सभी देवताओं की आराधना की है । उस समय अति प्रचण्ड रूप से प्रचलित शैव-वैष्णव विवाद को आपने राम को शिव-भक्त और शिव को रामोपासक के रूप में वर्णन करके बहुत कुछ शान्त कर दिया है ।

तुलसीदास जी ने राम के लोक-रक्षक रूप का 'रामचरितमानस' में चित्रण किया है । वास्तव में उस समय यवन-अत्याचारों से पीड़ित जनता को ऐसे ही इष्टदेव की आवश्यकता थी । 'कृष्ण गीतावली' लिखकर आपने अपनी कृष्ण-भक्ति का परिचय दिया है । कोई भी ऐसी सामाजिक या घरेलू समस्या नहीं छूटी जिसका समाधान रामचरितमानस में न मिल सके । उनकी कविता में सभी जगह लोक-कल्याण की भावना निवास करती है । इसलिए इन्हें उस समय के समाज का प्रतिनिधि कहा जा सकता है ।

तुलसीदास जी की भक्ति दास्य-भाव की है । आपने राम के अवतारी पुरुष एवं अपने इष्टदेव होने का जगह-जगह स्मरण कराया है । वे वर्णाश्रम धर्म के पक्षपाती होते हुए भी भक्ति में जाति-पाँति को व्यर्थ समझते थे । उन्होंने जो कुछ लिखा है 'स्वान्तः सुखाय' ही लिखा है । इसलिए आपकी कविता

अनन्त काल तक जनता के मन को लुभाने की शक्ति है। 'रामचरितमानस' एक ऐसा सागर है, जिसमें से मूर्ख और विद्वान सभी अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार रस-पान कर सकते हैं। इस ग्रन्थ का प्रचार सम्पूर्ण भारत में महलों से लेकर झोंपड़ी तक है। हरिऔध जी ने तुलसी के विषय में इस उक्ति में गागर में सागर भर दिया है—

कविता करके तुलसी न लसे, कविता लसी पा तुलसी की कला।

५. नरोत्तमदास

परिचय—नरोत्तमदासजी के जीवन-परिचय के विषय में अभी तक बहुत कम बातें ज्ञात हो पाई हैं। उनके जन्म-स्थान और जन्म-तिथि के विषय में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। 'सुदामा-चरित' के रचना-काल से इनका जन्म संवत् १५५० के आस-पास माना जाता है, किन्तु इनकी मृत्यु के विषय में अभी तक कुछ भी ज्ञात नहीं है। इनके सम्बन्ध में प्रामाणिक रूप से केवल इतना ज्ञात है कि ये सीतापुर जिले के बाड़ी नामक गाँव के निवासी थे और कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनकी कविता से इतना अनुमान लगाया जा सकता है कि आप एक ईश्वर-भक्त सरल ब्राह्मण थे और जीवन भर दरिद्रता में ही सन्तोष किये रहे। उन्हें अपने घर भूखा रहना पसन्द था, पर किसी धनी के द्वार पर हाथ फैलाना रुचिकर नहीं था।

रचनाएँ—नरोत्तमदास जी का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सुदामा-चरित' है। यह एक खण्ड-काव्य है। इसमें भगवान् कृष्ण और दरिद्र सुदामा की मित्रता का बड़ा सजीव वर्णन है। अकेले इसी ग्रन्थ के कारण वे हिन्दी-काव्य-संसार में अमर बन गये हैं। कहा जाता है कि आपने 'ध्रुव-चरित' नामक पुस्तक भी लिखी थी, पर वह अभी तक प्राप्त नहीं हो सकी है। 'नागरी प्रचारिणी सभा' की खोज के आधार पर इनकी एक पुस्तक 'विचारमाला' भी बताई जाती है, पर है वह भी अप्राप्य।

भाषा—'सुदामा-चरित' की भाषा ब्रजभाषा है, जिस पर बैसवाड़े की बोली का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। नरोत्तमदास जी ने शब्दों के प्रयोग में स्वतन्त्रता से काम लिया है और शब्दों को इच्छानुसार खूब तोड़ा-मरोड़ा है।

इस प्रकार शब्दों को नया रूप देने पर भी इनकी भाषा में सर्वत्र प्रवाह पाया जाता है। सरसता, सरलता और स्वाभाविकता तो आपकी भाषा के विशेष गुण हैं। मुहावरों के कारण भाषा में एक नई जान पड़ गई है। भाषा की सफलता का एक कारण शब्दों का सुन्दर चुनाव भी है। कहीं-कहीं शिथिलता भी आ गई है, पर उससे ग्रन्थ की रोचकता कम नहीं होने पाई है। आचार्य शुक्ल के शब्दों में 'सुदामा-चरित' की भाषा परिमार्जित और व्यवस्थित है। बहुत से कवियों के समान इसमें भरती के शब्द और वाक्य नहीं हैं।

काव्य की विशेषताएँ—'सुदामा-चरित' नाट्य-शैली में लिखा गया है। इसके कथोपकथन स्वाभाविक, प्रभावशाली एवं दृश्य के अनुरूप हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि नरोत्तमदास जी इस कला के विशेषज्ञ थे। आपकी शैली में ऐसे बहुत से गुणों का समादेश है, जिससे वह विशेष आकर्षक बन गई है। आपने अपनी कविता में दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया, कुण्डलियाँ आदि छन्दों का प्रयोग किया है। 'सुदामा-चरित' में शान्त, करुण और शृङ्गार रस पाये जाते हैं।

'सुदामा-चरित' के वर्णन इतने स्वाभाविक हैं कि लोगों ने इनको भी सुदामा के समान दरिद्र और स्वाभिमानी होने का अनुमान लगा लिया है। 'सुदामा-चरित' हिन्दी-साहित्य में अपने ढंग का अकेला खण्ड-काव्य है। आकार में बहुत छोटा होने पर भी सजीवता, मनोहरता और स्वाभाविकता के कारण इसके अनेक स्थल जन-साधारण की जवान पर रहते हैं। नरोत्तमदासजी ने जो भी लिखा है, वह मन की मौज में इस प्रकार डूबकर लिखा है कि उसकी लहरें बहुत शीघ्र पाठक को बहा ले जाती हैं।

६. अब्दुर्रहीम खानखाना

परिचय—रहीम का जन्म संवत् १६१० में हुआ। इनके पिता का नाम बैरम खाँ था। जिस समय हज करने जाते समय मार्ग में उनका देहान्त हुआ उस समय रहीम की अवस्था चार वर्ष की थी। रहीम बचपन से ही तीव्र बुद्धि थे, उन्होंने सहज ही अरबी, फारसी, हिन्दी तथा संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। अकबर ने इनकी योग्यता से प्रसन्न होकर इन्हें अपेक्षा से

पति वनाया तथा नवरत्नों में स्थान दिया। रहीम कृष्ण-भक्त एवं दानी स्वभाव के थे। गोस्वामी तुलसीदास से इनकी अच्छी मित्रता थी। रहीम का बुढ़ापा बड़े कष्ट में बीता। जहाँगीर ने रहीम को विद्रोही घोषित करके सब अधिकार छीन लिये तथा उनकी आँखों के आगे दो वेटों को कत्ल करा दिया। अपनी स्वामि-भक्ति का प्रमाण देने के लिये रहीम को वृद्धावस्था में भी युद्ध करने पड़े थे। इनका देहान्त संवत् १६८४ के लगभग हुआ।

रचनाएँ—सेनापति जैसे अशान्तिमय और व्यस्त पद पर रहते हुए भी रहीम ने अरवी, फारसी, संस्कृत और हिन्दी में कविताएँ लिखी हैं। हिन्दी की कविताओं में 'रहीम सतसई', 'वरवै नायिका भेद', तथा संस्कृत की कविताओं में 'मदनाष्टक' एवं 'खेटकौतुकम्' उनके ग्रन्थ हैं। कुछ छन्द ऐसे भी हैं, जिनमें अनेक भाषाओं का प्रयोग हुआ है। रहीम की हिन्दी-संस्कृत की सब कविताओं का संग्रह 'रहिमन विलास' के नाम से हुआ है।

भाषा—रहीम अरवी, फारसी, हिन्दी, संस्कृत आदि अनेक भाषाओं के विद्वान थे, पर उन्होंने एक के शब्द दूसरी भाषा में ठूँसने का प्रयत्न नहीं किया है। रहीम की हिन्दी कविताओं की भाषा अवधी एवं व्रजभाषा है। कहीं-कहीं ग्रामीण शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। संस्कृत के शब्दों के प्रयोगों ने तो भाषा की शोभा कई गुनी कर दी है। दोहा एवं वरवै जैसे छोटे छन्दों के प्रयोग के कारण रहीम ने शब्द-चयन में बड़ी सावधानी वरती है। भर्ती का एक भी शब्द उनकी कविता में कठिनता से मिलेगा। स्थान-स्थान पर मुहाविरों का प्रयोग भी हुआ है।

रहीम की भाषा अत्यन्त सरल, सरस, मधुर एवं गतिमय है। भाव इस प्रकार झलकते हैं, जैसे साफ पानी में कलई का लोटा।

कविता की विशेषताएँ—सेनापति होते हुये भी रहीम के पास कवि का हृदय था। उनके भावों की कोमलता और शैली की सरसता पर मन मोहित हो जाता है। हिन्दू-धर्म एवं समाज की वातें भी रहीम ने इतनी श्रद्धा और तन्मयता के साथ कही हैं कि कोई उनके मुसलमान होने का अनुमान नहीं लगा सकता। रहीम ने नीति, भक्ति, शृङ्गार आदि विषयों पर बड़े सुन्दर दोहे लिखे हैं। सफल नीतिकार के रूप में रहीम का स्थान हिन्दी-साहित्य में

अद्वितीय है। जहाँ रहीम ने किसी अन्य भाषा के कवि का अनुवाद किया है, वहाँ भी मूल से कम आनन्द नहीं आता। रहीम बरवै छन्द के तो जन्मदाता ही बताये जाते हैं। रहीम की कविता इतनी लोकप्रिय हुई है कि जन-साधारण के मुख से उनकी अनेक सूक्तियाँ सुनी जा सकती हैं।

७. केशवदास

परिचय—केशवदास जी का जन्म संवत् १६१२ में ओरछा राज्य में हुआ। ये सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनके पिता पं० काशीनाथ जी संस्कृत के प्रकांड विद्वान् थे। आपका परिवार ओरछा दरबार में बहुत प्रतिष्ठित था। केशवदास जी को पढ़ने-लिखने पर दरबार में बड़ा आदर मिला। ओरछा नरेश इन्द्रजीतसिंह इन्हें अपना गुरू मानते थे।

कहते हैं, राजा बीरबल ने इन्हें एक छन्द पर प्रसन्न होकर ६ लाख रुपए का पुरस्कार दिया था और इनके कहने पर अकबर से सिफारिश करके इनके आश्रयदाता इन्द्रजीतसिंह का एक करोड़ का जुरमाना माफ कराया था। इससे इनकी व्यवहार-कुशलता और राजकीय दाँव-पेचों से परिचित होने का प्रमाण मिलता है। हिन्दी के प्रथम आचार्य और तुलसीदास के बाद रामभक्ति शाखा का प्रमुख कवि होने का श्रेय आपको मिला है। केशवदास जी केवल नाम के ही आचार्य नहीं थे, वरन् ओरछा की दरबारी वेश्या प्रवीणराय को काव्य-शास्त्र की शिक्षा देकर आपने कार्य भी करके दिखलाया।

केशवदास जी को अपने जीवन में जितना ऐश्वर्य-सम्मान मिला, उतना किसी भी कवि को नहीं मिला होगा। उन्होंने सदा राज-सुख भोगा। बताया जाता है कि उन्होंने 'रामचन्द्रिका' की रचना तुलसीदास से भेंट करने के लिए एक रात में ही कर डाली थी। किन्तु इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। रात भर में इतने छन्द बनाना तो दूर, उनकी नकल करना भी असम्भव है। केशवदास जी का देहान्त संवत् १७७६ में हुआ।

रचनाएँ—केशवदास जी की प्रसिद्ध रचना 'रामचन्द्रिका' है, जो भगवान् राम के जीवन पर आधारित है। केशवदास जी आचार्य पहले थे और भक्त बाद में। इसीलिए उन्होंने रामचन्द्रिका में राम को मनुष्य मान कर काव्यों

रचनाएँ—बाबू हरिश्चन्द्र हिन्दी-गद्य के जन्मदाता कहे जाते हैं। हिन्दी-गद्य में आपने एक नया युग उपस्थित कर दिया था। इनकी अधिकांश गद्य-रचनाएँ नाटक-रूप में ही हैं, जिनमें 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'चन्द्रावली', 'भारत-दुर्दशा', 'नील देवी', 'अँधेर नगरी', 'वैदिक हिंसा हिंसा न भवति' आदि नाटक प्रसिद्ध हैं। इन्होंने 'काश्मीर कुसुम' और 'बादशाह दर्पण' नामक दो ऐतिहासिक ग्रन्थ भी लिखे। कविताएँ 'भारतेन्दु सुधा' तथा 'प्रेम फुलवारी' में संग्रहीत हैं। भारतेन्दुजी ने कोई प्रबन्ध-काव्य नहीं लिखा; जो भी कविताएँ हैं, वे फुटकर हैं। इसके अतिरिक्त आपने कई नाटकों का संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद भी किया।

भाषा—जिस समय हरिश्चन्द्रजी ने लेखनी सम्हाली उस समय खड़ी बोली के नाम पर हिन्दी-गद्य में दो प्रकार की भाषाओं का प्रयोग चल रहा था। एक राजा लक्ष्मणसिंह की भाषा, जिसमें संस्कृत-तत्सम शब्दों की अधिकता थी, और दूसरी राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द की भाषा, जो अरबी-फारसी के शब्दों से ठसाठस भरी थी। इन्होंने दोनों के बीच का मार्ग अपनाया और अरबी, फारसी तथा संस्कृत के प्रचलित शब्दों का प्रयोग करके एक नई भाषा को जन्म दिया। इसमें अँग्रेजी के प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग था।

कविता में हरिश्चन्द्रजी ने अधिकतर व्रजभाषा का ही प्रयोग किया है। खड़ी बोली का उस समय जन्म ही हुआ था। उसमें इतनी शक्ति न थी कि कविता के भाव प्रकट कर सके। भारतेन्दुजी ने तो यहाँ तक कह दिया था कि खड़ी बोली में मधुर एवं सरस कविता लिखी ही नहीं जा सकती यद्यपि उनकी समाज-सुधार और देश-प्रेम सम्बन्धी कविताएँ खड़ी बोली में ही हैं, पर उनका कोई महत्व नहीं है। भारतेन्दु जी की व्रजभाषा बड़ी सरस, मधुर और हृदय-हारिणी है। लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग से उसमें चार चाँद लगाये हैं।

कविता की विशेषताएँ—बाबू हरिश्चन्द्रजी की कविताएँ चार भागों में बाँटी जा सकती हैं—भक्ति-प्रधान, शृङ्गार-प्रधान, देश-प्रेम सम्बन्धी, और समाज सम्बन्धी। राधा-कृष्ण के अनन्य भक्त होने के कारण उन्होंने बड़े भावपूर्ण और सरस पद लिखे हैं। शृङ्गार में पवित्रता, संयम और उज्ज्वलता

है। इनमें राधा-कृष्ण के संयोग और वियोग का चित्रण किया गया है। आपकी राष्ट्रीय और सामाजिक कविताएँ विशेष महत्व नहीं रखतीं परन्तु इन विषयों पर सबसे पहले इन्होंने ही लेखनी उठाई।

इनकी कविताएँ इतनी सरस, सरल और मोहक होती हैं कि पाठक ठगा-सा रह जाता है। कविता में लावनियाँ, गीत, सवैया, कवित्त, कुण्डलियाँ, गजल आदि सभी शैलियों का प्रयोग किया है। यद्यपि कविता में कहीं-कहीं भाषा तथा प्रयोगगत दोष भी हैं, किन्तु समय का विचार करके उन्हें विशेष महत्व नहीं दिया जा सकता।' ३५ वर्ष की अल्प अवस्था में छोटे-मोटे १७५ ग्रंथ लिखने वाले इस मानवाकार प्रेस को हिन्दी-साहित्य सदैव स्मरण करेगा।

११. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

परिचय—पं० अयोध्यासिंह जी का जन्म संवत् १९२२ में आजमगढ़ जिला के निजामाबाद नामक गाँव में हुआ। इनकी शिक्षा का आरम्भ फारसी से हुआ। मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण करके आप क्विन्स कालेज में इंगलिश पढ़ने गये किन्तु अस्वस्थ होने के कारण कालेज छोड़कर चले आये। घर पर ही रह कर आपने संस्कृत की अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। ५ वर्ष मिडिल स्कूल में अध्यापक रहने के वाद वे कानूनगो वने और उन्नति करते-करते सदर कानूनगो के पद पर पहुँचे। वहाँ से अवकाश प्राप्त करके कुछ दिन घर पर स्वतन्त्र रूप से साहित्य-सेवा करते रहे।

इसी समय हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी में एक अनुभवी हिन्दी अध्यापक की आवश्यकता हुई। ये वहाँ चले गये और अवैतनिक रूप में अध्यापन-कार्य करने लगे। विश्वविद्यालय से अवकाश पाकर अपने घर चले आये और भारती की सेवा में जुट गये। हरिऔध जी बड़े उदार, सज्जन और मधुर-भाषी थे। अभिमान से वे कोसों दूर थे। खड़ी बोली का पहला महाकाव्य 'प्रियप्रवास' भेंट करके उन्होंने साहित्य-जगत् से 'कवि-सम्राट' की उपाधि प्राप्त की थी। आप हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति भी रह चुके हैं। सम्मेलन ने आपको 'विद्या-वाचस्पति' की उपाधि प्रदान की थी। उपाध्याय जी का देहान्त संवत् २००३ में अपने निवास-स्थान पर हुआ।

रचनाएँ—हरिऔध जी ने गद्य और पद्य दोनों प्रकार के ग्रन्थों की रचना सफलतापूर्वक की है। 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' नामक दो उपन्यास तथा 'हिन्दी भाषा का विकास' और 'कवीर वचनावली की आलोचना' आदि आलोचनात्मक पुस्तकें लिखीं। 'वेनिस का बाँका' और 'नीति निवन्ध' इनके अनूदित ग्रन्थ हैं तथा 'प्रियप्रवास' और 'वैदेही वनवास' महाकाव्य हैं। 'चुभते चौपदे', 'चोखे चौपदे', 'वोलचाल', 'रसकलश', आदि इनकी अन्य रचनाएँ हैं, जिनमें फुटकर कविताओं के संग्रह हैं। 'प्रियप्रवास' पर हरिऔध जी को हिन्दी साहित्य सम्मेलन से मंगलाप्रसाद पुरस्कार मिल चुका है।

भाषा—हरिऔध जी का खड़ी बोली और व्रजभाषा दोनों पर समान अधिकार था। संस्कृत छन्दों में जहाँ आपने लम्वे-लम्वे समासों वाले कठिन पदों का प्रयोग किया है, वहाँ चौपदे आदि छन्दों में साधारण भाषा के द्वारा सरस और सरल रूप में मर्म की वात भी कह दिखाई है। चौपदों के प्रत्येक पद में मुहावरों का प्रयोग करके आपने भाषा पर अपना असाधारण अधिकार और गम्भीर अध्ययन सिद्ध किया है। तुलसी के समान इन्होंने अपने समय तक की प्रचलित सभी पद्धतियों को अपनया है।

हरिऔध जी की प्रारम्भ की रचनाएँ सरल हैं, उनमें व्रजभाषा की छटा देखते ही वनती है। संस्कृत शब्दों के प्रयोग में भी इन्होंने वड़ी सावधानी रखी है। प्रायः वे ही शब्द प्रयोग किये हैं, जो सरल और मधुर हैं। संस्कृत छन्दों के कारण कहीं-कहीं व्याकरण के नियमों का उल्लङ्घन भी करना पड़ा है। आपकी वोलचाल की मुहावरेदार भाषा पर उर्दू-शैली का प्रभाव है।

कविता की विशेषताएँ—हरिऔध जी की प्रारम्भिक कविताएँ साधारण हैं और उन पर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का प्रभाव दिखाई देता है किन्तु जिन कविताओं के कारण ये कीर्ति प्राप्त कर गये हैं उन पर द्विवेदी-युग का प्रभाव है। उनमें 'प्रियप्रवास' और 'वैदेही वनवास' मुख्य हैं। इन काव्यों में आपने पुराने परम्परागत विषयों को लेकर चमत्कार दिखाया है। सामायिक विषयों पर भी उन्होंने 'चुभते चौपदे' और 'चोखे चौपदे' जैसी व्यवहारी भाषा में कविताएँ लिखी हैं।

'प्रियप्रवास' और 'वैदेही वनवास' नामक दोनों महाकाव्य खड़ी बोली में

लिखे गये हैं । पहले का विषय राधा और कृष्ण का जीवन-चरित्र है। इन्होंने राधा और कृष्ण को करील की कुञ्जों में रास रचाने वाले न मानकर समाज, देश और जाति के सेवक-रूप में चित्रित किया है। दूसरे महाकाव्य में सीता की वियोग-कथा के रूप में करुण रस की धारा बहाई है। ये दोनों महाकाव्य परम्परागत होते हुए भी कहीं-कहीं मौलिकता और नवीनता के दर्शन करा देते हैं। हरिऔध जी का 'प्रियप्रवास' अपने युग की बदलती हुई भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता है। दोनों महाकाव्यों के द्वारा इन्होंने कृष्ण और राम दोनों में अपनी समान श्रद्धा प्रदर्शित की है।

१२. जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

परिचय—जगन्नाथदास जी का जन्म संवत् १६२३ में काशी के प्रसिद्ध अग्रवाल वंश में हुआ। इनके पिता पुरुषोत्तमदास जी अरबी-फारसी के अच्छे विद्वान् और हिन्दी कविता के बड़े प्रेमी थे। कवियों का आना-जाना उनके घर प्रायः लगा रहता था। उन आने वालों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भी थे। इस प्रकार बचपन से ही कवियों के सम्पर्क में आने से इनके हृदय में कविता के प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया। विद्यार्थी-जीवन में बनाई हुई रचना सुनकर बाबू हरिश्चन्द्र जी ने आपको प्रसिद्ध कवि होने का आशीर्वाद दिया था।

रत्नाकर जी की शिक्षा का आरम्भ फारसी से हुआ, हिन्दी तो आपने बाद में पढ़ी थी। बी० ए० भी फारसी लेकर ही किया था। आगे आपको कई कारणों से अध्ययन स्थगित करना पड़ा। सबसे पहले आपने अवागढ़ रियासत में नौकरी की किन्तु जलवायु अनुकूल न होने के कारण दो वर्ष बाद ही काशी लौट आये। कुछ दिन बाद अयोध्या नरेश के प्राइवेट सेक्रेटरी होकर अयोध्या चले गये। अयोध्या नरेश का स्वर्गवास होने पर महारानी ने इन्हें अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बना लिया। इस पद पर आप अन्त तक रहे।

किन्हीं कारणों से रत्नाकर जी ने कविता लिखना बिल्कुल छोड़ दिया था। महारानी की ही प्रेरणा से दूसरी बार लेखनी उठाकर आपने 'गंगावतरण' की रचना की। रत्नाकर जी का देहान्त संवत् १६८९ में हरिद्वार में हुआ।

रचनाएँ—रत्नाकर जी ने अपना सारा जीवन साहित्य-साधना में ही लगा दिया। वे ब्रजभाषा के अन्तिम सफल महाकवि थे। 'गंगावतरण' इनका प्रसिद्ध महाकाव्य है। इस पर अयोध्या की महारानी ने एक हजार रुपया तथा हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने पाँच सौ रुपये का पुरस्कार दिया। इसके अतिरिक्त इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ 'हरिश्चन्द्र', 'समालोचनादर्श', 'उद्धवशतक', 'शृंगार लहरी' आदि हैं। नागरी प्रचारिणी से प्रकाशित 'रत्नाकर' नामक ग्रन्थ के दो भागों में आपकी सब रचनाएँ संग्रहीत हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने 'बिहारी रत्नाकर', 'हमीर-हठ', 'हित-तरंगिणी' और 'कण्ठाभरण' का सम्पादन किया। कहा जाता है कि 'बिहारी रत्नाकर' के समान सतसई की कोई टीका नहीं है। आपने 'साहित्य सुधानिधि' नाम का पत्र भी निकाला था।

भाषा—जिस समय में रत्नाकर जी ने होश संभाला, वह खड़ी बोली का समय था। फिर भी आपने ब्रजभाषा के गीत गाये। ब्रजभाषा के साथ-साथ पौराणिक विषय भी ग्रहण किये किन्तु उनको एक नवीन रूप प्रदान किया। आपने ब्रजभाषा में नये-नये रूपों और विभक्तियों का प्रयोग किया है। साथ ही अन्य भाषाओं के शब्दों को भी ब्रजभाषा का जामा पहनाने में आपने स्वतन्त्रता बरती है। लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग भी अपने ही ढंग से किये हैं।

रत्नाकरजी ने ब्रजभाषा का साहित्यिक एवं लोकप्रिय रूप सामने रखा है। इनकी भाषा टकसाली बताई जाती है। शब्द-चयन बहुत सुन्दर होने के कारण भाषा में बड़ी सरसता और मधुरता आ गई है।

कविता की विशेषताएँ—रत्नाकर जी ब्रजभाषा के प्राचीन छन्द और शैली को अपनाकर खड़ी बोली की बाढ़ रोक तो नहीं पाये, हाँ, अपनी कवित्व-शक्ति और ब्रजभाषा की महत्ता का परिचय उन्होंने अवश्य दिया। 'गंगावतरण' और 'उद्धवशतक', ये दो रचनाएँ ही इनको महाकवि का यश दिलाने के लिये काफी हैं।

रत्नाकर जी ने मुक्तक और प्रबन्ध दोनों प्रकार की रचनाएँ की हैं। 'उद्धवशतक' की कथा प्राचीन होते हुए भी नये साँचे में ढाल दी गई है। 'गंगावतरण' में प्रकृति-वर्णन बड़ा सुन्दर और सजीव बन पड़ा है। नवीन

उपमाओं और नूतन उत्प्रेक्षाओं ने कविता की शोभा कई गुनी अधिक कर दी है। आपका भाव और कला, कविता के दोनों पक्षों पर पूरा अधिकार था। दृश्य-वर्णन इतने सजीव हैं कि पाठक के सामने चित्र-सा खिंच जाता है। क्रोध, उत्साह, शोक, प्रेम आदि भावनाओं के चित्रण में भी उन्हें पूर्ण सफलता मिली है। कठिन से कठिन भाव को सरलतम रूप में स्पष्ट करने में कोई इनकी बराबरी नहीं कर सकता। भाषा, भाव और अलंकारों का यह संगम बहुत कम देखने को मिलता है।

१३. मैथिलीशरण गुप्त

परिचय—मैथिलीशरण जी का जन्म संवत् १९४३ में झाँसी के चिरगाँव नामक स्थान में हुआ। इनके पिता सेठ रामचरण जी वैष्णव भक्त एवं अच्छे कवि थे। उनके घर प्रायः कवि लोग आते-जाते रहते थे। इससे बचपन में ही आपके हृदय में भक्ति और कविता के अंकुर पैदा हो गये थे। एक बार इन्होंने अपने पिता जी की कविता लिखने की कापी में एक छप्पय लिख दिया, जिसे देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए। आरम्भ में गुप्त जी को अङ्गरेजी पढ़ने झाँसी भेजा गया था, किन्तु वहाँ मन न लगने से घर पर ही आपकी शिक्षा का प्रबन्ध किया गया।

मैथिलीशरण जी बचपन में बुन्देलखण्ड में प्रचलित 'आल्हा' काव्य पढ़ने में बड़ा आनन्द लेते थे। इससे इनके हृदय में देश-प्रेम और राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न हुई। प्रारम्भ में आपकी कविताएँ 'सरस्वती' पत्रिका में बहुत निकलती थीं। उस समय 'सरस्वती' के सम्पादक महावीरप्रसाद द्विवेदी थे। उन्होंने आपको बड़ा प्रोत्साहन दिया। गुप्त जी ने प्रसिद्ध महाकाव्य 'साकेत' की रचना उन्हीं की प्रेरणा से की है। इस महाकाव्य पर उन्हें साहित्य सम्मेलन का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिल चुका है।

आजकल आप 'राष्ट्रकवि' की गौरवपूर्ण उपाधि से विभूषित हैं और राष्ट्रपति द्वारा साहित्य-प्रतिनिधि के रूप में राज्य-परिषद् के सदस्य नियुक्त किये गये हैं।

रचनाएँ—गुप्त जी ने द्विवेदी-युग में लिखना आरम्भ किया और

तक समय के साथ कदम मिलाते हुए लिखते चले आ रहे हैं। आपने लगभग तीन दर्जन पुस्तकें लिखी हैं, जिसमें 'भारत-भारती', 'साकेत', 'जयद्रथ-वध', 'यशोधरा', 'झंकार', 'द्वापर' और 'नहुष' प्रसिद्ध हैं। 'भारत-भारती' वीर-रस-पूर्ण काव्य है जिसने भारत के जागरण में बहुत योग दिया था अतः शंकित होकर अङ्गरेजी सरकार ने उसे जब्त कर लिया था। गुप्त जी ने कई ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद किया है, जिनमें माइकेल मधुसूदन दत्त का 'जयद्रथ वध' और 'उमर खैयाम की रुबाइयाँ' प्रसिद्ध हैं।

भाषा—गुप्त जी की सभी कविताएँ खड़ी बोली में हैं। भाषा सुसंस्कृत, परिमार्जित और सशक्त होते हुए भी सरल, गतिशील एवं मधुर है। आपके संवाद बड़े मार्मिक, चुटकीले और प्रभाव डालने वाले हैं। संवादों में सभी जगह नाटकीयता के साथ मोह लेने वाली तर्क-शक्ति भी मिलती है। भाषा पर आपका पूरा अधिकार है। ज्यों-ज्यों प्रतिभा का विकास हुआ है, त्यों-त्यों भाषा में भी निखार आता गया है। प्रारम्भ-काल की रचनाओं की भाषा साधारण एवं प्रान्तीय शब्दों से मिली-जुली है। प्रौढ़-काल की रचनाओं में भाषा का सुन्दर रूप दिखाई देता है। संस्कृत-तत्सम शब्दों की अधिकता होने पर भी आपकी भाषा कठिन नहीं हो पाई है। लय और तुक के लिये प्रयुक्त अप्रसिद्ध शब्दों के कारण भाषा में कहीं-कहीं शिथिलता भी आ गई है। तुक के लिये उर्दू-फारसी शब्दों का भी प्रयोग कर लिया है। आप 'सिद्धराज' के अलावा कहीं भी तुक के मोह को नहीं छोड़ सके हैं।

कविता की विशेषताएँ—गुप्त जी सबसे पहले राष्ट्रीय भावनाओं के कवि हैं, पीछे कुछ और। आपने सर्वप्रथम 'भारत-भारती' द्वारा नवयुवकों को प्राचीन गौरव के गीत सुनाकर आशा और जागरण का संचार किया था। इनके सभी काव्य-ग्रन्थों के कथानक यद्यपि पुराने ग्रन्थों से लिये गये हैं, फिर भी उनमें वर्तमान की सभी समस्याओं का समावेश सफलतापूर्वक हुआ है। आपकी कविता की सबसे बड़ी विशेषता है, नारी के प्रति सहानुभूति। दोनों प्रसिद्ध काव्यों, 'साकेत' और 'यशोधरा' में दो उपेक्षिता नारियों के प्रति पुरुषों से भी अधिक उदारता दिखलाई है।

गुप्त जी पर गांधीवाद का पूरा प्रभाव है। सभी काव्यों में सादा जीवन,

सत्य, अहिंसा, प्रेम का आदर्श उपस्थित किया है। आप मानव धर्म के हिमायती रहे हैं। आशावाद आस्तिकता की झलक आपकी सभी रचनाओं में मिलेगी। आपकी रचनाओं में कहीं-कहीं रहस्यवाद की भी झलक मिलती है, पर यह रहस्यवाद ऐसा ही है और रहस्य ही बनकर रह गया है। 'झंकार' में आपके ऐसे ही गीतों का संग्रह है। कहीं-कहीं संस्कृत छन्द भी अपनाये हैं, पर इनका प्रिय छन्द 'हरिगीतिका' ही रहा है।

गुप्त जी ने प्रकृति का चित्रण सब जगह सौम्य रूप में ही किया है। मानव-हृदय की भावनाओं के चित्र खींचने में इनकी कलम में जादू है। केकयी के हृदय की भावनाओं का 'साकेत' में विशद वर्णन करके उसके कलंकित चरित्र को बहुत कुछ सुधार दिया है।

१४. माखनलाल चतुर्वेदी

परिचय—माखनलाल चतुर्वेदी जी का जन्म संवत् १९४५ में होशंगाबाद (मध्य प्रदेश) के बावरी गाँव में हुआ था। इनके पिता श्री नन्दलाल जी चतुर्वेदी बड़े विद्या-प्रेमी, चरित्रवान् और विचारशील ब्राह्मण थे। नार्मल परीक्षा पास करके माखनलाल चतुर्वेदी खण्डवा मिडिल स्कूल में अध्यापक हो गये। अध्ययन की ओर विशेष रुचि रहने से अध्यापन के साथ-साथ आपने संस्कृत, मराठी, गुजराती, अङ्गरेजी आदि भाषाओं का अध्ययन भी किया। इसी समय आपका ध्यान-काव्य रचना की ओर गया। साहित्य में रुचि बढ़ने पर अध्यापन-कार्य से त्यागपत्र देकर स्वतन्त्र रूप से काव्य-साधना आरम्भ की। इन्हीं दिनों खण्डवा से 'कर्मवीर' का प्रकाशन आरम्भ हुआ, और ये उसके सम्पादक नियुक्त हुए। 'कर्मवीर' के द्वारा आप साहित्य के साथ-साथ राजनीतिक क्षेत्र में भी प्रसिद्ध हो गये। असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के कारण चतुर्वेदी जी को आठ मास का कारावास हुआ था। 'कर्मवीर' बन्द हो जाने पर आप कानपुर चले आये और 'प्रभा' तथा 'प्रताप' का सम्पादन करने लगे। जब 'कर्मवीर' पुनः निकलना आरम्भ हुआ, तब से आप उसके सम्पादक हैं। पिछली बार आप मध्य प्रदेश असेम्बली के सदस्य भी थे तथा एक बार साहित्य सम्मेलन के सभापति भी रह चुके हैं।

रचनाएँ—चतुर्वेदी जी कवि होने के अतिरिक्त अच्छे लेखक भी हैं। 'हिम-किरीटिनी' और 'हिमतरंगिणी' में आपकी फुटकर रचनाएँ संग्रहीत हैं। 'शिशुपाल वध' संस्कृत के महाकाव्य का हिन्दी अनुवाद है। 'कृष्णार्जुन युद्ध' आपका नाटक है और 'साहित्य देवता' में गद्य-काव्य सम्बन्धी रचनाएँ हैं। आपके अनूदित कहानी-संग्रह 'बनवासी' और 'कला' के नाम से प्रसिद्ध हैं। आपको कई रचनाओं पर अनेक पुरस्कार मिल चुके हैं।

भाषा—चतुर्वेदी जी ने गद्य और पद्य दोनों ही रूपों में साहित्य-सेवा की है। आपकी गद्य की भाषा साहित्यिक और संस्कृत के तत्सम शब्दों से भरी हुई है। काव्य के क्षेत्र में संस्कृत के तत्सम शब्दों के होने पर भी भाषा सरल है। कहीं-कहीं उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। आपकी भाषा बड़ी ओजपूर्ण एवं प्रवाहयुक्त है। संस्कृत के तत्सम शब्दों की अधिकता होने पर भी प्रवाह में कहीं रुकावट नहीं पड़ती। आपकी भाषा का दूसरा गुण है मार्मिकता। शब्दों में ऐसा ओज भरा रहता है कि पाठक सहज ही मुग्ध हो जाता है।

काव्य की विशेषताएँ—चतुर्वेदी जी ने स्वयं स्वतन्त्रता-संग्राम में भाग लेने के साथ-साथ अपनी कविताओं से देश को जगाने का प्रयत्न किया, अतः आप प्रधानतया राष्ट्रीय कवि हैं, वैसे इनकी कविताएँ तीन भागों में बाँटी जा सकती हैं। पहले प्रकार की कविताएँ राष्ट्रीय हैं। इनमें सृजन और ध्वंस दोनों प्रकार की भावनाएँ भरी हैं। ये रचनाएँ यद्यपि आरम्भ-काल की हैं, फिर भी उनमें सर्वत्र ओजपूर्ण कल्पना का चमत्कार है। दूसरे प्रकार की रचनाएँ प्रेम-भावना से व्याप्त हैं। इस रूप में आप प्रेम की मधुर और सरस धारा बहाने में सफल हो सके हैं। इस प्रेम में सौन्दर्य, टीस, वेदना और सहानुभूति का सफल चित्रण है। तीसरे प्रकार की रचनाएँ आध्यात्मिक हैं। इनमें रहस्यवादी विचार व्यक्त किये गये हैं। रहस्यवाद का निश्चित रूप और ध्येय न होने से ये कविताएँ कठिन हो गई हैं।

आपकी शैली भी भाषा के साथ-साथ चलती जान पड़ती है। भाषा के समान इसमें भी ओज और मार्मिकता है। आपकी शैली भाव-प्रधान है। भावों को ध्यान में रखकर ही आप शब्दों का चयन और पदों का निर्माण करते हैं।

आपको साहित्य-साधना के लिये बहुत कम समय मिलता है, फिर भी आप भारती का भण्डार भर ही रहे हैं।

१५. जयशंकरप्रसाद

परिचय—जयशंकरप्रसाद जी का जन्म संवत् १९४६ में काशी में हुआ। इनके पिता बाबू देवीप्रसाद जी तम्बाकू के प्रसिद्ध व्यापारी थे और 'सुँघनी साहु' के नाम से प्रसिद्ध थे। उन्होंने प्रसाद जी की शिक्षा का उचित प्रबन्ध करने के साथ अपनी दानशीलता से अन्य अनेक विद्यार्थियों को विद्वान् बनाया। पिता के देहान्त के कारण इन्हें मिडिल पास करने के बाद ही स्कूल छोड़ना पड़ा। फिर घर पर ही संस्कृत, अँग्रेजी और उर्दू का अध्ययन किया। कुछ दिन बाद बड़े भाई के मर जाने से आपके कन्धों पर सारा कार्य-भार आ पड़ा।

'होनहार विरवान से होत चीकने पात' की उक्ति को चरितार्थ करते हुए प्रसाद जी आठ-दस वर्ष की अवस्था में ही अच्छी तुकबन्दियाँ करने लगे थे। वे बड़े शान्त एवं गम्भीर स्वभाव के व्यक्ति थे। निरन्तर अध्ययन एवं काव्य-सृजन उनका व्यसन था। दूकान का काम स्वयं न देखने के कारण व्यापार में घाटा रहने लगा, जिसकी चिन्ताओं के कारण उन्हें क्षय रोग ने धर दबाया। लोगों ने पहाड़ पर जलवायु-परिवर्तन के लिये जाने की सलाह दी, पर उन्होंने अन्तिम समय काशी छोड़नी नहीं चाही। चिकित्सा आदि का कोई प्रभाव नहीं हुआ और संवत् १९९४ में प्रसाद जी का देहान्त हो गया।

रचनाएँ—प्रसाद जी की प्रतिभा सर्वतोन्मुखी थी। उन्होंने काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी सभी के द्वारा भारती का भण्डार भरा है। 'कामायनी', 'आँसू', 'झरना' और 'लहर' इनके काव्य-ग्रन्थ हैं। प्रारम्भिक कविताएँ ब्रज-भाषा की हैं, जिनका संग्रह 'कानन-कुसुम' के नाम से है। नाटकों में 'चन्द्रगुप्त' 'स्कन्दगुप्त', 'अजातशत्रु' मुख्य हैं। प्रसाद जी ने 'कंकाल', 'तितली' और 'इरावती' नामक तीन उपन्यास लिखे, जिनमें अन्तिम अधूरा है। कहानियों के संग्रह 'आँधी', 'प्रतिध्वनि' और 'आकाशदीप' हैं। 'कामायानी' पर उन्हें मृत्यु के बाद सम्मेलन का मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हो चुका है।

भाषा—प्रसाद जी आरम्भ में सरल भाषा का प्रयोग करते थे। ज्यों-ज्यों

उनका अध्ययन तथा काव्य में मानव-भावनाओं का चित्रण बढ़ता गया, त्यों-त्यों भाषा दुरूह और क्लिष्ट होती गई। प्रारम्भिक कविताओं को छोड़कर उनकी सभी रचनाएँ खड़ी बोली में हैं। किन्तु भाषा संस्कृत के तत्सम शब्दों से पूर्ण होने के कारण जन-साधारण के समझने योग्य नहीं है। उसे अधिक प्रभावशाली बनाने के लिये उन्होंने प्रतीकों का प्रयोग किया है, जैसे आशा के लिये उषा और निराशा के लिये अन्धकार। इसलिये इनकी भाषा मधुर, कोमल और शुद्ध होते हुए भी प्रसाद-गुण से दूर है। इन्होंने द्विवेदी-काल में प्रचलित भाषा की नीरसता को दूर करके उसे सरस बनाया।

संस्कृत का गम्भीर अध्ययन होने के कारण उन्होंने साधारण बातों के लिये भी शुद्ध संस्कृत शब्दों का ही प्रयोग किया है। यह भाषा दो भागों में बाँटी जा सकती है—एक संस्कृत-प्रधान, और दूसरी व्यावहारिक। मानव-हृदय की सूक्ष्म भावनाओं एवं प्रकृति के रहस्यों का चित्र खींचने के लिये उन्होंने संस्कृत-प्रधान भाषा अपनायी है। व्यावहारिक भाषा का प्रयोग वहाँ किया है, जहाँ सरस स्थल हैं और पात्र भावावेश में आ गये हैं। ऐसे स्थलों के वाक्य छोटे-छोटे और प्रवाहपूर्ण हैं।

कविता की विशेषताएँ—प्रसाद जी छायावाद एवं रहस्यवाद के जन्मदाता तथा मुक्त छन्द के आदि-प्रचारक हैं। छायावादी कविता की सभी विशेषताएँ उनकी रचनाओं में हैं। इनके सर्वश्रेष्ठ काव्य-ग्रन्थ 'कामायनी' में श्रद्धा और इड़ा की कथा है। हिन्दी-साहित्य में इतना सुन्दर महाकाव्य दूसरा नहीं लिखा गया। इसमें मानव-हृदयों के भावों—चिन्ता, आशा, काम आदि—का पात्र के रूप में चित्रण हुआ है जो इसकी अपनी विशेषता है।

प्रसाद जी विशेषतः प्रेम के कवि माने जाते हैं। उनके तीनों खण्ड-काव्य, 'झरना', 'लहर', और 'आँसू', जल से ही सम्बन्धित हैं, जिनमें हृदय की वेदना और टीस का वर्णन है। इसके अतिरिक्त प्रसाद जी हिन्दी के पहले सफल गीतकार हैं। नाटकों एवं कामायनी में अनेक गीत बिखरे पड़े हैं। पुरातत्व और दर्शन उनके प्रिय विषय थे, अतः रचनाओं पर बौद्ध-दर्शन का प्रभाव स्पष्ट है। वे गांधीवादी सिद्धान्तों एवं आर्यसमाजी विचारों से प्रभावित थे। प्रसाद जी सबसे पहले कवि थे, बाद में कुछ और। इसीलिये उनकी गद्य में भी कविता की साँसें बोलती जान पड़ती हैं।

१६. सुमित्रानन्दन पन्त

परिचय—सुमित्रानन्दन पन्त का जन्म संवत् १९५८ में अल्मोड़ा जिला के कौसानी नामक गाँव में हुआ। इनके पिता पं० गंगादत्त पन्त कौसानी राज्य में कोषाध्यक्ष थे। पंन्त जी की प्रारम्भिक शिक्षा गाँव की पाठशाला में ही हुई। वे अल्मोड़ा के गवर्नमेण्ट हाई स्कूल में कुछ दिन पढ़कर काशी चले गये और वहीं से 'स्कूल लीविंग' परीक्षा उत्तीर्ण की। प्रयाग के म्योर कालेज से एफ० ए० करने के बाद आपने पढ़ना छोड़ दिया। इसके पश्चात् इन्होंने हिन्दी, अँग्रेजी और बंगला के प्रसिद्ध साहित्यकारों का गम्भीर अध्ययन किया। संगीत के प्रति भी आपके हृदय में सदा से आकर्षण रहा है जिसका प्रभाव उनके काव्य पर भी पड़ा है। श्री 'बच्चन' के शब्दों में पन्त जी को अपने समीप रखना एक योग्य डाक्टर को पास रखना है।

पन्त जी को एकाकीपन बड़ा प्रिय है। स्वभाव के आप शर्मीले हैं और भीड़-भाड़ से दूर भागते हैं। साथ ही आप बड़े मनमौजी और सौन्दर्य-प्रेमी व्यक्ति हैं। सरलता, स्वच्छन्दता और निश्छलता उनके स्वभाव के प्रधान गुण हैं।

पन्त जी ने कुछ दिनों 'सूपाभ' पत्रिका का सम्पादन किया है। प्रसिद्ध नर्तक उदयशंकर के चलचित्र 'कल्पना' में भी आप काम कर चुके हैं।

रचनाएँ—पन्त जी विद्यार्थी-जीवन से ही साहित्य-सेवा में लगे हैं और अबतक उनकी लेखनी में कोई भी शिथिलता नहीं आई है। इनकी कविताओं के संग्रह 'उच्छवास', 'पल्लव', 'वीणा', 'ग्रन्थि', 'गुंजन', 'युगान्त', 'युगवाणी', 'ग्राम्या', 'स्वर्ण धूलि', 'मधुज्वाल' और 'युगपथ' के नाम से प्रकाशित हुए हैं। आपने एक उपन्यास, तीन-चार नाटक और कुछ कहानियाँ लिखी हैं। 'उमर खैयाम की रुबाइयों' का अनुवाद भी किया है।

भाषा—पन्त जी की सभी रचनाएँ खड़ी बोली में हैं। उनकी भाषा अपने ढङ्ग की अनोखी ही है। उन्होंने अपनी कोमलकान्त पदावली द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि खड़ी बोली में भी बंगला और ब्रजभाषा के समान माधुर्य और कोमलता है। इसमें भी सुकुमार भावों का प्रकाशन किया जा सकता है। भाषा

संस्कृत के तत्सम शब्दों से भरी हुई है, फिर भी उसमें कहीं-कहीं ब्रजभाषा, फारसी और अँग्रेजी के शब्द आ गये हैं। कहीं-कहीं व्याकरण के नियमों की अवहेलना भी मिलती है।

शब्द-चयन में पन्त जी बड़े कुशल हैं। भाषा चित्रात्मक है अर्थात् जिस विषय का आपने वर्णन किया है, शब्दों में कुछ ऐसा जादू है कि उसका साक्षात् चित्र-सा आँखों के आगे खिच जाता है। आपने नये प्रतीकों और नई उपमाओं को भी जन्म दिया है। छन्दों में तुक की अपेक्षा लय पर विशेष ध्यान दिया है। निराला के बाद पन्त ही स्वतन्त्र छन्द के (जिसे रबड़ छन्द या केंचुआ छन्द भी कहते हैं) पक्षपाती हैं।

उनकी भाषा सुन्दर, कोमल और मधुर है। उसमें लालित्य एवं प्रवाह पूर्णतया वर्तमान है।

कविता की विशेषताएँ—प्रकृति की गोद में पलने के कारण पन्त जी सुकुमार भावनाओं के कवि हैं। पन्त जी की प्रकृति सम्बन्धी कविताओं पर कई अँग्रेजी एवं बंगला कवियों की स्पष्ट छाप है। उन्होंने 'परिवर्तन' नामक कविता में प्रकृति के उग्र रूप का भी वर्णन किया है, किन्तु मुख्यतः उनकी कल्पना मनोरम और मादक दृश्यों में ही अधिक रमी है। प्रकृति से हटकर आपका ध्यान पीड़ित, शोषित जनता की ओर गया है। पन्त जी विषमता को मिटाकर समानता और बन्धुत्व की भावना से समाज की उन्नति करना चाहते हैं। उन्होंने अरविन्द के दार्शनिक विचारों से प्रभावित होकर भी कुछ कविताएँ लिखी हैं। उनका संग्रह 'उत्तरा' में है।

पन्तजी ने मानव-जीवन को बड़ी गम्भीरता से देखा है और उसके बाहरी रूप को छोड़कर भीतरी रूप को कविताओं का आधार बनाया है। इन कविताओं में कहीं-कहीं आप रहस्यवादी भी बन गये हैं, पर बाद की रचनाओं में भौतिकवादी बनकर सुख-दुःख पर विचार करने लगे हैं।

भाव प्रकट करने का पन्त जी का अपना मौलिक ढंग है। खड़ी बोली की कविता में नवीनता लाने वालों में वे प्रमुख हैं। इनकी शैली पर संस्कृत, बंगला और अँग्रेजी के कवियों का प्रभाव पड़ा है, फिर भी वह हिन्दी कविता के लिये सर्वथा नवीन है। साधारण रूप में यही कहा जा सकता है कि आप प्रकृति

और जीवन के कवि हैं। हिन्दी-साहित्य में आपको सुकुमार भावनाओं के कोमल कवि के नाम से सदैव स्मरण किया जावेगा।

१७. सुभद्राकुमारी चौहान

परिचय—आपका जन्म प्रयाग के निहालपुर मुहल्ले में संवत् १९६१ में हुआ था। आपके पिता ठाकुर रामनाथसिंह वैस क्षत्रिय थे। आपका विवाह खंडवा-निवासी लक्ष्मणसिंह चौहान से हुआ, जो वकालत करते थे। विवाह के समय सुभद्राजी प्रयाग के क्रास्थवेस्ट गर्ल्स कालेज में पढ़ती थीं। इसके पश्चात् आपने काशी के थियोसोफिकल स्कूल में नाम लिखाया। तभी कलकत्ता की काँग्रेस ने असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव पास किया। सारे देश में इसकी लहर दौड़ गई। सुभद्राजी ने इसी से प्रभावित होकर पढ़ना छोड़ दिया। आपके पतिदेव ने भी वकालत छोड़कर 'कर्मवीर' पत्र का सम्पादन-भार संभाला और असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित हो गये। अपने पति के साथ आन्दोलन में भाग लेने के कारण सुभद्रा जी भी उनके साथ गिरफ्तार हुईं। आपने काँग्रेस के आन्दोलन में कई बार जेल काटी। पिछले चुनाव में वे मध्य प्रदेश की एम० एल० ए० चुनी गयी थीं। संवत् २०१४ में एक मोटर-दुर्घटना में सुभद्राकुमारी चौहान का देहान्त हो गया।

रचनाएँ—सुभद्रा जी का मुख्य क्षेत्र कविता था, किन्तु कहानी लिखने में भी आपको अच्छी सफलता मिली है। 'मुकुल' और 'त्रिधारा' आपकी कविताओं के तथा 'बिखरे मोती', 'उन्मादिनी' और 'सीधे-सादे चित्र' आपकी कहानियों के संग्रह हैं। आपकी एक बालोपयोगी रचना 'सभा का खेल' भी प्रकाशित हुई है। 'मुकुल' और 'उन्मादिनी' पर आपको साहित्य सम्मेलन का सेकसरिया पुरस्कार भी मिल चुका है। आपकी विशेष ख्याति 'खूब लड़ी मरदानी वह तो झाँसी वाली रानी थी' नामक कविता से हुई है।

भाषा—सुभद्रा जी की भाषा खड़ी बोली है। यद्यपि आपने संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है, फिर भी आपकी भाषा अत्यन्त सरल और व्यावहारिक है। कहीं-कहीं आपने उर्दू के प्रचलित शब्दों को भी अपनाया है। आपकी कविताओं से ज्ञात होता है कि आप शब्दों के प्रयोग के विषय में सर्व

सावधान रही हैं। आपने अपनी भाषा को चमत्कार, आडम्बर और बनावटीपन से दूर रखा है, यही कारण है कि उसमें अलंकारों का अभाव है।

काव्य की विशेषताएँ—सुभद्रा जी को बचपन से ही कविता के प्रति रुचि थी और वे छात्रावस्था में ही कविता लिखने लगी थीं। राष्ट्रीयता के साथ-साथ नारी-भावनाओं के चित्रण में भी आपको विशेष सफलता मिली है। मातृत्व का जैसा चित्रण सुभद्रा जी ने किया है, वैसा अन्यत्र नहीं मिलता। आपकी अनुभूतियों में कोमलता और कल्पनाओं में हृदय की सरसता भरी हुई है। आप जैसी स्वयं सीधी-सादी सरल स्वभाव की महिला थीं, वैसी ही आपकी कविता है।

आपकी कविताओं को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। पहले भाग में राष्ट्र-प्रेम से ओत-प्रोत वीर रस की कविताएँ हैं। इनमें वीर रस स्वाभाविक रूप में पाया जाता है। इनके पढ़ने से हृदय में स्फूर्ति और उल्लास की लहर दौड़ जाती है। दूसरे भाग में उनकी वात्सल्यमयी कविताएँ आती हैं। इनमें नारी-हृदय और मातृत्व-भावना के बड़े अनूठे चित्र हैं। 'झाँसी की रानी' की भाँति आपकी 'बालिका का परिचय' शीर्षक रचना भी कम प्रसिद्ध नहीं हुई है। तीसरे भाग में आती हैं शृङ्गार रस प्रधान कविताएँ। इन कविताओं का शृङ्गार शुद्ध प्रेम पर आधारित है। उसमें सब जगह पवित्रता और सरलता है तथा मर्यादा का ध्यान रखा गया है।

सुभद्रा जी की शैली सीधी-सादी और व्यावहारिक है। आपने भावों को बड़ी सरलता के साथ प्रकट किया है। भावों में सत्यता और स्वाभाविकता सर्वत्र है। आपने नारी का बड़ा सफल चित्रण किया है। सुभद्रा जी के काव्य में पारिवारिक अनुभूति और आशावादिता का सन्देश होने के कारण ही उन्हें आधुनिक युग की कवयित्रियों से अधिक लोकप्रियता मिली है। आपकी भाषा और भाव दोनों ही जन-साधारण के हृदय को स्पर्श करने वाले हैं तथा बहुत-सी कविताएँ राष्ट्रीय जागरण में भी सहायक हुई हैं।

१८. महादेवी वर्मा

परिचय—सुश्री महादेवी वर्मा का जन्म संवत् १६६४ में फर्रुखाबाद के

एक संभ्रान्त कायस्थ परिवार में हुआ। आपके पिता श्री गोविन्दप्रसाद जी अध्यापक होने के नाते शिक्षा के पक्षपाती थे। माता-पिता के प्रभाव से बचपन में ही महादेवी के हृदय में कविता और भक्ति का अंकुर जम गया। आपका विवाह ग्यारह वर्ष की अवस्था में हो गया था। विवाह होने पर शिक्षा बन्द हो गई, क्योंकि आपके श्वसुर पुराने विचारों के व्यक्ति थे। श्वसुर की मृत्यु के पश्चात् अध्ययन पुनः आरम्भ हुआ। धीरे-धीरे आप एम० ए० कक्षा तक पहुँचीं। संस्कृत विषय लेकर प्रयाग विश्वविद्यालय से एम० ए० किया। आप तभी से प्रयाग महिला विद्यापीठ में प्रधानाचार्य के रूप में अध्यापन कर रही हैं।

महादेवी जी को अपनी रचना 'नीरजा' पर सेक्सरिया पुरस्कार एवं 'यामा' पर सम्मेलन का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिल चुका है। आपने बहुत दिन 'चाँद' मासिक पत्र का सम्पादन भी किया था। आपने प्रयाग में 'साहित्यकार संसद' नाम की संस्था तथा देहरादून में 'उत्तरायण' नाम का एक साहित्यिक आश्रम स्थापित किया है।

रचनाएँ—महादेवी जी ने गद्य और पद्य दोनों रूप में माँ भारती की सेवा की है। आपकी कविताओं के संग्रह 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सांध्यगीत', 'दीपशिखा' हैं। 'रश्मि' और 'नीरजा' की कविताएँ 'यामा' नाम से संगृहीत कर दी गई हैं। 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ' 'शृङ्खला की कड़ियाँ' तथा 'अबला और विधवा' आपकी गद्य-रचनाएँ हैं। महादेवी एक सफल चित्र-कत्री भी हैं। उन्होंने अपनी कविताओं से सम्बन्धित बड़े सुन्दर भाव-चित्र बनाये हैं। आपकी कुछ रचनाओं का चीनी भाषा में वहाँ की सरकार अनुवाद करा रही है। आपने प्रारम्भ में राष्ट्रीय और सामाजिक कविताएँ भी लिखी हैं।

भाषा—महादेवी जी की सम्पूर्ण रचनाएँ खड़ी बोली में हैं। हाँ, कुछ प्रारम्भिक कविताएँ अवश्य ब्रजभाषा की हैं। आपकी भाषा मधुर, संस्कृत एवं ओजपूर्ण है। संस्कृत भाषा की विदुषी होने पर भी आपने अपनी भाषा को क्लिष्टता से बचाने का प्रयास किया है। भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों की अधिकता है, फिर भी जहाँ-तहाँ तद्भव शब्द देखने को मिल जाते हैं। भाव

बहुत ही चित्रमयी भाषा में प्रकट हुए हैं मानो भाषा के रूप में अपने मन की व्यथाओं को सुन्दर साड़ी पहना दी है। सरसता और मधुरता आपकी भाषा के विशेष गुण हैं। इसके लिये आपने शब्दों का अङ्ग-भङ्ग कर उनका वास्तविक रूप तक कहीं-कहीं बदल दिया है।

आपकी गद्य-रचनाओं की भाषा भी पद्यमयी है। एक-एक शब्द कुछ बोलता-सा प्रतीत होता है। कहीं-कहीं वाक्य इतने लम्बे हो गये हैं कि साधारण पाठक उनका पूर्वापर सम्बन्ध नहीं मिला पाता। आप भावना के समय पद्य लिखती हैं और चिन्तन के क्षणों में पद्य। आपका जैसा मधुर गद्य बहुत कम देखने में आता है। महादेवी जी शब्दों के प्रयोग में बड़ी सावधानी रखती हैं। इसीलिये संस्कृत के तत्सम शब्दों की भरमार भी भाषा के प्रवाह और माधुर्य में रुकावट नहीं डाल पाती।

कविता की विशेषताएँ—महादेवी जी की प्रारम्भिक कविताएँ राष्ट्रीय एवं सामाजिक विचारों की हैं, किन्तु इनका विशेष महत्व नहीं है। आपकी बाद की कविताएँ जो कल्पना-प्रधान और करुण रस से ओत-प्रोत हैं, बड़ी मनोहर और भावपूर्ण हैं। इनमें नारी-हृदय की शाश्वत वेदना का बड़ा सुन्दर चित्रण मिलता है। आपका क्षेत्र मुख्य रूप से काव्य ही रहा है। कविताओं का आधार वेदना, निराशा और अतृप्ति है। उनकी कविताओं में कहीं-कहीं अपनी निजी पीड़ा भी झलकती है। गीत अनुभूति-प्रधान हैं तथा वेदना सर्वथा आध्यात्मिक तो नहीं कही जा सकती, पर कहीं-कहीं जीवन के उस पार भी पहुँच जाती है।

महादेवी जी की कविताओं में रहस्यवादी भावनाओं का अच्छा विकास हुआ है। छायावाद और रहस्यवाद के कवियों में आपका स्थान बहुत ऊँचा है। आप अपनी रहस्यवादी भावनाओं और मधुर गीतों के कारण आधुनिक साहित्य की मीरा कहलाती हैं। आपकी कविताओं में रहस्यवादी विचारों को प्रकट करने के लिये प्रिय, प्रियतम जैसे शब्दों का बहुत प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं रहस्यवादी भावनाएँ उलझ भी गई हैं। महादेवी वर्मा गीत-काव्य की एक सफल कवियित्री हैं।

गद्य की विशेषताएँ—मुख्य रूप से कवियित्री होने पर भी इन्होंने गद्य-क्षेत्र

में यश प्राप्त किया है। इनकी गद्य-रचनाएँ तीन भागों में बाँटी जा सकती हैं। (क) पहली रचनाएँ वे हैं, जिनमें यात्रा-वर्णन है। इनमें चित्र-शैली का अच्छा विकास हुआ है। पाठक के सम्मुख दृश्य का चित्र-सा खिंच जाता है। इन रचनाओं में बड़ी मोहकता है। (ख) दूसरी प्रकार की वे रचनाएँ हैं, जिनमें साहित्यिक विचार प्रकट हुए हैं। इनमें विवेचनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। यह अपेक्षाकृत गम्भीर रचनाएँ हैं। (ग) तीसरी श्रेणी में वे रचनाएँ आती हैं, जिनमें आपने दरिद्र जीवन का चित्रण किया है। इसकी शैली बड़ी ओजपूर्ण है। इनमें आपकी उन विद्रोही भावनाओं के भी दर्शन होते हैं; जो समाज के प्रति आपके हृदय में उठी हैं।

१६. रामधारीसिंह 'दिनकर'

परिचय—श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' का जन्म संवत् १६६५ में बिहार के मुँगेर जिला के सिमरिया गाँव में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा घर पर प्राप्त करके अङ्गरेजी पढ़ने बाहर गये और पटना विश्वविद्यालय से बी० ए० (ऑनर्स) परीक्षा पास की।

आप जीवन-संग्राम में कानूनगो रजिस्ट्रार के रूप में आये। विद्यार्थी-जीवन से ही आपकी कविता में रुचि थी और तभी से लिखना भी प्रारम्भ कर दिया था। जीविका के लिये कचहरी जैसे व्यस्त स्थान पर रहते हुए भी आप स्वतन्त्र रूप से साहित्य-सेवा करते रहे। दिनकर जी लेखनी के साथ-साथ वाणी के भी जादूगर हैं। कवि-सम्मेलनों में आपकी खूब धूम रही है। इस समय आप भारतीय संसद के राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत सदस्य हैं।

दिनकर जी की सेवाओं से प्रभावित होकर बिहार प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने उन्हें एक बार सभापति चुना था। महाकाव्य 'कुरुक्षेत्र' पर आपको तीन पुरुस्कार प्राप्त हो चुके हैं। आप स्विटजरलैंड के विश्व कवि-सम्मेलन में हिन्दी कवियों के प्रतिनिधि रूप में सम्मिलित हुए।

रचनाएँ—अब तक दिनकर जी की कविताओं के जो संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, वे इस प्रकार हैं—'रेणुका', 'रसवन्ती', 'द्वन्द्वगीत', 'हुँकार,' 'धूपछाँह' 'सामधेनी', 'बापू'। आपने 'कुरुक्षेत्र' और 'रश्मिरथी' नामक दो महाकाव्य भी

लिखे हैं। 'मिट्टी की ओर' आपका आलोचनात्मक ग्रन्थ है। अभी कुछ दिन पूर्व एक कविता-संग्रह 'नीम के पत्ते' और एक खोजपूर्ण ग्रन्थ 'हिन्दू संस्कृति के चार अध्याय' प्रकाशित हुआ है। आपकी 'नई दिल्ली' शीर्षक कविता का कई प्रान्तीय भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

भाषा—दिनकर जी की सभी रचनाएँ खड़ी बोली में हैं। भाषा बड़ी शुद्ध और मंजी हुई तथा भावानुकूल प्रतीत होती है। संस्कृत, उर्दू और बंगला के विद्वान् होने के कारण आपकी भाषा में उर्दू की सजीवता और चुलबुलापन, संस्कृत के तत्सम शब्द और बंगला की मधुरता एवं सौन्दर्य है। अधिकतर तत्सम शब्दों का प्रयोग करने पर भी आपने अपनी भाषा को जटिल और दुरूह नहीं होने दिया है। रचनाओं में कहीं भी पांडित्य प्रदर्शन के लिये भाषा का प्रयोग नहीं किया गया है।

कविता की विशेषताएँ—नव-युग के कवियों में दिनकर जी का प्रमुख स्थान है। आप शोषित-पीड़ित-दलित मानवता के बड़े हिमायती हैं। आपकी भावनाओं में समाज, धर्म और पूँजीवाद की प्राचीन परम्पराओं के प्रति एक विद्रोह भरा रहता है। आपकी छन्द-योजना भी प्रायः नवीन ही है।

दिनकर जी की सभी कविताएँ दो भागों में बाँटी जा सकती हैं। पहले भाग में वे रचनाएँ आती हैं, जिनमें राष्ट्रीय भावनाएँ भरी हैं। इनमें पग-पग पर विद्रोह की ज्वाला भड़काने का प्रयत्न किया गया है। साधारण रूप से आपको क्रान्तिकारी कवि कहा जा सकता है। आपकी इन रचनाओं में बड़ी स्फूर्ति और शक्ति है।

दूसरे भाग में दिनकर जी की वे कविताएँ आती हैं, जिनमें विश्व-प्रेम की उदार भावना के दर्शन होते हैं। इन रचनाओं में आपके हृदय की विशालता दिखाई देती है। इन कविताओं में आपकी कल्पना विश्व-कल्पना में तन्मय है। इन कविताओं के कारण ही दिनकर जी को अधिक यश मिला है।

२०. श्यामनारायण पाण्डेय

परिचय—श्यामनारायण पाण्डेय का जन्म आजमगढ़ जिले के डुमराव गाँव में संवत् १९६७ में हुआ है। इनके पिता श्रीरामाज्ञा पाण्डेय संस्कृत के अच्छे

विद्वान् थे। कुल-परम्परा से संस्कृत का अध्ययन चला आने के कारण आपको भी संस्कृत पढ़ने की अभिलाषा हुई। बचपन में ही पिता का स्वर्गवास हो जाने के कारण आपके पालन का भार माता पर आ पड़ा, जिससे आपको अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

पाण्डेय जी की प्रारम्भिक शिक्षा हिन्दी एवं उर्दू में हुई। हिन्दी-उर्दू मिडिल पास करने के बाद आप गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, काशी में पढ़ने गये। वहाँ आपने बड़े परिश्रम से संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया। माता का भी स्वर्गवास हो जाने के कारण आपको अध्ययन में विघ्न तो बहुत हुआ, फिर भी अध्ययन छोड़ा नहीं। साहित्याचार्य परीक्षा उत्तीर्ण करके आप रिसर्च स्कॉलर के रूप में काम करने लगे। अन्वेषण की ओर आपकी रुचि सदैव से रही है। आप संस्कृत के अच्छे विद्वान् हैं और माधव संस्कृत पाठशाला, काशी के प्रधानाध्यापक हैं। आपने हिन्दी की साहित्य-रत्न परीक्षा भी उत्तीर्ण की है।

रचनाएँ—'तुमुल' और 'गोरावध' आपके खण्ड-काव्य हैं तथा 'हल्दीघाटी' और 'जौहर' महाकाव्य। फुटकर कविताओं का संग्रह 'आरती', 'रिमझिम', 'माधव' और 'आँसू के कण' नाम से हुआ है। आपने महाकवि कालिदास के 'कुमारसम्भव' का हिन्दी में अनुवाद किया है तथा कुछ पौराणिक कहानियाँ भी लिखी हैं, जो अभी प्रकाशित नहीं हुई हैं। आपको 'हल्दीघाटी' पर साहित्य सम्मेलन का देव पुरस्कार और 'जौहर' पर काशी नागरी प्रचारणी सभा का द्विवेदी पदक मिल चुका है।

भाषा—पाण्डेय जी की सभी रचनाएँ खड़ी बोली में हैं। संस्कृत के विद्वान् होते हुए भी आपने उन्हीं शब्दों का प्रयोग किया है जो अत्यन्त सरल और वीर रस के भावों को प्रकट करने के लिये ओजपूर्ण हैं। उर्दू भाषा के विद्वान् होने के कारण आपने उर्दू के प्रचलित शब्दों का ऐसा सुन्दर प्रयोग किया है कि भाषा में एक विचित्र प्रवाह और गति भर गई है। मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग ने आपकी भाषा को अत्यन्त लाक्षणिक और प्रभावशाली बना दिया है। कहीं-कहीं देहाती शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। प्रसाद और ओज आपकी भाषा की प्रधान विशेषताएँ हैं। अनुवाद-ग्रन्थों में संस्कृत-तत्सम प्रधान कठिन

भाषा का प्रयोग किया है, पर प्रसिद्ध आप अपनी सरल भाषा के लिये ही हैं, जिसका प्रयोग आपकी मौलिक रचनाओं में हुआ है।

काव्य की विशेषताएँ—पाण्डेय जी वीर रस के एकमात्र वर्तमान कवि हैं। सुकुमार भावनाओं के युग में भी वीरता के गीत गाकर आपने राष्ट्र-प्रेम का परिचय दिया है। पाण्डेय जी भारतीयता के कट्टर उपासक हैं। भारत के अतीत की आतमा उनकी हर पंक्ति में बोलती है। आपने सदैव से वीरता, शक्ति और साहस के ही गीत गाये हैं। आपके महाकाव्य 'जौहर' में वीर रस के साथ-साथ करुण रस भी वर्तमान है जिसे सुनकर लोगों में अपूर्व उत्साह का संचार होता है।

आपकी रचनाओं का मुख्य आधार राजस्थान की वे गाथाएँ हैं जो वीरता के लिये जन-साधारण में प्रसिद्ध हैं, फिर भी उनमें नवीनता है। आपकी रचनाओं के दो भाग किये जा सकते हैं। एक प्रकार की रचनाओं में तो भारत की परतन्त्रताकालीन विवशता का चित्रण है, और दूसरी प्रकार की रचनाओं में गौरवपूर्ण इतिहास का चित्रण है।

आपकी शैली इतिवृत्तात्मक है। नवीन ढंग के तुकान्त छन्दों में आपने इस शैली को खूब निभाया है जो कि भावनाओं के अनुकूल भी है। आप भावों के सजीव चित्र अङ्कित करने में अत्यन्त निपुण हैं।

: ३ :

अपठित

'अपठित' का अर्थ है बिना पढ़ा हुआ अर्थात् गद्य अथवा पद्य का वह अंश जो एक कक्षा विशेष की पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त अन्यत्र से लिया गया हो। प्रत्येक स्कूल के विद्यार्थियों को अपठित में गद्य अथवा पद्य दोनों ही के अंश दिये जा सकते हैं, अतः इन पर सम्भावित प्रश्न इस प्रकार होंगे ।

(१) पूरे गद्यांश अथवा पद्यांश का भावार्थ
(२) पूरे गद्यांश अथवा पद्यांश का सारांश
(३) रेखाङ्कित वाक्यों की व्याख्या
(४) आधारित प्रश्न
(५) व्याकरण सम्बन्धी प्रश्न (शब्दों की पद-व्याख्या अथवा वाक्य-विश्लेषण)
(६) अपठित अंश का शीर्षक

अपठित करते समय कुछ बातों का ध्यान रखना आवश्यक है, जो निम्नलिखित हैं :—

(१) उद्धृत अंश को कम से कम तीन बार पढ़कर लिखना प्रारम्भ करें यदि फिर भी समझ में न आये तो अधिक बार पढ़ना चाहिए। पहली बार पढ़ते समय किसी शब्द विशेष पर न रुकना चाहिए अन्यथा विचार-शृंखला टूटने से उस अंश को पुनः पढ़ना पड़ेगा। चेष्टा यह होनी चाहिए कि पूरे अंश का अर्थ भली-भाँति समझ में आ जाये।

(२) कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जो गद्यांश अथवा पद्यांश विद्यार्थियों को दिया जाता है, उसके विषय में वे अधिक से अधिक जानते हैं अतः उत्सुकता

वश अनावश्यक रूप से वे अधिक लिख जाते हैं। जितना अंश दिया गया है उतने के विषय में ही लिखना चाहिए।

(३) उद्धृत अंश का भावार्थ कभी-कभी दिये हुए अंश से अधिक लम्बा हो सकता है किन्तु सारांश लिखते समय इस बात का ध्यान रखना उचित है कि संक्षेप में सब भाव आ जायें, कोई भी बात दोहराई न जाए। हो सकता है अपठित में एक ही भाव अनेक उदाहरणों के द्वारा स्पष्ट किया गया हो किन्तु 'सारांश' में ऐसे सभी अंश काट देने चाहिए।

(४) रेखाङ्कित वाक्यों की व्याख्या में अधिकतर विद्यार्थी गलती करते हैं। व्याख्या का अर्थ एक शब्द के स्थान पर दूसरा शब्द रखना मात्र नहीं है, न सरल को कठिन और कठिन को सरल बनाना ही है। व्याख्या का अर्थ है भाव को अधिक स्पष्ट करना। अतः अपने शब्दों में, सरल एवं शुद्ध भाषा में उस भाव को स्पष्ट करें। कभी-कभी मुहावरे, लोकोक्तियाँ, सूक्तियाँ आदि भी व्याख्या में आ जाती हैं। उनका अर्थ समझाना ही पर्याप्त नहीं है वरन् उस अवतरण में जिस भाव को स्पष्ट करने के लिए आया है, उसी दृष्टिकोण से उसे समझाना चाहिए।

(५) प्रश्न सदा उद्धृत अंश पर आधारित रहते हैं अतः यदि वह अंश भली-भाँति पढ़ा गया है तो प्रश्नों का उत्तर उसी में मिल जायेगा। अपने उत्तर को अधिक जानकारी होने के कारण कभी भी बढ़ाना उचित नहीं है। उत्तर अपने शब्दों में लिखना चाहिए।

(६) शीर्षक का प्रश्न गद्यांश अथवा पद्यांश में व्यक्त प्रमुख विचारों से है अतः उन विचारों, भावनाओं को ध्यान में रखकर शीर्षक चुनना चाहिए। शीर्षक पूरे-पूरे वाक्य का न होना चाहिए, जितना छोटा हो उतना ही अच्छा है।

अपठित गद्यांश

[१]

वर्तमान युग में भारतीय विद्वानों का ध्यान राष्ट्र की आवश्यकता की ओर आकृष्ट हो चुका है। बहुमत देवनागरी लिपि के पक्ष

में मालूम होता है, तथापि कभी-कभी एकाध ऐसे बुद्धिमान् देखने में आते हैं जो **सरासर उल्टी गंगा बहाने का प्रयत्न करते हैं।** तुर्की भाषा का उदाहरण और अन्तर्राष्ट्रीयता की दुहाई देकर वे रोमन लिपि को भारत की राष्ट्र-लिपि प्रमाणित करने का प्रयत्न करते हैं। यदि तुर्की रोमन लिपि को न अपनाता तो **उसके पास चारा ही क्या था ?** वहाँ तुर्की की कोई अपनी लिपि तो थी ही नहीं। यदि प्रचलित अरबी लिपि के विरुद्ध उन्होंने रोमन लिपि को अपनाया तो उसका कारण था अरबी लिपि की अवैज्ञानिकता और **रोमन लिपि के अखंड योरुपीय साम्राज्य से उनके देश की सन्निकटता।** योरुप से हजारों मील दूर भारतवर्ष को क्या आवश्यकता है कि वह संदिग्ध, अपूर्ण और क्लिष्ट रोमन लिपि को राष्ट्रीय पद दे, जब अपनी देवनागरी लिपि स्वयं **स्वरों की बहुलता तथा स्वाभाविक वैज्ञानिकता में आज भी अपना सानी नहीं रखती।**

(क) उपर्युक्त अवतरण के काले छपे वाक्यांशों का अर्थ सरल हिन्दी में लिखिए।

(ख) आधुनिक तुर्की ने रोमन लिपि को क्यों अपनाया है ?

(ग) देवनागरी और रोमन लिपि के पक्ष-विपक्ष में आपके क्या विचार हैं ?

उत्तर

(क) **सरासर उल्टी गंगा बहाने का प्रयत्न करते हैं**—नदी के बहाव को उलट देना एक असम्भव कार्य है अथवा उसकी कल्पना मात्र ही हास्यप्रद है। यह मुहावरा कुछ ऐसे ही कल्पना करने वाले व्यक्तियों का उदाहरण प्रस्तुत करता है जो समय, परिस्थिति, विषय-वस्तु की अनुकूलता एवं प्रतिकूलता का बिना विचार किये ही कार्य करने की चेष्टा करते हैं। उनके पास कोई समुचित तर्क नहीं होता फिर भी अपनी-सी करना चाहते हैं।

चारा ही क्या था ?—यह विवशता का भाव प्रकट करता है जहाँ पर किसी चीज के एक ही पक्ष के उपस्थित होने के कारण उसी को मानने के लिए विवश हो जाना पड़े। ऐसी ही कुछ समस्या तुर्की के लिये थी। यदि वह रोमन लिपि न अपनाता तो दूसरी कौन-सी लिपि अपना सकता था ?

रामन लिपि के अखण्ड योरुपीय······सन्निकटता—समस्त योरुप में रोमन लिपि ही प्रचलित है, इसके अतिरिक्त कोई दूसरी लिपि नहीं चलती तथा भौगोलिक दृष्टि से तुर्की योरुप के निकट है।

स्वरों की······नहीं रखती—देवनागरी लिपि में बड़ी बहुलता है तथा उन वर्णों का अङ्कन ध्वनियों के क्रम के अनुसार हुआ है। एक स्थान से उच्चरित होने वाले वर्ण एक ही वर्ग में रखे गये हैं। इस दृष्टि से संसार की किसी भी भाषा की लिपि इसकी समता नहीं कर सकती।

(ख) तुर्की की अपनी कोई लिपि नहीं थी। वहाँ की प्रचलित अरबी लिपि अवैज्ञानिक थी। रोमन लिपि का सारे योरुप में प्रचार था और योरुप तुर्की के समीपवर्ती था। इन्हीं कारणों से तुर्की ने रोमन लिपि अपनायी।

(ग) प्रस्तुत अवतरण के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि रोमन लिपि 'अवैज्ञानिक, संदिग्ध, अपूर्ण और क्लिष्ट' है तथा नागरी लिपि वैज्ञानिक एवं स्वाभाविक है। रोमन लिपि की अवैज्ञानिकता का अर्थ है कि उसमें एक ध्वनि के लिये एक ही लिपि-चिन्ह न होकर कई अनावश्यक लिपि-चिन्ह हैं जबकि नागरी लिपि इससे सर्वथा मुक्त है। इसमें एक ध्वनि के लिये एक ही चिन्ह है। रोमन लिपि संदिग्ध इसलिये है क्योंकि जो कुछ लिखा जाता है उसी प्रकार सदा पढ़ा नहीं जाता। एक से ही स्वर आने पर दो शब्दों में उनका उच्चारण भिन्न हो जाता है। नागरी लिपि में जो लिखा जाता है वह ही पढ़ा भी जाता है। रोमन लिपि अपूर्ण इसलिये है क्योंकि उसमें वर्ण-न्यूनता के कारण विदेशी ध्वनियों को व्यक्त करने की क्षमता नहीं है, नागरी लिपि इसमें अपेक्षाकृत सफल रही है। रोमन लिपि क्लिष्ट इसलिये है क्योंकि उसमें हस्तलिपि दूसरी सीखनी पड़ती है तथा पढ़ने के लिये अथवा छापे के लिये दूसरी।

[२]

भारतीय सौभाग्य सूर्य की प्रथम रश्मियाँ हमें अब दिखाई देने लगी हैं। बहुमत से हिन्दी भारत की राष्ट्र-भाषा मानी जा चुकी है और यह निश्चित है कि भावी भारत में शिक्षा और संस्कृति का अधिकांश प्रसार हिन्दी द्वारा ही होगा। **परिवर्तित परिस्थिति में भारतवासियों का अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण पुष्ट करने के लिए एवं**

विदेशों में भारंतीय संस्कृति का प्रचार करने के लिए यह आवश्यक
होगा कि हिन्दी के विद्वान् विभिन्न देशों की संस्कृति और विचार-
धारा पर हिन्दी में मौलिक ग्रन्थ लिखें और विदेशियों के सामने
उन्हीं की भाषा में भारतीय संस्कृति का सच्चा विवरण रक्खें। यह
अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय तभी हो सकता है, जब हिन्दी के विद्वान्
उपर्युक्त सेवा के लिये निर्दिष्ट विदेशी भाषाओं और उनके साहित्य
का अध्ययन करें। संयुक्त प्रान्त प्राचीन काल से भारतीय संस्कृति
का केन्द्र रहा है। इस प्रान्त की पावन भूमि में ही राम, कृष्ण,
बुद्ध और तुलसीदास ने जन्म लिया है। यहाँ संयुक्त प्रान्त की ही
मातृ-भाषा को राष्ट्र-भाषा का पद प्राप्त है। **अतएव संयुक्त प्रान्त
के हिन्दी प्रेमी युवक-युवतियों पर इस भाषा की सेवा-कार्य का
गुरुतर भार विशेष मात्रा में है।**

(क) उपर्युक्त अवतरण के काले छपे वाक्यांशों का अर्थ सरल हिन्दी में लिखिए।

(ख) विदेशी भाषाओं का अध्ययन हमारे लिये क्यों आवश्यक है?

(ग) संयुक्त प्रान्त की ऊपर आई हुई विभूतियों का भारतीय संस्कृति में स्थान निश्चित कीजिए।

उत्तर

(क) **भारत के सौभाग्य............लगी है**—भारत के अच्छे दिन आ रहे हैं।

परिवर्तित......पुष्ट करने के लिए—आज दशा बदल गई है। अतः इस बदली हुई दशा में भारत के लोगों के विचार अन्य देशों के प्रति अच्छे बनाने के लिए।

अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय—भिन्न-भिन्न देशों के सभ्यता सम्बन्धी विचारों का लेन-देन।

अतएव......मात्रा में है—संयुक्त प्रान्त के उन लोगों को हिन्दी भाषा की सेवा अधिक करनी चाहिए, जिन्हें इससे प्रेम है।

(ख) विदेशों में उन्हीं की भाषा में अपनी संस्कृति का प्रचार और

विदेशों की संस्कृति का अध्ययन करके स्वदेश की उन्नति के लिये विदेशी भाषाओं का अध्ययन आवश्यक है।

(ग) **राम**—राम अपने पावन चरित्र के कारण मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाते हैं। उन्होंने विन्ध्य के उस पार आर्य-सभ्यता का प्रचार किया। उनकी भावना लोकहितकारी थी। राम सदैव भारतीय संस्कृति में आदर्श रहेंगे।

कृष्ण—कृष्ण ने अन्याय का सदा विरोध किया। प्रजा-पीड़क कंस को मार कर द्वारिका में आदर्श प्रजातन्त्र की स्थापना की। महाभारत युद्ध में भी उन्होंने अन्यायी कौरवों के विरुद्ध निर्दोष पाण्डवों का साथ देकर उन्हें विजय दिलाई। कृष्ण लोकरंजन के लिए भी प्रसिद्ध हैं।

बुद्ध—जब भारत में यज्ञों और देवतावाद के नाम पर पशु-बलि एवं माँसाहार का बोलबाला था उस समय गौतम त्याग, अहिंसा और सत्य का सन्देश लाये। उन्होंने भारत ही नहीं सारे विश्व की विचारधारा को बदल दिया। गौतम बुद्ध के 'बौद्ध धर्म' के मतावलम्बी आज भी विदेशों तक में हैं।

उक्त तीनों महानुभाव मानवता से उठकर ईश्वर-पद पा चुके हैं।

तुलसी—तुलसीदास जी जन-प्रिय एवं विश्व-प्रसिद्ध 'रामचरितमानस' के रचयिता हैं। जब भारत में शैव और वैष्णवों का घातक संघर्ष चल रहा था, तब तुलसी ने दोनों का समझौता किया। उस समय यवन-अत्याचारों से त्रस्त हिन्दू जनता को उन्होंने सच्चा मार्ग दिखाया। भारतीय संस्कृति के रक्षक तुलसी एवं उनका साहित्य अमर रहेगा।

[३]

अमेरिका के निवासी अपनी मौलिकता और नूतन आविष्कार-प्रियता के लिये समस्त संसार में प्रसिद्ध हैं, परन्तु अनुकरण करने में भी उनसे बढ़कर कोई नहीं मिल सकेगा। फल यह होता है कि नये व्यवसाय या आविष्कार की छीछालेदर, उसका दुरुपयोग और पतन जितना अधिक वहाँ होता है, उतना अन्यत्र नहीं होता। **वहाँ संसार का छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा व्यापार नवीनता और मौलिकता के आकर्षक वस्त्रों में ढक दिया जाता है।** ज्यों ही दूसरे

लोग उसका सफलता और लाभ को देखते हैं, त्यों ही उस व्यापार में एक-दो नहीं सहस्रों मनुष्य कूद पड़ते हैं। वहाँ का व्यापारी जन-समुदाय समुद्र के ज्वार-भाटा की भाँति वड़े वेग से एक ही ओर दौड़ पड़ता है और **अन्त में सब के सब किसी चट्टान से टकराकर दिवालिये बन जाते हैं।** आज भारतवर्ष के कई नगरों में वकीलों के व्यवसाय और नौकरी की भी प्रायः यही दशा है। किसी मनुष्य-बुद्धि के द्वारा ढूँढ़े गये किसी लाभकारी उद्योग में इस प्रकार की भीड़ करने से उसमें होने वाली आय बहुत अधिक घट जाती है और उसकी अधोगति हो जाती है। यह आवश्यक नहीं कि **विश्व-विजयी होने के लिये नेपोलियन किसी सिकन्दर की पुरानी तलवार को ढूँढ़ता फिरे।**

(क) इस अवतरण का सारांश लिखिए।

(ख) काले छपे वाक्यों का आशय स्पष्ट कीजिए।

उत्तर

(क) अमेरिका के रहने वाले नये-नये आविष्कार भी खूब करते हैं तथा दूसरों की नकल में भी कम नहीं हैं। वहाँ कोई भी नया काम अधिक दिन नहीं चल पाता। वहाँ छोटे-वड़े सभी व्यापार नये ढंग से किये जाते हैं। पर ज्यों ही किसी काम में सफलता या लाभ दिखाई देता है, ज्यों ही बहुत से लोग उधर टूट पड़ते हैं और यहाँ तक कि वह नष्ट हो जाता है। भारतवर्ष में भी यदि एक बुद्धिमान् कोई काम ढूँढ़ लेता है तो उसे इतने अधिक लोग अपना लेते हैं कि उसकी आय कम हो जाती है। हर मनुष्य को दूसरे के पीछे न चलकर अपने लाभ का नया मार्ग खोजना चाहिए।

(ख) **वहाँ संसार........जाता है**—अमेरिका में छोटे-वड़े सभी व्यापार ऐसे ढङ्ग से किये जाते हैं कि वे नये और आकर्षक लगते हैं।

अन्त में......बन जाते हैं—जिस प्रकार ज्वार आता है, लहरें तट से आकर टकराती हैं, टकरा कर अपने वेग को खो देती हैं, भाटा होता है फिर जल ज्यों का त्यों हो जाता है, उसी प्रकार सभी लोग एक ही व्यापार की ओर उन्मुख होते हैं। परिणाम यह होता है कि धन तो सभी का लग जाता है किन्तु आय न हो सकने के कारण वे धनहीन हो जाते हैं।

विश्व-विजयी······फिरे—किसी भी उन्नति करने वाले नये आदमी को यह आवश्यक नहीं कि पुराने उन्नतिशील व्यक्तियों के द्वारा किये गये उपायों पर ही चले। उसने जिस प्रकार उन्नति की है, वैसे ही वह भी करे। अर्थात् प्रत्येक मनुष्य को मार्ग स्वयं ढूँढ़ना चाहिए।

[४]

प्रत्येक देश का साहित्य उस देश के मनुष्यों के हृदय का आदर्श रूप है। जो जाति जिस समय जिन भावों से परिपूर्ण या परिप्लुत होती है, वे सब उस समय के साहित्य की समालोचना से भली-भाँति विदित हो सकते हैं। मनुष्य का मन शोक, संकट, क्रोध से उद्दीप्त अथवा अन्य किसी प्रकार की चिन्ता से दोचिता रहता है, तब उसकी मुखच्छवि तमसाच्छन्न, उदासीन और मलीन रहती है। उस समय उसके कण्ठ से जो ध्वनि निकलती है, वह भी या तो फूटे ढोल के समान सुरताल और लय-रहित, करुणापूर्ण, गद्गद् तथा विकृत-स्वर-संयुक्त होती है। वही चित्त जब आनन्द-लहरी से उद्वेलित हो नाच उठता है और बाँसों उछलने लगता है, तब मुख विकसित कमल-सा प्रफुल्लित, नेत्र मानो हँसते से, अङ्ग-अङ्ग स्फूर्ति से फिरकनी की नाईं फिरका करता है। कण्ठ-ध्वनि भी नव-वसन्त-मत्त कोकिला के कण्ठ-रव से भी अधिक और सुहावनी मन को भाती है। मनुष्य के सम्बन्ध में इस अनुल्लङ्घनीय नैसर्गिक नियम का अनुसरण प्रत्येक देश का साहित्य भी करता है।

(क) उक्त अवतरण में 'साहित्य समाज का दर्पण है' को सिद्ध करने के लिये क्या उक्तियाँ दी गई हैं?

(ख) इस अवतरण का सारांश लिखिए।

उत्तर

(क) 'साहित्य समाज का दर्पण है'—इसे सिद्ध करने के लिये लेखक ने मनुष्य के दैनिक जीवन से कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये हैं किस प्रकार भिन्न-भिन्न समयों पर उसके मनोभावों का उसके कार्यों पर प्रभाव पड़ता है। जब मनुष्य की मनःस्थिति जैसी होगी, उस समय उसकी मुखच्छवि, उसका कण्ठ-

स्वर तथा कार्य सभी कुछ उसके अनुकूल होंगे। जैसे शोक-मग्न मनुष्य का चेहरा उदास और आवाज बेसुरी होती है तथा आनन्द-मग्न मनुष्य का चेहरा खिला हुआ एवं शब्द वसन्त की कोयल के समान मदभरे होते हैं, उसी प्रकार साहित्य पर समाज का प्रभाव पड़ता है।

(ख) जिस प्रकार दर्पण में मुँह देखा जा सकता है, उसी प्रकार साहित्य में किसी देश के मनुष्यों के विचारों का अध्ययन किया जा सकता है। जिस प्रकार हर्ष, शोक, चिन्ता आदि का प्रभाव मनुष्य के चेहरे और स्वर पर पड़ता है, उसी प्रकार मनुष्य की मानसिक दशाओं से साहित्य भी अछूता नहीं रहता। यह प्रकृति का नियम है कि मनुष्य जैसी परिस्थिति में रहता है, वैसे ही उसके विचार बनते हैं और साहित्य विचारों का समूह ही तो है। उक्त अवतरण का भाव थोड़े से शब्दों में यह कहा जा सकता है कि साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्य के द्वारा उस समय की सामाजिक दशा का ठीक अनुमान हो सकता है।

[५]

सौन्दर्य की उपासना करना उचित है सही, पर क्या इसी के साथ कुरूपता घृणास्पद होने का चिन्ह है? नहीं **सौन्दर्य का अस्तित्व ही कुरूपता के ऊपर निर्भर है।** सुन्दर पदार्थ अपनी सुन्दरता पर चाहे जितना मान करे, पर असुन्दर पदार्थों की स्थिति में ही सुन्दर कहलाता है। **अन्धों में काना ही श्रेष्ठ** समझा जाता है। सत्ता-सागर में दोनों की स्थिति है। **दोनों ही एक तारतम्य में बँधे हुए हैं।** दोनों ही एक दूसरे में परिणत होते रहते हैं। फिर कुरूपता घृणा का विषय क्यों?

(क) ऊपर दिये गये अवतरण के अनुसार सौन्दर्य और कुरूपता का परस्पर सम्बन्ध बताइए।

(ख) काले छपे वाक्यों की व्याख्या कीजिए।

उत्तर

(क) किसी भी वस्तु की अच्छाई या बुराई दूसरी वस्तु से तुलना करने से ही ज्ञात होती है। यदि बुरी वस्तुयें न हों तो अच्छी चीजों का आदर कौन

करे। सुन्दरता के श्रेष्ठ होने का विचार कुरूप वस्तुग्रों को देखकर ही तो उठता है। सुन्दरता ग्रौर कुरूपता दोनों की सत्ता साथ-साथ रहेगी। एक के विना दूसरी नहीं रह सकती। इसलिए कुरूपता से घृणा नहीं करनी चाहिये।

(ख) **सौन्दर्य का......निर्भर है**—सुन्दरता कुरूपता के ग्रस्तित्व से ही पहचानी जाती है। यदि कुरूपता न रहे तो सुन्दरता का ज्ञान कैसे होगा ?

ग्रन्धों में काना ही श्रेष्ठ—ग्रसुन्दर पदार्थ की स्थिति में ही सुन्दर पदार्थ का ग्रस्तित्व है, इसी भाव को स्पष्ट करने के लिये यह मुहावरा प्रयुक्त हुग्रा है। इसका अर्थ यह है कि यों तो काना भी बुरा है किन्तु जहाँ सब ग्रन्धे ही हों उनसे तो ग्रच्छा है ग्रर्थात् गुणहीनों में थोड़े गुण वाला ही अच्छा है। इसी प्रकार जब असुन्दर पदार्थ देखते हैं तो उससे कुछ ग्रच्छा सुन्दर प्रतीत होता है।

दोनों ही......बँधे हुए हैं—सुन्दरता ग्रौर कुरूपता दोनों एक ही साथ हैं। एक का ग्रस्तित्व दूसरे के ग्रस्तित्व पर निर्भर करता है।

[६]

सब जातियों का स्वाभाविक ग्रादर्श एक नहीं है। इसके लिए क्षोभ करना या पछताना व्यर्थ है। भारतवर्ष ने मनुष्य का उल्लंघन करके कर्म को बड़ा नहीं बताया, फल की कामना-रहित कर्म की महिमा बखानकर उसने वास्तव में कर्म को संयम ही कर दिया है। फल की कामना उड़ा देना मानो कर्मरूपी नाग के जहरीले दाँत उखाड़ डालना है। इस उपाय से मनुष्य कर्म के ऊपर भी ग्रपने को सजग, सचेत करने का ग्रवकाश पाता है, ग्रर्थात् कर्म के नशे में ग्रपनी स्थिति को भूल नहीं जाता, सोच-समझ कर चलता है। इसी से कहते हैं कि हमारे देश का चरम लक्ष्य 'होना' ही है, 'करना' तो केवल उपलक्ष मात्र है।

(क) उक्त ग्रवतरण का ग्राशय सरल हिन्दी में समझाइये।

(ख) कर्म करना चाहिए ग्रथवा नहीं ? यदि करना चाहिये तो किस उद्देश्य से ? इस सम्बन्ध में भारत के प्राचीन विचारवान लोगों ने क्या बतलाया ?

उत्तर

(क) कोई जाति एक बात को आदर्श मानती है तो दूसरी जाति किसी अन्य बात को। इसके लिए क्रोध करना या पछताना बेकार है कि दूसरे हमारे आदर्श नहीं मानते। भारत के प्राचीन विद्वानों ने फल की इच्छा से हीन कर्म की प्रशंसा करके कर्म को इस प्रकार वश में कर लिया है, जैसे कोई साँप के जहरीले दाँत उखाड़ डाले। हमारे यहाँ कर्म का होना ही प्रधान माना गया है। करने वाला तो अपने आपको साधन मात्र मानता है।

(ख) मनुष्य को कर्म अवश्य करना चाहिए। बिना कर्म किए उसका काम नहीं चल सकता। कर्म फल के उद्देश्य से नहीं अपितु अपना कर्तव्य समझकर करना चाहिए। इस प्रकार कर्म की असफलता का दुःख नहीं होगा। भगवान् कृष्ण ने गीता में अर्जुन को यही उपदेश दिया था।

[७]

जो यह ईश्वर और मोक्ष का चक्कर है, इस पर तो मुझे हँसी आती है। यह मोक्ष और उपासना अहंकार की पराकाष्ठा है, जो हमारी मानवता को नष्ट किये डालती है। जहाँ जीवन है, क्रीड़ा है, चहक है, प्रेम है, वहीं ईश्वर है और जीवन को सुखी बनाना ही मोक्ष और उपासना है। ज्ञानी कहता है होठों पर मुस्कराहट न आवे, आँखों में आँसू न आवें। मैं कहता हूँ अगर तुम हँस नहीं सकते, रो नहीं सकते, तो तुम मनुष्य नहीं हो, पत्थर हो। वह ज्ञान जो मनुष्य को पीस डाले, ज्ञान नहीं कोल्हू है।

(क) मोक्ष और उपासना को अहंकार की पराकाष्ठा क्यों कहा गया है? इसके द्वारा मानवता का विनाश कैसे होता है? लेखक से इस विषय में आप कहाँ तक सहमत हैं?

(ख) ज्ञान को कोल्हू क्यों कहा है?

उत्तर

(क) संसार के आवागमन से छुटकारा पाने की इच्छा (मोक्ष) तथा संसार से विमुख होकर ईश्वरोपासना तथा ईश्वर की भक्ति द्वारा उसे प्राप्त करने

चेष्टा स्वार्थपरता है। वह संसार को दुःख का कारण मानकर उससे अलग रहना चाहता है। इससे बड़ा अहंकार (घमंड) और क्या होगा ? इनके द्वारा मनुष्य के वास्तविक गुण—प्रेम, दया, सहानुभूति आदि—नष्ट हो जाते हैं। उसे केवल अपनी ही चिन्ता रहती है। इस प्रकार मोक्ष और उपासना से सच्ची मानवता नष्ट हो जाती है। यदि अन्ध-विश्वास और हठधर्मी को छोड़कर विचार करें तो लेखक की बात बिल्कुल सत्य लगेगी।

(ख) कोल्हू असली पदार्थ अलग निकाल देता है और केवल निःसार खली रहने देता है। इसी प्रकार ज्ञान मनुष्य के हृदय से सहानुभूति, दया आदि गुण निकालकर उसे कठोर बना देता है। ज्ञानी मनुष्य न प्रसन्नता में हँसता है, न दुःख में रोता है। उसे ये सब मिथ्या लगते हैं तथा वह इन्हें दुर्बलता समझता है। इसी से ज्ञान को कोल्हू कहा है।

[८]

मानव का अकारण ही मानव के प्रति अनुदार हो उठना न केवल मानवता के लिए लज्जाजनक है वरन् अनुचित भी है। वस्तुतः यथार्थ मनुष्य वही है जो मानवता का आदर करना जानता है, कर सकता है। केवल इसीलिए कि कोई मनुष्य बुद्धिहीन है अथवा अभागा है अथवा दरिद्र है, वह घृणा का तो दूर रहा, उपेक्षा का भी पात्र नहीं होना चाहिए। मानव तो इसीलिये सम्मान के योग्य है कि वह मानव है। भगवान् की सर्वश्रेष्ठ रचना है।

यथार्थ मनुष्य कौन है ? मानव सम्मान के योग्य क्यों है ? इस विषय पर आपके निजी विचार क्या हैं ?

उत्तर

सच्चा मनुष्य वही है, जो दूसरे मनुष्यों का आदर करे। उनके धनवान एवं गुणी होने के कारण नहीं, केवल मनुष्य होने के कारण ही उसका आदर होना चाहिए। किसी भी मनुष्य को दीन-हीन होने के कारण घृणा करना तो दूर, उसकी उपेक्षा भी नहीं करनी चाहिए। जो ऐसा कर सके वही सच्चा मनुष्य है।

मनुष्य को केवल मनुष्य होने के नाते ही सम्मान मिलना चाहिए। वह ईश्वर की सबसे सुन्दर रचना है। ईश्वर की सुन्दर रचना उसे अवश्य प्यारी होगी। अतः ईश्वर की सबसे प्यारी चीज का आदर न करना, ईश्वर का विरोध और अपमान करना है।

[६]

मनुष्य में जैसी एक स्वार्थ-बुद्धि होती है वैसी ही एक परार्थ-बुद्धि भी होती है। मनुष्य में हम जिन गुणों को देखकर मुग्ध हो जाते हैं, वे सभी गुण उसी परार्थ-बुद्धि द्वारा प्रकट होते हैं। दया, प्रेम, स्नेह, सहानुभूति, त्याग, सेवा आदि भाव मनुष्य की परार्थ-चिन्ता के कारण हमारे हृदय में उत्पन्न होते हैं। इस परार्थ-चिन्तन में मनुष्य का कल्याण है। अतएव यदि यह कहा जाय कि परार्थ-चिन्ता हमारी उच्च कोटि की स्वार्थ-चिन्ता ही है, तो यह सर्वथा उचित है।

परार्थ-बुद्धि द्वारा मनुष्य में किन गुणों का विकास होता है? परार्थ-चिन्ता हमारी उच्च कोटि की स्वार्थ-चिन्ता क्यों है? संक्षेप में लिखिए।

उत्तर

जब मनुष्य में परार्थ-बुद्धि उत्पन्न होती है, वह पर-हित की चिन्ता करता है, उसके हृदय में दूसरों के लिए दया की भावना उत्पन्न होती है, उनसे वह प्रेम करता है, उन्हीं लोगों से उसे सहानुभूति हो जाती है। धीरे-धीरे वह दूसरों के लिए त्याग भी करने लगता है। अवसर आने पर दूसरों की सेवा करता है। यदि उसमें पदार्थ-बुद्धि न होती तो वह अपना स्वार्थ छोड़कर दूसरों की चिन्ता क्यों करता? इसलिए दया, प्रेम, सहानुभूति आदि गुणों की उत्पत्ति और विकास परार्थ-बुद्धि से, परोपकार की भावना से ही, होती है।

जब हम परार्थ-चिन्ता करते हैं, तो हम में दया, प्रेम, सहानुभूति, सेवा, त्याग आदि वे सभी सद्गुण आ जाते हैं, जिन्हें हम दूसरों में देखकर मोहित हो जाते हैं। इस प्रकार दूसरों की भलाई की बात सोचते-सोचते हम अपनी भी बहुत अधिक भलाई कर लेते हैं। इसलिए परार्थ-चिन्ता हमारी उच्च कोटि की स्वार्थ-चिन्ता है।

[१०]

समाज के लिये परोपकार के समान हित-साधक अन्य वस्तु नहीं। यह वह गुण है, जिससे समाज की स्थिति बनी है। यदि परोपकार न हो तो समाज कायम न रह सके। समाज की रक्षा के लिये, उसकी दशा सुधारने के लिए, उसमें सुख तथा शान्ति स्थापित करने के लिये, परोपकार की महत्ता को कौन स्वीकार नहीं करेगा? हमें चाहिए कि हम व्यक्तिगत संकुचित घेरे से निकलकर अपने सुख-दुःख की चिन्ता न करके जीवधारियों का हित करें। जो भूखे हों उन्हें भोजन करायें, जो नंगे हों उन्हें वस्त्र पहिनायें, जो दुःखी हों उनके दुःख दूर करें और जो अनाथ हों उनकी सहायता करें। कहने की आवश्यकता नहीं कि परोपकार के समान उत्कृष्ठ धर्म दूसरा नहीं है।

उक्त अवतरण के आधार पर परोपकार का महत्व अपनी भाषा में लिखिए।

उत्तर

परोपकार के ही कारण समाज बना हुआ है। अगर लोग परोपकार करना छोड़ दें तो समाज छिन्न-भिन्न हो जावेगा। परोपकार से समाज की रक्षा होती है, उसकी दशा में सुधार होता है, उसमें सुख और शान्ति आती है। जब हम अपने स्वार्थ के घेरे से निकलकर सब के सुख और दुःख का ध्यान रखेंगे तभी हमारी और दूसरों की उन्नति होगी। हमें चाहिये कि भूखों को भोजन दें, नंगों को कपड़े दें, दुःखी और अनाथों की सहायता करें। तभी हम सच्चा परोपकार करेंगे। इस प्रकार जब सभी सुखी और सम्पन्न हो जावेंगे तो सम्पूर्ण समाज सुखी होगा।

[११]

हिंसा से मनुष्यत्व मर जाता है। लाखों वर्ष में मनुष्य पशुता से मनुष्यत्व की ओर आया है। हम उसे फिर पशुता में गिराना नहीं चाहते। हिंसा भी दो प्रकार की होती है। एक संगठित हिंसा और दूसरी व्यक्तिगत हिंसा। संगठित हिंसा के द्वारा जब हम किसी

समस्या को हल करना चाहते हैं तो उसमें भी नियमों का पालन करना पड़ता है। पर असंगठित हिंसा में कोई नियम नहीं रहता।

उक्त अवतरण का भाव अपनी भाषा में लिखिए।

उत्तर

हिंसा करने से मनुष्य की आत्मा का हनन हो जाता है, वह पशु के समान बर्बर बन जाता है, मनुष्य नहीं रह जाता। लाखों वर्षों में मनुष्य अपनी पाशविक प्रवृत्तियों को छोड़कर मानवता की ओर अग्रसर हुआ है अर्थात् वह बहुत दिनों में सभ्य मनुष्य बना है। मनुष्य को हिंसा की शिक्षा देकर हम उसे फिर पशु नहीं बनाना चाहते। हिंसा दो तरह की होती है। एक तो सामूहिक, इसमें एक समूह दूसरे समूह को हानि पहुँचाता है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को हड़पना चाहता है। इसमें कुछ नियम रहते हैं, जिनका सब पालन करते हैं। पर व्यक्तिगत हिंसा में, जबकि मनुष्य व्यक्तिगत रूप से किसी को हानि पहुँचाता है तो कोई नियम नहीं रहता। मनुष्य पशुओं के समान काम करने लगता है। तात्पर्य यह है कि हिंसा बुरी चीज है। किन्तु सामूहिक हिंसा से व्यक्तिगत हिंसा तो बहुत ही बुरी है।

[१२]

"हमें स्वराज्य तो मिल गया, परन्तु सुराज्य अभी हमारे लिये एक सुखद स्वप्न ही है। इसका प्रधान कारण यह है कि देश को समृद्ध बनाने के उद्देश्य से कठोर परिश्रम करना हमने अब तक नहीं सीखा। श्रम का महत्व और मूल्य हम जानते ही नहीं। हम अब भी आरामतलब हैं। हमें हाथों से यथेष्ट काम करना रुचता ही नहीं। हाथों से काम करने को हम हीन लक्षण समझते हैं। हम कम से कम काम द्वारा जीविका चाहते हैं। हम यही सोचते रहते हैं कि किस तरह काम से बचा जाय। यह दूषित मनोवृत्ति राष्ट्र की आत्मा में जा बैठी है और वहाँ से हटती नहीं। यदि हम इससे मुक्त नहीं होते और आज समाज से हम जितना पा रहे हैं या लेना चाहते हैं, उससे कई गुना अधिक उसे अपने कठोर श्रम से नहीं देते,

तो देश आगे नहीं बढ़ सकता और स्वराज्य सुराज्य में नहीं परिणत हो सकता ।''

उक्त अवतरण का भावार्थ अपनी भाषा में लिखिए ।

उत्तर

भारत के लोगों को स्वराज्य (अपना शासन) तो मिल गया, किन्तु सुराज्य (अच्छा शासन) तब तक नहीं मिल सकता, जब तक वे देश की उन्नति के लिये खूब मेहनत नहीं करते । आराम से रहने और मेहनत को बुरा समझने की जो आदत हम में पड़ गई है, वह देश की उन्नति में बाधक है । जब तक हम इस आदत को छोड़कर कठिन परिश्रम द्वारा समाज का बदला नहीं चुकाते, तब तक हमारा राज्य अच्छे राज्य में नहीं बदल सकता ।

[१३]

''हमारी समाज के मूल उद्देश्य क्या हैं, इसका सार इधर 'समाजवादी ढग की समाज व्यवस्था' के वाक्यांश द्वारा प्रस्तुत किया गया है । मोटे तौर पर इसके माने यह हैं कि आगे बढ़ने का रास्ता चुनते समय हम सारे समाज के हित की बात सोचेंगे, किसी खास वर्ग या व्यक्ति के लाभ की नहीं और विकास-पद्धति एवं सामाजिक-आर्थिक सम्बन्धों का विधान कुछ इस तरह निर्धारित करेंगे कि न सिर्फ राष्ट्रीय आय और सम्पत्ति में विषमता घटती ही चली जायें, आर्थिक उन्नति से समाज के वह वर्ग विशेष रूप से लाभान्वित हों जो अपेक्षाकृत कम सम्पन्न हैं ।''

उक्त गद्यांश का सारांश अपनी सरल भाषा में लिखिए ।

उत्तर

भारतीय समाज 'समाजवादी ढंग की समाज-व्यवस्थां' के मार्ग पर चलने का निश्चय कर चुका है, इसका तात्पर्य है—व्यक्ति का भला न सोचकर समाज का कल्याण चाहना । इसके उन्नति के ढंग, अर्थ-व्यवस्था तथा नियमों से राष्ट्रीय आय बढ़ने और रोजगार में वृद्धि होने के साथ-साथ धन की विषमता कम होगी । इससे निर्धनों को विशेष लाभ मिलेगा ।

अपठित पद्यांश

[१]

नीचे लिखे अवतरण के भावों को अपने शब्दों में लिखिए :—

किस लिये निरन्तर जलते रहते हो मेरे दीपक ?
क्यों कठोर यह व्रत तुमने पाला है मेरे दीपक ?
तुम हो मिट्टी के पुतले, मानव भी मिट्टी का रे,
पर दोनों के जीवन में कितना महान् अन्तर रे !
पर-हित के लिये सदा तुम तिल-तिल जल-जल मरते हो,
जग को ज्योतित करने में कब कोर कसर रखते हो।
पर मानव ! रे उसकी वह प्रज्वलित स्वार्थ की ज्वाला,
जग को नित जला जलाकर करती उसका मुँह काला।
प्रातः रवि के आने पर तुम मन्द मन्द जलते हो,
अपने से जो तेजस्वी उसका आदर करते हो।
पर मानव, वह अपने से तेजस्वी का भी वैभव,
क्या कभी देख सकता है, होकर प्रशान्त औ नीरव।

उत्तर

भावार्थ—इस पद्य अवतरण में कवि ने मानव और दीपक दोनों के जीवन की तुलना करते हुए समानता और अन्तर बताया है। कवि कहता है कि मानव और दीपक दोनों ही मिट्टी से बने हैं, फिर भी दोनों के जीवन में महान् अन्तर है। दीपक परोपकार के लिये धीरे-धीरे जलता है, वह संसार को उजाला देने का भरसक प्रयत्न करता है। दीपक परोपकारी है, पर मनुष्य स्वार्थी है। वह स्वार्थ के लिये संसार को जलाकर अपना मुँह काला कर लेता है।

कवि की कल्पना है कि दीपक अपने से बड़ों का आदर करना जानता है, जब अधिक तेज वाला सूय प्रातःकाल निकल आता है तो मानो उसके सम्मान में दीपक का प्रकाश मन्द पड़ जाता है। किन्तु मनुष्य अपने से अधिक योग्य पुरुष का मान निरपेक्ष भाव से नहीं कर सकता।

[२]

नीचे लिखे अवतरण के भाव को अपने शब्दों में लिखिए :—

निज विनाश रत, उद्धत, मतिहत, योग भ्रष्ट यह वामन-मानव,
अहंकार मज्जित, निर्लज्जित, बना रहा है, निज को दानव।
अहंकार-कर्दम-निमग्न यह, नग्न बन रहा है अति दानव,
उन्नत बुद्धि, अधीनत निष्ठा, तब इसका क्यों न हो पराभव ?
तुम मंगलमय इस धरती पर करो अवतरित नन्दन-कानन,
हे ज्योतिर्मय ! निज आभा से चमका दो धरणी का आँगन।

उत्तर

भावार्थ—इस पद्य अवतरण में कवि मनुष्य के दुष्कर्मों के प्रति खेद प्रकट करते हुए ईश्वर से प्रार्थना करता है कि वह इस धरती को आनन्दपूर्ण बना दे।

कवि कहता है कि यह तुच्छ मनुष्य अपने नाश के कामों में लगा हुआ है, बड़ा उद्दण्ड है, इसकी बुद्धि नष्ट हो गई है। इसकी दशा किसी ऐसे तपस्वी के समान है जो योग से स्खलित होकर पतित हो गया हो। यह घमण्ड में डूबा हुआ, निर्लज्ज मनुष्य राक्षस के समान बना हुआ है। घमण्ड के दलदल में फँसा हुआ मानव नग्न नृत्य कर रहा है। इसकी बुद्धि अवश्य उन्नति की ओर है, पर इसकी श्रद्धा निम्न श्रेणी में है, फिर भला इसकी पराजय क्यों न हो ?

फिर कवि ईश्वर से प्रार्थना करता है कि हे मंगलमय भगवान् ! इन बुराइयों से भरे मनुष्य से तो कुछ आशा है नहीं, तुम्हीं इस पृथ्वी को स्वर्ग के समान सुन्दर बनाकर अपने दिव्य प्रकाश से चमका दो।

[३]

होते हम हृदय किसी के बिरहाकुल जो,
होते हम आँसू किसी प्रेमी के नयन के;
पूरे पतझड़ में बसन्त की बयार होते,
होते हम जो कहीं मनोरथ सुजन के।
दु:ख दलितों में हम आशा की किरन होते,
होते पछतावा अविवेकियों के मन के;

मानते विधाता का बड़ा ही उपकार हम,
होते गाँठ के धन कहीं जो दीन जन के ।

(क) उक्त अवतरण का शीर्षक बताइए ।
(ख) इसका भावार्थ अपने शब्दों में लिखिए ।

उत्तर

(क) इच्छा या अभिलाषा ।

(ख) कवि अपनी इच्छा प्रकट करता है कि यदि वह किसी विरह-विकल का मन होता या किसी प्रेमी की आँख का आँसू होता या पतझड़ में वसन्त की हवा होता या सज्जन पुरुष के मन की इच्छा होता या दीन-दुखी लोगों में एक क्षीण आशा होता या अज्ञानी लोगों के मन का पश्चाताप होता या किसी गरीब की गाँठ का धन होता तो ईश्वर का बड़ा उपकार मानता। संक्षेप में, कवि की यह अभिलाषा है कि वह ऐसा कुछ होता जिसके अस्तित्व का संसार में महत्व है अर्थात् किसी भी तरह वह अपने जीवन से दूसरों को सुख-शान्ति पहुँचा सकता ।

[४]

वदन प्रफुल्ल दया धर्म में प्रवृत्त मन,
मधुर विनीत वाणी मुख से सुनाते हैं ।
प्रेमी देश-जाति के, अनिन्दक-अमानी सदा,
हेर हेर बिछड़े जनों को अपनाते हैं ।
पर सुख देख जो न होते हैं मलीन चित्त,
दीन बलहीन को सहाय पहुँचाते हैं ।
ऐसे नररत्न विश्व-भूषण उदार धीर,
ईश्वर के प्यारे महापुरुष कहाते हैं ।

(क) उक्त अवतरण का शीर्षक बताइए ।
(ख) इसका भावार्थ अपने शब्दों में प्रकट कीजिए ।

उत्तर

(क) महापुरुष ।

(ख) कवि इस पद्य अवतरण में महापुरुष की परिभाषा बताता है कि जो लोग सदा प्रसन्न-मुख रहते हैं, जिनका मन दया और धर्म के कामों में ल

रहता है, जो सदा अपने मुख से नम्रतापूर्ण मीठी वाणी बोलते हैं, जिन्हें अपने देश और जाति से प्रेम है, किसी की बुराई नहीं करते, किसी से अपना आदर-सम्मान नहीं चाहते, जो बिछुड़े हुए लोगों को देखकर अपना लेते हैं, जो पराया सुख देखकर मन में कभी उदास नहीं होते, उससे जलते नहीं, जो दीनों और निर्बलों की सहायता करते हैं, ऐसे संसार को सुशोभित करने वाले, धैर्यशाली, उदार लोग ईश्वर के प्यारे होते हैं और महापुरुष कहलाते हैं।

[५]

वीरों की सुमाताओं का यश जो नहीं गाता,
वह व्यर्थ सुकवि होने का अभिमान जनाता।
जो वीर सुयश गाने में है ढील दिखाता,
वह देश के वीरत्व का है मान घटाता।
सब वीर किया करते हैं सम्मान कलम का,
वीरों का सुयश गान है अभिमान कलम का।

(क) कवियों को वीरों का यश क्यों गाना चाहिए ?

(ख) उक्त पद्यांश का भावार्थ लिखो।

उत्तर

(क) देश की सुरक्षा का भार वीरों पर ही रहता है। वीरत्व देश के लिए गौरव की बात है। अतः वीरों को प्रोत्साहित करने व उनके प्रति सम्मान सूचित करने के लिए कवियों को उनका यशगान करना चाहिए। [illegible]ी लेखनी का तो वीर भी सम्मान करते हैं।

(ख) इस पद्य-भाग में कवि कवि-कर्म का निर्देश करता हुआ कहता है कि जो कवि वीरों की माताओं का यशगान नहीं करते, वे अच्छे कवि होने का गर्व व्यर्थ करते हैं। जो वीरों का यश गाने में ढील करता है, वीरों का गुणगान नहीं करता, वह कवि देश की वीरता का मान घटाता है। सब वीर लेखकों और कवियों का आदर करते हैं, इसलिए वीरों के यशगान में कवियों और लेखकों को गर्व का अनुभव करना चाहिए।

[६]

नीचे लिखे अवतरण का अर्थ सरल शब्दों में लिखो :—

हाँ ! तुम ही हो अपने सहाय,
जो बुद्धि कहे उसको न मानकर फिर किसकी नर शरण जाय ?
यह प्रकृति परम रमणीय, अखिल ऐश्वर्य भरी, शोधक विहीन,
तुम उसका पटल खोलने में परिकर कसकर . बन कर्म-लीन।
सबका नियमन शासन करते बस बढ़ा चलो अपनी क्षमता,
तुम जड़ता को चैतन्य करो, विज्ञान सहज साधन उपाय।

अर्थ—कवि इस पद्य-भाग में लोगों को आत्म-निर्भरता का उपदेश देते हुए कहता है कि अपनी सहायता करने वाले स्वयं तुम्हीं हो। उन्नति करने के लिए किसी दूसरे से सहायता की आशा मत करो। अपनी बुद्धि पर भरोसा रखो। यदि बुद्धि की बात नहीं मानोगे तो फिर तुम्हारा सहारा कौन है ? यह सुन्दर प्रकृति सम्पूर्ण सुख के साधनों से भरी हुई है, केवल उनको खोजने वाले नहीं हैं। तुम प्रकृति में छिपे सुख-साधनों को ढूँढने के लिये कमर कसकर काम में लग जाओ। तुम सब को नियम में रखते हुए एवं सब पर शासन करते हुए अपनी शक्ति बढ़ा लो। इस प्रकार तुम जड़ प्रकृति को चैतन्य कर लोगे। जो प्रकृति तुम्हें जड़ के समान निकम्मी मालूम होती है, वही चैतन्य बनकर तुम्हारी सेवा करेगी। प्रकृति का भोग करने के लिये सरल उपाय है विज्ञान। विज्ञान द्वारा तुम प्रकृति का रहस्य जान सकते हो और उसके ऐश्वर्य को भोग स[illegible] हो।

[७]

[illegible]म में न कुछ सामर्थ्य है, यह मान लेना भूल है,
[illegible]र के लिये यह भावना दुर्भाग्य-दुर्गति-मूल है।
सबको विधाता ने बनाया शक्तिमान् समर्थ है,
जो नर निपट निश्चेष्ट है केवल वही असमर्थ है।
संसार में ऐसी न कोई वस्तु दुर्लभ है कहीं,
उद्योग करके भी जिसे हम प्राप्त कर सकते नहीं।
अज्ञान ही केवल हमारी हीनता का हेतु है,
दुर्भाग्य का, दौर्बल्य का, दुःख-हीनता का हेतु है।

उक्त पद्य-भाग में प्रदर्शित किये गये कवि के भावों को अपने शब्दों में स्पष्ट करो।

भावार्थ—कवि मनुष्य में छिपी हुई शक्तियों की ओर संकेत करते हुए लोगों को सचेत करता है कि हम में कोई शक्ति नहीं है, ऐसी भावना उचित नहीं है। यह विचार मनुष्य के दुर्भाग्य और दुर्दशा की जड़ है। ईश्वर ने सब को शक्तिशाली और बलवान् बनाया है। शक्तिहीन व्यक्ति वही है जो बिल्कुल निकम्मा है, कुछ काम नहीं करता। संसार में कहीं भी कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे कोशिश करके न पा सकें। हम जो अपने आपको हीन और असमर्थ समझते हैं, इसका एकमात्र कारण हमारा अज्ञान है। यही अज्ञान हमारी कमजोरी, दुःख और दरिद्रता का कारण है।

[८]

निम्नलिखित अवतरण का भावार्थ लिखो :—

जगमग नगरों से दूर-दूर, है जहाँ न ऊँचे खड़े महल,
टूटे-फूटे कुछ कच्चे घर, दिखते खेतों में चलते हल।
पुरई पालों खपरैलों में, रहिमा-रमुआ के नामों में,
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ? वह बसा हमारे गाँवों में।

भावार्थ—कवि गाँवों का वर्णन करता हुआ कहता है कि हमारा सच्चा भारतवर्ष तो गाँवों में ही रहता है। गाँवों में ही भारत की सच्ची सभ्यता देखी जा सकती है, जहाँ जगमग करते नगरों से दूर ऊँचे-ऊँचे महल नहीं खड़े हैं, अपितु टूटे-फूटे कच्चे घर हैं और खेतों में हल चलते दिखाई दे रहे हैं। हमारे उन गाँवों के घास-फूँस और खपरैलों तथा रहीमा, रमुआ आदि नामों में सच्चा भारत निवास करता है।

निम्नलिखित अवतरण का भाव अपने शब्दों में लिखिए—

जो मंगल उपकरण कहाते वे मनुजों के पाप हुए क्यों ?
विस्मय है, विज्ञान विचारे के वर ही अभिशाप हुए क्यों ?
धरणी चीख कराह रही है, दुर्बल शस्त्रों के भारों से,
सभ्य जगत को तृप्ति नहीं, अब भी युग व्यापी संहारों से।

दलित हुए निर्बल सबलों से, मिटे राष्ट्र, उजड़े दरिद्रजन,
आह ! सभ्यता आज कर रही असहायों का शोणित शोषण।
क्रान्ति धात्रि कविते ! जाग उठ आडम्बर में आग लगादे,
पतन, पाप पाखण्ड जलें जग में ऐसी ज्वाला सुलगादे।

उत्तर

संसार की वर्तमान अशान्ति और दुर्दशा से दुःखी कवि अपनी कविता से कह रहा है—आज संसार में भलाई के साधन पाप क्यों कहलाते हैं, और विज्ञान की देन दुःख देने वाली क्यों हो गई है ? सारा संसार भाँति-भाँति के संहारक अस्त्रों से चिल्ला रहा है, लेकिन अपने को सभ्य कहने वालों का नाश करने से सन्तोष नहीं होता। बलवान् निर्बल को दबा रहा है, राष्ट्र मिट रहे हैं, दरिद्र उजाड़े जा रहे हैं और सभ्यता के नाम पर लाचारों को चूसा जा रहा है। कविता ! तू उठ और इस आडम्बर तथा पाखण्ड को जला दे।

[१०]

निम्नलिखित अवतरण के भावों को अपने शब्दों में लिखिए—

न अपना ही न जगत का ज्ञान,
न परिचित हैं निज नयन न कान,
दीखता है जग कैसा तात !
नाम गुण रूप अजान ?
तुम्हीं सा हूँ मैं भी अज्ञात,
वत्स जग है अज्ञेय महान्।

उत्तर

कोई अनुभवी व्यक्ति अपने भोले बच्चे को विश्व की मानवता बता रहा है।

न तो अपने विषय में जानकारी है और न संसार के विषय में। हम तो इतने अज्ञान हैं कि अपनी आँख तथा कान से भी पूर्ण परिचित नहीं हैं कि वे किन तत्वों के बने हैं तथा कैसे कार्य करते हैं ? हे प्रिय ! संसार के नाम, गुण और रूप सभी अजाने हैं, यह तुम्हें कैसा मालूम होता है ? मैं भी तुम्हारी ही तरह कुछ भी नहीं जानता। हे पुत्र ! यह संसार इतना बड़ा है कि हम इसे जान नहीं सकते।

: ४ :

हिन्दी-व्याकरण

समास

समास—दो या दो से अधिक पदों के योग को समास कहते हैं। समास शब्द का अर्थ है संक्षेप, भली प्रकार सटकर बैठना। समास होने से भाषा में सौन्दर्य आता है, शब्दों का विस्तार कम हो जाता है, वे एक-दूसरे से मिलकर एक हो जाते हैं; फिर भी अर्थ में कोई अन्तर नहीं पड़ता। जैसे 'राजा का पुरुष' कहने में तीन शब्द प्रयुक्त करने पड़े। समास होने पर इसका रूप 'राज-पुरुष' हो जावेगा।

विग्रह—'विग्रह' शब्द का अर्थ है भेद, लड़ाई, झगड़ा। समास वाले पदों को विभक्ति-निर्देश-पूर्वक अलग-अलग करके दिखलाना विग्रह कहलाता है। जैसे, 'माता-पिता' समास वाला पद है। इसका विग्रह हुआ—'माता और पिता'।

भेद—समास छः प्रकार के होते हैं—(१) द्वन्द्व, (२) द्विगु, (३) अव्ययी-भाव, (४) कर्मधारय, (५) तत्पुरुष, और (६) बहुव्रीहि।

(१) **द्वन्द्व—जहाँ दोनों पद प्रधान हों, वहाँ द्वन्द्व समास होता है।** इसके दोनों पदों के बीच में 'और' का लोप रहता है। जैसे, भाई-बहिन। यहाँ दोनों पद प्रधान हैं। किसी भी बात का तात्पर्य दोनों से ही होगा। यदि कोई कहे कि 'भाई-बहिन जा रहे हैं', तो दोनों ही चलेंगे। इनके बीच 'और' शब्द भी छिपा है। 'भाई-बहिन' का तात्पर्य है 'भाई और बहिन'। अन्य उदाहरण—माता-पिता, रात-दिन, सुख-दुख, हँसी-खेल, आलू-गोभी।

(२) **द्विगु—जहाँ पहला पद संख्यावाचक विशेषण हो, वहाँ द्विगु समास**

होता है। जैसे, पंचरत्न, सप्तर्षि, चौराहा, चौमासा। ये शब्द समूह के वाचक होते हैं। 'पंचरत्न' का अर्थ हुआ पाँच रत्नों का समूह।

(३) **अव्ययीभाव—जहाँ पहला पद अव्यय हो, वहाँ अव्ययीभाव समास होता है।** जैसे,

यथाशक्ति	शक्ति के अनुसार
यथासंख्य	संख्या के अनुसार
प्रत्येक	एक-एक करके
यावज्जीवन	जीवनपर्यन्त

(४) **कर्मधारय—जहाँ पहला पद विशेषण और दूसरा विशेष्य हो, वहाँ कर्मधारय समास होता है।** कभी-कभी विशेष्य पहले और विशेषण बाद में भी आता है। जैसे,

नील-कमल	नीला कमल
चन्द्र-वदन	चन्द्र के समान वदन
विद्या-धन	विद्यारूपी धन

(५) **तत्पुरुष—जहाँ दूसरा पद प्रधान होता है, वहाँ तत्पुरुष समास होता है।** जैसे, देशभक्त को प्राण-दण्ड मिला। यहाँ 'दण्ड' केवल भक्त को मिलेगा, देश को नहीं, देश तो केवल उसका निर्देश करता है। तत्पुरुष के विग्रह में कर्त्ता और सम्बोधन को छोड़कर शेष सभी कारक आते हैं। जैसे,

मनोहर	मन को हरने वाला	कर्म
व्रतधारी	व्रत को धारण करने वाला	,,
हस्तलिखित	हस्त द्वारा लिखित	करण
विषपूर्ण	विष से पूर्ण	,,
[illegible]	धर्म के लिये शाला	सम्प्रदान
स्नानगृह	स्नान के लिये गृह	,,
देश-निकाला	देश से निकाला	अपादान
हरि-कथा	हरि की कथा	सम्बन्ध
कृषक-वधू	कृषक की वधू	,,
ध्यानमग्न	ध्यान में मग्न	अधिकरण
सत्यनिष्ठ	सत्य में निष्ठ	,,

किसी शब्द का विरुद्ध अर्थ बताने के लिये 'अ' अथवा 'अन्' का प्रयोग किया जाता है। जिस शब्द के आदि में व्यंजन होता है, उससे पहले 'अ' लगाते हैं और जिसके आदि में स्वर होता है, उसके पहले 'अन्' लगाते हैं। यह भी तत्पुरुष समास ही कहलाता है। जैसे,

ज्ञान	अज्ञान
विचार	अविचार
ईश्वरवाद	अनीश्वरवाद
अर्थ	अनर्थ

(६) **बहुव्रीहि—जहाँ अन्य पद प्रधान हो अर्थात् दोनों पद मिलकर किसी तीसरे अर्थ के बोधक हों, वहाँ बहुव्रीहि समास होता है।** यदि कहा जावे कि 'दशमुख लंका का राजा था' तो यहाँ रावण से तात्पर्य है जो दशमुख वाला था। जैसे,

पीताम्बर	पीत हैं अम्बर जिसके	(विष्णु)
लम्बोदर	लम्बा है उदर जिसका	(गणेश)
चन्दशेखर	चन्द्र है शेखर में जिसके	(शिव)

विशेष—अर्थ से भी समास में अन्तर पड़ जाता है। 'पीताम्बर' का अर्थ यदि पीले कपड़ों वाले, विष्णु, से हैं तो यहाँ बहुव्रीहि समास होगा, और यदि इसका तात्पर्य पीले कपड़े से है तो कर्मधारय समास होगा। इसी प्रकार 'दशमुख' शब्द का अर्थ यदि 'दशमुखों वाला रावण' है तो बहुव्रीहि समास होगा और इसका अर्थ यदि केवल दशमुखों का समूह है तो द्विगु समास होगा।

यदि दो से अधिक पदों में समास करना हो तो पहले दो पदों को समास द्वारा एक बना लेते हैं, फिर उसका तीसरे से समास करते हैं। इसी प्रकार चौथे और पाँचवें आदि से। अन्तिम बार जो समास होता है, पूरे पद में वही माना जाता है। जैसे,

कोल-किरात-किशोरी

कोल और किरात	=कोलकिरात	=द्वन्द्व समास
कोल किरातों की किशोरी	=कोलकिरात किशोरी	=तत्पुरुष समास

देश-काल-अनुमान

देश और काल	=देशकाल	=द्वन्द्व समास
देशकाल का अनुमान	=देशकाल-अनुमान	=तत्पुरुष समास

दो शब्दों के बीच समास बताने के लिए (-) चिन्ह का प्रयोग किया जाता है। किन्तु अब इसका प्रयोग धीरे-धीरे कम हो रहा है।

सन्धि

'सन्धि' शब्द का अर्थ है मेल, जोड़। **जब दो स्वर या व्यंजन मिलकर एक नए रूप में बदल जाते हैं तो वह परिवर्तन सन्धि कहलाता है।** सन्धियों के मुख्य तीन भेद होते हैं—(१) स्वर सन्धि, (२) व्यंजन सन्धि, और (३) विसर्ग सन्धि।

(१) **स्वर सन्धि—जहाँ एक स्वर दूसरे स्वर से मिलकर नया रूप धारण करे, वहाँ स्वर सन्धि होती है।** जैसे, रमा+ईश=रमेश (आ+ई=ए)। इसके मुख्य निम्नलिखित हैं—

(अ) यदि अकार, इकार और उकार के ह्रस्व या दीर्घ रूप के पश्चात् क्रमशः इन्हीं का ह्रस्व या दीर्घ रूप हो तो दोनों का मिलकर उसी का दीर्घ रूप हो जाता है। जैसे,

स्वर्ण+अवसर	=	स्वर्णावसर	(अ+अ=आ)
विद्या+आलय	=	विद्यालय	(आ+आ=आ)
धर्म+आत्मा	=	धर्मात्मा	(अ+आ=आ)
विद्या+अर्थी	=	विद्यार्थी	(आ+आ=आ)
हरि+इच्छा	=	हरीच्छा	(इ+इ=ई)
नदी+ईश	=	नदीश	(ई+ई=ई)
शची+इन्द्र	=	शचीन्द्र	(ई+इ=ई)
कवि+ईश्वर	=	कवीश्वर	(इ+ई=ई)
भानु+उदय	=	भानूदय	(उ+उ=ऊ)
सिन्धु+ऊर्मि	=	सिन्धूर्मि	(उ+ऊ=ऊ)
वधू+उत्कंठा	=	वधूत्कंठा	(ऊ+उ=ऊ)

(ग्रा) ह्रस्व या दीर्घ अकार के पश्चात् यदि ह्रस्व या दीर्घ इकार ग्रथवा उकार ग्राता है तो दोनों को मिलकर क्रमशः एकार अथवा ग्रोकार हो जाता है। जैसे,

सुर+इन्द्र	=	सुरेन्द्र	(अ+इ=ए)
राका+ईश	=	राकेश	(ग्रा+ई=ए)
रमा+इति	=	रमेति	(ग्रा+इ=ए)
सुर+ईश	=	सुरेश	(ग्र+ई=ए)
वेद+उपदेश	=	वेदोपदेश	(अ+उ=ओ)
सरिता+ऊर्मि	=	सरितोर्मि	(ग्रा+ऊ=ग्रो)
विद्या+उन्नति	=	विद्योन्नति	(ग्रा+उ=ग्रो)
सूर्य+ऊष्मा	=	सूर्योष्मा	(ग्र+ऊ=ओ)

(इ) ग्रकार ग्रथवा ग्राकार के बाद यदि ग्रोकार ग्रथवा ग्रौकार एवं एकार अथवा ऐकार आवे तो दोनों को मिलकर क्रमशः औकार ग्रथवा ऐकार हो जाता है। जैसे,

राम+एव	=	रामैव	(आ+ए=ऐ)
सदा+एव	=	सदैव	(ग्रा+ए=ऐ)
मत+ऐक्य	=	मतैक्य	(ग्र+ऐ=ऐ)
महा+ऐश्वर्य	=	महैश्वर्य	(आ+ऐ=ऐ)
अधर+ओष्ठ	=	ग्रधरौष्ठ	(अ+ओ=ग्रौ)
महा+ग्रोज	=	महौज	(ग्रा+ओ=ग्रौ)
वन+ग्रौषधि	=	वनौषधि	(ग्र+ग्रौ=ग्रौ)
सुता+ग्रौत्कंठ्य	=	सुतौत्कंठ्य	(आ+ग्रौ=ग्रौ)

(ई) ह्रस्व या दीर्घ इ, उ अथवा ऋ के बाद कोई ग्रसमान स्वर होता है तो पहले के स्थान पर क्रमशः य, व एवं र हो जाता है। जैसे,

यदि+ग्रपि	=	यद्यपि	(ई+अ=य)
इति+ग्रादि	=	इत्यादि	(इ+ग्रा=या)
करी+अश्व	=	कर्यश्व	(ई+ग्र=य)
नदी+ग्रानन्द	=	नद्यानन्द	(ई+ग्रा=या)

अति + उन्नत	=	अत्युन्नत	(इ + उ = यु)
प्रति + एक	=	प्रत्येक	(इ + ए = ये)
सु + आगत	=	स्वागत	(उ + आ = वा)
अनु + अर्थ	=	अन्वर्थ	(उ + अ = व)
पितृ + आज्ञा	=	पित्राज्ञा	(ऋ + आ = रा)
कर्तृ + अनुसार	=	कर्त्रनुसार	(ऋ + अ = र)

(उ) ए, ऐ, ओ अथवा औ के पश्चात् कोई स्वर होता है तो पहले के स्थान में क्रमशः अय्, आय्, अव् अथवा आव् हो जाता है। जैसे,

ने + अन	=	नयन	(ए + अ = अय)
गै + अक	=	गायक	(ऐ + अ = आय)
पो + अन	=	पवन	(ओ + अ = अव)
पौ + अक	=	पावक	(औ + अ = आव)

(२) **व्यंजन सन्धि—जब कोई व्यंजन किसी स्वर या व्यंजन से मिलकर नया रूप धारण करता है, तब वह संयोग व्यंजन सन्धि कहलाता है।** इसके मुख्य नियम निम्नलिखित हैं :—

(अ) जब वर्ग के प्रथम अक्षर के बाद वर्ग का पाँचवाँ अक्षर हो तो प्रथम अक्षर के स्थान पर उसी वर्ग का पाँचवाँ अक्षर हो जाता है। जैसे,

दिक् + नाग	=	दिङ्नाग
जगत् + नाथ	=	जगन्नाथ
सत् + मार्ग	=	सन्मार्ग
उत् + नत	=	उन्नत

(आ) जब वर्गों के प्रथम अक्षर क, च, ठ, त, प के पश्चात् कोई स्वर या वर्ग के तीसरे-चौथे अक्षर अथवा य, र, ल, व आते हैं तो पद के अन्त वाले क, च, ट, त, प के स्थान पर उसी वर्ग के तीसरे अक्षर ग, ज, ड, द, ब हो जाते हैं। जैसे,

दिक् + गज	=	दिग्गज
अत् + भुत	=	अद्भुत
वाक् + ईश	=	वागीश
षट् + आनन	=	षडानन

(इ) तवर्ग के पश्चात् यदि चवर्ग अथवा टवर्ग आता है तो उसके स्थान पर क्रमशः चवर्ग या टवर्ग हो जाता है। जैसे,

उत्+चारण = उच्चारण
उत्+डयन = उड्डयन

(ई) मकार के पश्चात् यदि कोई व्यंजन हो तो उसका अनुस्वार हो जाता है, या 'क' से लेकर 'म' तक कोई अक्षर हो तो उसी वर्ग का पाँचवाँ अक्षर भी हो जाता है। जैसे,

सम्+वाद = संवाद, सम्वाद
सम्+चार = सञ्चार, संचार
सम्+घर्ष = सङ्घर्ष, संघर्ष
सम्+हार = संहार
सम्+तान = सन्तान, संतान
सम्+कोच = सङ्कोच, संकोच

(३) **विसर्ग सन्धि—विसर्ग के पश्चात् यदि कोई स्वर या व्यंजन हो तो विसर्ग में जो विकार होता है, उसे विसर्ग सन्धि कहते हैं।** इसके मुख्य नियम निम्नलिखित हैं—

(अ) यदि विसर्ग के पश्चात् क, ख या प, फ हो तो विसर्गों में कोई परिवर्तन नहीं होता। जैसे,

रजः+कण = रजःकण
पयः+पान = पयःपान
उषः+काल = उषःकाल
यशः+पाल = यशःपाल

(आ) यदि विसर्ग के पश्चात् च, छ हो तो विसर्ग का श और ट, ठ हो तो ष हो जाता है और त, थ हो तो स हो जाता है। जैसे,

निः+चय = निश्चय
मनः+छल = मनश्छल
धनुः+टंकार = धनुष्टंकार
मनः+ताप = मनस्ताप
अधः+तल = अधस्तल

(इ) यदि विसर्ग के पहले अ हो और बाद में अ के अतिरिक्त कोई स्वर हो तो विसर्गों का लोप हो जाता है। जैसे,

अतः+एव = अतएव
मनः+आदान = मनआदान
ततः+ऊर्ध्व = ततऊर्ध्व

(ई) यदि विसर्ग के पहले अ हो और बाद में भी अ हो तो पहले अ और विसर्ग का मिलकर ओ हो जाता है और दूसरे अ का पूर्व-रूप (ऽ) हो जाता है। जैसे,

तेजः+असि = तेजोऽसि
मनः+अनुसार = मनोऽनुसार

(उ) यदि विसर्ग से पूर्व अ हो और बाद में कोई व्यंजन हो तो विसर्ग तथा अ मिलकर ओ हो जाता है। जैसे,

मनः+रथ = मनोरथ
सरः+वर = सरोवर
तपः+वल = तपोवल

पद-व्याख्या

परिभाषा—किसी पद के विषय में पूरा परिचय देना पद-व्याख्या कहलाता है। इसे पद-परिचय, शब्द-निरुक्ति और पदान्वय भी कहते हैं।

संज्ञा

संज्ञा की पद-व्याख्या में निम्नलिखित बातें बतानी चाहिये—

(१) भेद (जातिवाचक, व्यक्तिवाचक, भाववाचक)।
(२) लिंग (स्त्रीलिंग, पुलिंग)।
(३) वचन (एकवचन, बहुवचन)।
(४) कारक (कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण, सम्बोधन)।
(५) सम्बन्ध (क्रिया एवं दूसरे शब्दों से)।

उदाहरण—

प्रश्न—निम्न वाक्यों में आये संज्ञा-शब्दों की पद-व्याख्या कीजिये—

(क) राम ने बाण से लंका के राजा को मारा ।

(ख) तुम्हारा भाई किस विद्यालय में पढ़ता है ?

(ग) सुरेश का मित्र रामायण पढ़ते समय हकलाता है ।

(घ) भारत में माता-पिता की आज्ञा सदा मानी गई है ।

(ङ) फूलों की सुगन्धि दूर तक जाती है ।

उत्तर—

(क) **राम**—संज्ञा, व्यक्तिवाचक, पुल्लिग, एकवचन, कर्त्ताकारक, 'मारा' क्रिया का कर्त्ता ।

बाण—संज्ञा, जातिवाचक, पुल्लिग, एकवचन, करणकारक, 'मारा' क्रिया का करण ।

लंका—संज्ञा, व्यक्तिवाचक, स्त्रीलिंग, एकवचन, सम्बन्धकारक, इसका सम्बन्ध 'राजा' से है ।

राजा—संज्ञा, जातिवाचक, पुल्लिग, एकवचन, कर्मकारक, 'मारा' क्रिया का कर्म ।

(ख) **भाई**—संज्ञा, जातिवाचक, पुल्लिग, एकवचन, कर्त्ताकारक, 'पढ़ता है' क्रिया का कर्त्ता ।

विद्यालय—संज्ञा, जातिवाचक, पुल्लिग, एकवचन, अधिकरण कारक, 'पढ़ता है' क्रिया का अधिकरण ।

(ग) **सुरेश**—संज्ञा, व्यक्तिवाचक, पुल्लिग, एकवचन, सम्बन्धकारक, इसका सम्बन्ध 'मित्र' से है ।

मित्र—संज्ञा, जातिवाचक, पुल्लिग, एकवचन, कर्त्ताकारक, 'हकलाता है' क्रिया का कर्त्ता ।

रामायण—संज्ञा, व्यक्तिवाचक, स्त्रीलिंग, एकवचन, कर्मकारक, 'पढ़ना' क्रिया का कर्म ।

(घ) **भारत**—संज्ञा, व्यक्तिवाचक, पुल्लिग, एकवचन, अधिकरण कारक, 'मानी गई है' क्रिया का अधिकरण ।

माता-पिता—संज्ञा, जातिवाचक, पुल्लिग, बहुवचन, सम्बन्धकारक, इनका सम्बन्ध 'आज्ञा' से है।

आज्ञा—संज्ञा, भाववाचक, स्त्रीलिंग, एकवचन, कर्त्ताकारक, 'मानी गई है' क्रिया का कर्त्ता।

(ङ) **फूलों**—संज्ञा, जातिवाचक, पुल्लिग, बहुवचन, सम्बन्धकारक, इनका सम्बन्ध 'सुगन्धि' से है।

सुगन्धि—संज्ञा, भाववाचक, स्त्रीलिंग, एकवचन, कर्त्ताकारक, 'जाती है' क्रिया का कर्त्ता।

सर्वनाम

सर्वनाम की पद-व्याख्या में निम्नलिखित बातें लिखनी चाहिये—

(१) भेद (पुरुषवाचक, निश्चयवाचक, अनिश्चयवाचक, सम्बन्धवाचक, प्रश्नवाचक, निजवाचक)।

(२) पुरुष (केवल पुरुषवाचक सर्वनाम में, उत्तम, मध्यम तथा अन्य पुरुष)।

(३) लिंग (स्त्रीलिंग, पुल्लिग)।

(४) वचन (एकवचन, बहुवचन)।

(५) कारक (कर्त्ता, कर्म, करण आदि)।

(६) सम्बन्ध (क्रिया तथा अन्य शब्दों से)।

प्रश्न—निम्न वाक्यों में आये सर्वनाम शब्दों की पद-व्याख्या कीजिये—

(क) जो यहाँ आया था, वह मेरा भाई है।

(ख) तुम्हारा भाई क्या करता है ?

(ग) किसी को दुःख मत दो।

(घ) अपना काम अपने आप करो।

(ङ) मेरे पास उसकी पुस्तक नहीं है।

उत्तर—

(क) **जो, वह**—सर्वनाम, सम्बन्धवाचक; पुल्लिग, एकवचन, कर्त्ताकारक, क्रमशः 'आया था' और 'है' क्रियाओं के कर्त्ता।

(ख) **तुम्हारा**—सर्वनाम, पुरुषवाचक, मध्यम पुरुष, पुल्लिग, एकवचन, सम्बन्धकारक, इसका सम्बन्ध 'भाई' से है।

क्या—सर्वनाम, प्रश्नवाचक, एकवचन, 'करता है' क्रिया का कर्म।

(ग) **किसी**—सर्वनाम, अनिश्चयवाचक, पुल्लिग, एकवचन, कर्मकारक, 'दो' क्रिया का कर्म।

(घ) **अपना**—सर्वनाम, निजवाचक, पुल्लिग, एकवचन, सम्बन्धकारक, इसका सम्बन्ध 'काम' से है।

अपने आप—सर्वनाम, निजवाचक, पुल्लिग, एकवचन, कर्त्ताकारक, 'करो' क्रिया का कर्त्ता।

(ङ) **मेरे**—सर्वनाम पुरुषवाचक, उत्तम पुरुष, पुल्लिग, एकवचन, अधिकरण कारक, 'है' क्रिया का अधिकरण।

उसकी—सर्वनाम, पुरुषवाचक, अन्य पुरुष, स्त्रीलिंग, एकवचन, सम्बन्धकारक, इसका सम्बन्ध 'पुस्तक' से है।

विशेषण

विशेषण की पद-व्याख्या में निम्नलिखित बातें लिखनी चाहिए—

(१) विशेषण के भेद (गुणवाचक, संकेतवाचक, संख्यावाचक अथवा परिमाणवाचक।

(२) विशेषण का विशेष्य।

(३) लिंग, जो कि विशेष्य के अनुसार होगा।

(४) वचन, जो कि विशेष्य के अनुसार होगा।

प्रश्न—निम्नलिखित वाक्यों में आये विशेषण शब्दों की मद-व्याख्या कीजिये—

(क) रमेश अच्छा लड़का है।

(ख) मेरे पास इतना समय नहीं है कि रुक सकूं।

(ग) वह बालक दरिद्र परिवार का है।

(घ) मेरे यहाँ चार साप्ताहिक पत्र आते हैं।

(ङ) यह गन्दी माला सड़े फूलों की है।

उत्तर—

(क) अच्छा—विशेषरग, गुरगवाचक, पुल्लिग, एकवचन, इसका विशेष्य 'लड़का' है।

(ख) इतना—विशेषरग, परिमारगबोधक, इसका विशेष्य 'समय' है।

(ग) वह—विशेषरग, संकेतवाचक, एकवचन, पुल्लिग, इसका विशेष्य 'बालक' है।

दरिद्र—विशेषण, गुणवाचक, एकवचन, पुल्लिग, इसका विशेष्य 'परिवार' है।

(घ) चार—विशेषरग, संख्यावाचक, पुल्लिग, वहुवचन, इसका विशेष्य 'पत्र' है।

साप्ताहिक—विशेषण, गुरगवाचक, इसका विशेष्य भी 'पत्र' है।

(ङ) गन्दी—विशेषण, गुरगवाचक, एकवचन, स्त्रीलिंग, इसका विशेष्य माला है।

सड़े—विशेषरग, गुरगवाचक, बहुवचन, पुल्लिग, इसका विशेष्य फूल हैं।

क्रिया

क्रिया की पद-व्याख्या में निम्नलिखित बातें बतानी चाहिए—

(१) भेद (सकर्मक, अकर्मक)।

(२) वाच्य (कर्तृवाच्य कर्मवाच्य, भाववाच्य)

(३) काल (भूत, वर्तमान, भविष्यत्)।

(४) पुरुष (उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष, अन्य पुरुष)।

(५) लिंग (स्त्रीलिंग, पुल्लिग)।

(६) वचन (एकवचन, वहुवचन)।

(७) सम्बन्ध (कर्त्ता, कर्म)।

प्रश्न—निम्न वाक्यों में आये क्रिया-शब्दों की पद-व्याख्या कीजिए—

(क) मैं आज दिल्ली से आया हूँ।

(ख) रमेश ने तुम्हें अपने घर बुलाया था।

(ग) तुम मेरठ कब जाओगे ?

(घ) चार दिन से वर्षा हो रही है।

(ङ) मुझ से वह काम न हो सकेगा।

उत्तर—

(क) **आया हूँ**—क्रिया, अकर्मक, कर्तृवाच्य, आसन्न भूतकाल, उत्तम पुरुष, पुल्लिग, एकवचन, इसका कर्त्ता 'मैं' है।

(ख) **बुलाया था**—क्रिया, सकर्मक, कर्तृवाच्य, पूर्ण भूतकाल, अन्य पुरुष, पुल्लिग, एकवचन, इसका कर्त्ता 'रमेश' और कर्म 'तुम्हें' है।

(ग) **जाओगे**—क्रिया, सकर्मक, कर्तृवाच्य, सामान्य भविष्यत् काल, मध्यम पुरुष, पुल्लिग, एकवचन, इसका कर्त्ता 'तुम' और कर्म 'दिल्ली' है।

(घ) **हो रही है**—क्रिया, अकर्मक, कर्तृवाच्य, अपूर्ण वर्तमान काल, अन्य पुरुष, स्त्रीलिंग, एकवचन, इसका कर्त्ता 'वर्षा' है।

(ङ) **हो सकेगा**—क्रिया, सकर्मक कर्मवाच्य, सम्भाव्य भविष्यत् काल, अन्य पुरुष, पुल्लिग, एकवचन, इसका कर्त्ता 'काम' है।

अव्यय

अव्यय की पद-व्याख्या में निम्नलिखित बातें बतानी चाहिए—

(१) भेद (क्रिया-विशेषण, सम्बन्धबोधक, समुच्चयबोधक, विस्मयादि-बोधक)।

(२) कार्य (यदि क्रिया-विशेषण अव्यय हो तो बताना चाहिए कि काल, स्थान, प्रकार, परिमाण, कारण, फल, स्वीकार, निषेध में से किसे प्रकट करता है)।

(३) सम्बन्ध (अन्य शब्दों के साथ क्या सम्बन्ध है?)।

प्रश्न—निम्न वाक्यों में आये अव्यय शब्दों की पद-व्याख्या कीजिए—

(क) रामू धीरे-धीरे काम करता है।

(ख) मोहन और सोहन के निकट कुत्ता बैठा है।

(ग) अरे! वह परीक्षा में बुरी तरह से असफल रहा।

(घ) हाँ, मैं अवश्य जाऊँगा।

(ङ) सुरेश ऊपर बैठा है।

उत्तर—

(क) **धीरे-धीरे**—अव्यय, क्रिया-विशेषण, 'करता है' क्रिया का प्रकार बता रहा है।

(ख) **और**—अव्यय, समुच्चयबोधक, 'मोहन' व 'सोहन' शब्दों को मिलाता है।

निकट—अव्यय, सम्बन्धबोधक, इसका सम्बन्ध 'मोहन और 'सोहन' से है।

(ग) **अरे !**—अव्यय, विस्मयादिबोधक, दुःख प्रकट करता है।

बुरी तरह—अव्यय, क्रिया-विशेषण, 'असफल रहा' क्रिया की दशा बताता है।

(घ) **हाँ**—अव्यय, क्रिया-विशेषण, स्वीकारवाचक भाव प्रकट कर रहा है।

अवश्य—अव्यय, क्रिया-विशेषण, स्वीकारवाचक भाव प्रकट करता है।

(ङ) **ऊपर**—अव्यय, क्रिया-विशेषण, स्थितिवाचक, इसका सम्बन्ध 'सुरेश' से है।

वाक्य-विश्लेषण

परिभाषा—वाक्य के छोटे-छोटे अंशों को पृथक करके उनका परस्पर सम्बन्ध बताना वाक्य-विग्रह कहलाता है।

वाक्य तीन प्रकार के होते हैं—(१) साधारण, (२) संयुक्त, और (३) मिश्रित।

(१) **साधारण वाक्य**—जिस वाक्य में एक क्रिया हो, वह साधारण वाक्य कहलाता है। जैसे,

राम हँसता है। बच्चे खेलते हैं।

(२) **संयुक्त वाक्य**—जहाँ दो या दो से अधिक साधारण वाक्य परस्पर निरपेक्ष रूप में आवें, वह संयुक्त वाक्य होता है। जैसे,

तुम पढ़ते रहते हो परन्तु तुम्हारा भाई घूमता रहता है। राम आया और पढ़ने लगा।

(३) **मिश्रित वाक्य**—जहाँ एक प्रधान वाक्य हो और एक या अनेक आश्रित वाक्य हों, वह मिश्रित वाक्य कहलाता है। आश्रित वाक्य के भी आश्रित वाक्य हो सकते हैं। जैसे,

रमेश ने बताया कि वह उत्तीर्ण हो गया है।

वह मनुष्य, जिसने मुझे बचाया था, कह रहा था कि वह आजकल बीमार है।

संयुक्त वाक्य का वाक्य-विग्रह

(अ) मैं पुस्तक उधार दे सकता हूँ, पर तुम्हें जिल्द बँधवानी पड़ेगी।

(१) मैं पुस्तक·········सकता हूँ=प्रधान उपवाक्य।

(२) तुम्हें जिल्द·········पड़ेगी=समान उपवाक्य नं० १ का।

'पर' दोनों का संयोजक है। सम्पूर्ण वाक्य संयुक्त है।

(आ) राम सत्य बोलता है परन्तु उमेश झूठा है और चोरी करता है।

(१) राम सत्य बोलता है =प्रधान उपवाक्य।

(२) उमेश झूठा है =समान उपवाक्य नं० १ का।

(३) चोरी करता है =समान उपवाक्य नं० २ का।

'परन्तु' तथा 'और' तीनों के संयोजक हैं। सम्पूर्ण वाक्य संयुक्त है।

आश्रित उपवाक्य के तीन भेद होते हैं—

(१) **संज्ञा उपवाक्य**—जो वाक्य संज्ञा की तरह किसी क्रिया का कर्त्ता अथवा कर्म हो। जैसे,

वेदों का उपदेश है कि ईश्वर घट-घट में समाया हुआ है। यहाँ 'ईश्वर घट-घट में समाया हुआ है' वाक्यांश 'उपदेश है' क्रिया का कर्म है। क्रिया के साथ यदि 'क्या' प्रश्न जोड़ें तो उत्तर यही प्राप्त होगा।

(२) **विशेषण उपवाक्य**—जो उपवाक्य प्रधान उपवाक्य में आये किसी संज्ञा शब्द की विशेषता प्रकट करे, वह विशेषण उपवाक्य होता है। जैसे,

वह मोटर उलट गई जो अभी गई थी। यहाँ 'जो अभी गई थी' वाक्यांश 'मोटर' शब्द की विशेषता प्रकट करता है।

(३) **क्रिया-विशेषण उपवाक्य**—जो उपवाक्य प्रधान उपवाक्य में आई क्रिया का समय, स्थान, कारण, प्रकार आदि बतावें, वे क्रिया-विशेषण उपवाक्य हैं। जैसे,

जब तुम कहोगे, मैं तभी आ सकता हूँ। इसमें 'जब तुम कहोगे' वाक्यांश 'आ सकता हूँ' क्रिया का समय प्रकट करता है।

मिश्रित वाक्य का वाक्य-विग्रह

(अ) वेदों का उपदेश है कि ईश्वर घट-घट में समाया हुआ है।

(१) वेदों का उपदेश है=प्रधान उपवाक्य।

(२) ईश्वर घट-घट में समाया हुआ है=संज्ञा उपवाक्य नं० १ के आश्रित, 'समाया हुआ है' क्रिया का कर्म।

सम्पूर्ण वाक्य मिश्रित है।

(आ) वह मोटर उलट गई जो अभी गई थी।

(१) वह मोटर उलट गई=प्रधान उपवाक्य।

(२) जो अभी गई थी=विशेषण उपवाक्य नं० १ के आश्रित, 'मोटर' की विशेषता बताता है।

सम्पूर्ण वाक्य मिश्रित है।

(इ) जब तुम कहोगे, मैं तभी आ सकता हूँ।

(१) मैं तभी आ सकता हूँ=प्रधान उपवाक्य।

(२) जब तुम कहोगे=क्रिया-विशेषण उपवाक्य नं० १ के आश्रित, 'आ सकता हूँ' क्रिया का समय बताता है।

सम्पूर्ण वाक्य मिश्रित है।

नीचे कुछ वाक्यों का विश्लेषण दिया जा रहा है।

(१) **यद्यपि विशालकाय मन्दिर ही भगवान की पूजा के स्थान माने जाते हैं, परन्तु वास्तव में भगवान दीन के हृदय में ही निवास करते हैं।**

(क) परन्तु वास्तव में·······निवास करते हैं=मुख्य उपवाक्य।

(ख) यद्यपि विशालकाय·······माने जाते हैं=क्रिया-विशेषण उपवाक्य, नं० (क) के आश्रित।

सम्पूर्ण वाक्य मिश्रित है।

(२) **सुन्दर पदार्थ अपनी सुन्दरता पर चाहे कितना ही मान करे, किन्तु असुन्दर पदार्थों की स्थिति में ही सुन्दर कहलाता है।**

(क) असुन्दर पदार्थों की स्थिति में ही सुन्दर कहलाता है—प्रधान उपवाक्य।

(ख) सुन्दर·······मान करे=क्रिया-विशेषण उपवाक्य (निर्णय बतलाता है), नं० (क) के आश्रित। सम्पूर्ण वाक्य मिश्रित है।

(३) इसी से कहते हैं कि हमारे देश का चरम लक्ष्य 'होना' ही है, 'करना' तो केवल उपलक्ष मात्र है।

(क) इसी से कहते हैं=प्रधान उपवाक्य।

(ख) हमारे देश का······होना ही है=संज्ञा उपवाक्य ('कहते हैं' क्रिया का कर्म), नं० (क) के आश्रित।

(ग) करना तो······मात्र है=संज्ञा उपवाक्य ('कहते हैं' क्रिया का कर्म), नं० (क) के आश्रित। सम्पूर्ण वाक्य मिश्रित है।

(४) वस्तुतः यथार्थ मनुष्य वही है जो मानवता का आदर करना जानता है, कर सकता है।

(क) वस्तुतः······वही है=प्रधान उपवाक्य।

(ख) जो मानवता······जानता है=विशेषण उपवाक्य ('वही' शब्द की विशेषता प्रकट करता है), नं० (क) के आश्रित। सम्पूर्ण वाक्य मिश्रित है।

(५) इस परार्थ-चिन्तन में मनुष्य का कल्याण है, अतएव यह कहा जाय कि परार्थ-चिन्तन हमारी उच्च कोटि की स्वार्थ-चिन्ता ही है तो यह सर्वथा उचित है।

(क) अतएव······जाय=प्रधान उपवाक्य।

(ख) इस परार्थ······कल्याण है=क्रिया-विशेषण उपवाक्य (हेतु बताता है), नं० (क) के आश्रित।

(ग) कि परार्थ······ही है=संज्ञा उपवाक्य। ('कहा जाय' क्रिया का कर्म), नं० (क) के आश्रित।

(घ) तो यह······उचित है=समानाधिकरण उपवाक्य। सम्पूर्ण वाक्य संयुक्त है।

(६) जो परिश्रम से कार्य करते हैं, वे अवश्य परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं।

(क) वे अवश्य······होते हैं=प्रधान उपवाक्य।

(ख) जो······करते हैं=विशेषण उपवाक्य ('वे' की विशेषता बतलाता है), नं० (क) के आश्रित। सम्पूर्ण वाक्य मिश्रित है।

(७) ऐसा मालूम होता था कि उसके मन में भीषण द्वन्द्व हो रहा है और वह समस्त विचार-शक्ति से अपने मनोभावों को दबा रहा है।

(क) ऐसा······था=प्रधान उपवाक्य।

(ख) कि उसके·······रहा है=विशेषण उपवाक्य ('ऐसा' की विशेषता बताता है), नं० (क) के आश्रित ।

(ग) और वह·······दबा रहा है=विशेषण उपवाक्य । ('ऐसा' की विशेषता बताता है) नं० (क) के आश्रित । सम्पूर्ण वाक्य मिश्रित है ।

नीचे कुछ समास और सन्धियाँ आदि दी जा रही हैं ।

१—(क) नीचे लिखे शब्दों में सन्धि-विग्रह कीजिये तथा समास बताइये—

रामोपासक, यावज्जीवन, धर्माधर्म, नराधम ।

(ख) सु, अनु और दुः उपसर्ग लगाकर प्रत्येक के तीन शब्द लिखिये।

उत्तर—

(क) **शब्द**		**सन्धि-विग्रह**		**समास**
रामोपासक	=	राम+उपासक	=	तत्पुरुष समास
यावज्जीवन	=	यावत्+जीवन	=	अव्ययीभाव समास
धर्माधर्म	=	धर्म+अधर्म	=	द्वन्द्व समास
नराधम	=	नर+अधम	=	कर्मधारय समास

(ख) **उपसर्ग**	**शब्द**
सु	सुपुत्र, सुगन्ध, सुकर्म
अनु	अनुचर, अनुसार, अनुयायी
दुः	दुःस्वप्न, दुःशासन, दुःशील

२—(क) निम्न शब्दों में समास बताइए:—

करुणा-पूर्ण, आनन्द-लहरी, कंठ-रव, नैसर्गिक नियम

(ख) निम्न शब्दों का सन्धि-विच्छेद कीजिए:—

तमसाच्छन्न, उद्वेलित, प्रत्येक, अनुल्लङ्घनीय

उत्तर—

(क) **शब्द**	**विग्रह**	**समास**
करुणा-पूर्ण	करुणा से पूर्ण	तत्पुरुष समास
आनन्द-लहरी	आनन्द की लहरी	,,
कंठ-रव	कंठ का रव	,,
नैसर्गिक-नियम		कर्मधारय समास

(ख)

शब्द	विच्छेद	सन्धि
तमसाच्छन्न	तमसा+आच्छन्न	स्वर सन्धि
उद्वेलित	उत्+वेलित	व्यञ्जन सन्धि
प्रत्येक	प्रति+एक	स्वर सन्धि
अनुल्लंघनीय	अनुत्+लंघनीय	स्वर सन्धि

३—निम्नलिखित शब्दों का शुद्ध रूप लिखिए:—

शराप, वादाविवाद, दुरावस्था

शब्द	शुद्ध रूप
शराप	शाप
वादाविवाद	वादविवाद
दुरावस्था	दुरवस्था

४—निम्न शब्दों का विग्रह करके समास बताइए:—

प्रतिवर्ष, राजपुरुष, लम्बोदर, भाई-बहिन

शब्द	विग्रह	समास
प्रतिवर्ष		अव्ययीभाव
राजपुरुष	राजा का पुरुष	तत्पुरुष समास
लम्बोदर	लम्बा है उदर जिसका	बहुव्रीहि
भाई-बहिन	भाई और बहिन	द्वन्द्व समास

५—नीचे दिये गये शब्दों में जो समास हैं, उन्हें विग्रह करके बतलाइए:—

राजपुत्र, नीलोत्पल, गजानन, राजारानी

शब्द	विग्रह	समास
राजपुत्र	राजा का पुत्र	तत्पुरुष समास
नीलोत्पल	नीला उत्पल	कर्मधारय समास
गजानन	गज के समान है आनन जिनका (गणेश)	बहुव्रीहि समास
राजारानी	राजा और रानी	द्वन्द्व समास

पर्यायवाची शब्द

परिभाषा—एक अर्थ प्रकट करने वाले शब्द परस्पर पर्यायवाची कहलाते

हैं। जैसे, मेघ, वारिद, वारिधर इन तीनों का अर्थ बादल है, अतः ये शब्द परस्पर पर्यायवाची हुए।

नीचे कुछ प्रसिद्ध शब्दों के पर्यायवाची दिये जा रहे हैं:—

(१) **अग्नि**—वह्नि, पावक, अनल, वैश्वानर, हुताशन, जातवेद, दहन।
(२) **अमृत**—पीयूष, सुधा, अमिय।
(३) **अश्व**—हय, तुरङ्ग, वाह, वाजि, घोटक, सैन्धव, हरि, रवि-सुत।
(४) **असुर**—दनुज, दैत्य, दानव, राक्षस, निशाचर, मनुजाद, तमीचर।
(५) **आँख**—चक्षु, नयन, अक्षि, नेत्र, विलोचन, दृग, ईक्षण, लोचन।
(६) **आकाश**—व्योम, गगन, अम्बर, नभ, ख, दिव, वियत्, अनन्त, अन्तरिक्ष।
(७) **इन्द्र**—सुरेश, शक्र, शचीपति, वासव, पुरूहूत, पुरन्दर, सहस्राक्ष।
(८) **कमल**—पंकज, पद्म, सरोज, नलिन, अरविन्द, पुण्डरीक, उत्पल, शतदल।
(९) **कवच**—वर्म, तनुत्र, सन्नाह, जगर, कंकटक।
(१०) **कोयल**—परभृत, पिक, कोकिला, काकपाली, वसन्तदूत, वन-प्रिय।
(११) **गंगा**—सुरसरि, विष्णुपदी, भागीरथी, देवापगा, सुरधुनी, त्रिपथगा।
(१२) **चन्द्रमा**—चन्द्र, हिमांशु, सुधांशु, विधु, सुधाधर, शशि, मयंक।
(१३) **तालाब**—सर, पुष्कर, सरसी, जलाशय, ताल, तडाग, पुष्करिणी।
(१४) **तोता**—शुक, कीर, सुग्गा सुआ, रक्ततुण्ड।
(१५) **दाँत**—दंश, दशन, रद, द्विज, दन्त, रदन, मुखक्षुर।
(१६) **दिन**—द्विवस, अहः, वासर, दिवा, वार।
(१७) **दुःख**—पीड़ा, व्यथा, कष्ट, वेदना, यातना, क्लेश, ताप, विषाद।
(१८) **देवता**—देव, सुर, अमर, विबुध, निर्जर, अमर्त्य, वृन्दारक।
(१९) **धनुष**—कार्मुक, चाप, धनु, शरासन, विशिखासन, कमान।
(२०) **नदी**—सरिता, तरङ्गिणी, तटिनी, निम्नगा, आपगा, निर्झरिणी।
(२१) **पवन**—वायु, समीर, मारूत, वात, अनिल, पवमान, गन्धवह।
(२२) **पर्वत**—भूधर, शैल, अचल, महीधर, गिरि, नग, भूमिधर।
(२३) **पक्षी**—विहग, विहंगम, खग, द्विज, नभचर, शकुनि, शकुन्त।

(२४) **पुरुष**—मानुष, नर, मानव, मनुज, मर्त्य, जन, मनुष्य।

(२५) **पुष्प**—सुमन, कुसुम, प्रसून, फुल्ल, फूल।

(२६) **पुत्र**—आत्मज, तनय, तनूज, सुत, वत्स, अपत्य, सूनु, तात।

(२७) **पुत्री**—कन्या, स्वजा, आत्मजा, तनुजा, तनया, कन्यका, दुहिता, सुता।

(२८) **पृथ्वी**—भू, धरा, भूमि, उर्वी, वसुमती, वसुन्धरा, मही, धरणी।

(२९) **बिजली**—विद्युत्, सौदामिनी, क्षणदा, तड़ित, चंचला, शम्पा विज्जु।

(३०) **ब्रह्मा**—चतुरानन, विधि, स्वयंभू, प्रजापति, विधाता, विरंचि, वेधा।

(३१) **मदिरा**—सुरा, वारुणी, हाला, मधु, मय, शराब, दारू।

(३२) **मयूर**—केकी, शिखण्डी, वर्ही, कलापी, शिखी, नीलकण्ठ, मोर।

(३३) **महेश**—शंकर, शिव, शंभु, रुद्र, आशुतोश, उमापति, हर, प्रलयंकर।

(३४) **मेघ**—धाराधर, वारिधर, वारिद, घन, जलधर, नीरद, पयोद।

(३५) **यमुना**—सूर्यसुता, कालिन्दी, कृष्णा, पतंगजा, रवितनया, कलिन्दजा।

(३६) **राजा**—नृप, भूप, नृपति, भूपति, नरेन्द्र, नरेश, महीप, सम्राट्।

(३७) **रात्रि**—निशि, यामिनी, त्रियामा, रजनी, क्षणदा, शर्वरी, विभावरी।

(३८) **लक्ष्मी**—श्री, चपला, कमला, रमा, सिन्धुसुता, हरिप्रिया, इन्दिरा, पद्मा।

(३९) **वन**—गहन, अरण्य, अटवी, कानन, कान्तार, विपिन, दुर्गम।

(४०) **बाण**—सायक, शर, नाराच, विशिख, शिलीमुख, आशुग, पत्री।

(४१) **विप्र**—ब्राह्मण, भूमिसुर, भूदेव, महीदेव, अग्रजन्मा, भूसुर, द्विज।

(४२) **विवाह**—करग्रह, परिणय, पाणिग्रहण, दारकर्म, उद्वाह, व्याह।

(४३) **विष**—गरल, हलाहल, कालकूट, माहुर, गर, कलाकुल।

(४४) **विष्णु**—उपेन्द्र, हरि, पीताम्बर, चतुर्भुज, कमलनयन, लक्ष्मीपति, शेषशायी।

(४५) **वृक्ष**—तरु विपट, पादप, द्रुम, भूरुह, शाखी, पेड़।

(४६) **शफरी**—मत्स्य, मछली, मकर, मीन, झष, पाठीन, सफरी।

(४७) **शरीर**—काय, काया, कलेवर, तनु, गात, गात्र, वपु, देह, अङ्ग।

(४८) शत्रु—प्रतिपक्षी, अहित, अमित्र, विपक्षी, रिपु, वैरी, द्वेषी ।

(४९) **सदन**—सद्म, धाम, भवन, गृह, गेह, घर, आलय, आवास, ओक।

(५०) **समुद्र**—उदधि, सागर, तोयनिधि, रत्नाकर, सिन्धु, सरित्पति, वारीश ।

(५१) **सरस्वती**—भारती, वाणी, हंसवाहिनी, वीणापाणि, शारदा, वागीश्वरी ।

(५२) **सलिल**—वारि, उदक, पय, पानी, नीर, अम्बु, तोय, जीवन ।

(५३) **सिंह**—केहरि, पञ्चानन, मृगराज, मृगेन्द्र, हरि, शार्दूल, वनराज।

(५४) **सूर्य**—दिनकर, रवि, मार्तण्ड, भास्कर, सविता, पतंग, आदित्य, भानु ।

(५५) **सेना**—सैन्य, बल, वाहिनी, अनीक, पृतना, चमू नासीर, ध्वजिनी ।

(५६) **हाथी**—हस्ती, सिन्धुर, गज, मतंग, कुंजर, द्विरद, दन्ती, करी, गयंद

(५७) **हनुमान**—पवनसुत, अंजनीपुत्र, पवनकुमार, मारुतेय, महावीर, रामदूत ।

विलोम शब्द

परिभाषा—उल्टा अर्थ बताने वाला शब्द विलोम या विपरीतार्थक कहलाता है । जैसे, सज्जन का विलोम दुर्जन है ।

यहाँ कुछ प्रसिद्ध शब्दों के विलोम दिये जा रहे हैं :—

शब्द	विलोम	शब्द	विलोम
अनुकूल	प्रतिकूल	आशा	निराशा
अन्धकार	प्रकाश	इच्छा	अनिच्छा
आकाश	पाताल	उत्कृष्ट	निकृष्ट
आदान	प्रदान	उत्थान	पतन
आदि	अन्त	उत्पत्ति	नाश
आय	व्यय	उदय	अस्त
आयात	निर्यात	उदार	अनुदार

शब्द	विलोम	शब्द	विलोम
उन्नति	अवनति	पण्डित	मूर्ख
उपकार	अपकार	पक्ष	विपक्ष
कुलीन	अकुलीन	पाप	पुण्य
गुण	दोष	प्रिय	अप्रिय
गुरु	लघु	वलवान्	निर्बल
चर	अचर	महान्	तुच्छ
चल	अचल	मान	अपमान
जड़	चेतन	मित्र	शत्रु
जन्म	मृत्यु	यश	अपयश
जय	पराजय	राजा	रंक
जीवन	मरण	लाभ	हानि
दयालु	निर्दय	शिक्षित	अशिक्षित
दुःख	सुख	संयोग	वियोग
देव	दानव	सज्जन	दुर्जन
धनी	निर्धन	सावधान	असावधान
नित्य	अनित्य	साधु	असाधु
निद्रा	जागरण	सुपात्र	कुपात्र
निराकार	साकार	स्थावर	जंगम
नूतन	पुरातन	स्वस्थ	अस्वस्थ

मुहावरे

मुहावरे भाषा का शृङ्गार होते हैं, भाषा की जान होते हैं। जो प्रभाव दस वाक्यों के कहने का नहीं पड़ता, वह एक मुहावरे का पड़ जाता है। यहाँ कुछ मुहावरों का अर्थ और प्रयोग दिया जाता है।

(१) निम्नलिखित मुहावरों का अर्थ लिखकर वाक्यों में प्रयोग कीजिए—

आँधी के आम, उँगली पकड़कर पहुँचा पकड़ना, गूलर के फूल, दाँत काटी रोटी, आटे दाल का भाव मालूम होना, मन चंगा कठौती में गंगा।

आँधी के आम=बिना परिश्रम के अधिक आय, मुफ्त का धन।

लड़ाई के समय पैसा **आँधी के आम** हो गया था ।

उँगली पकड़कर पहुँचा पकड़ना=किसी वस्तु पर धीरे-धीरे अधिकार करना ।

दीनू किसान ने जमादार से खूँटा गाढ़ने की आज्ञा माँगी और धीरे-धीरे वहाँ अपना घेरा बनाना आरम्भ कर दिया। जब उसे ज्ञात हुआ तो बोला—"वाह भाई ! तुमने तो **उँगली पकड़कर पहुँचा पकड़ना** आरम्भ कर दिया।

गूलर के फूल=कठिनता से मिलने वाला ।

फसल की कटाई के समय मजदूर **गूलर के फूल** हो जाते हैं ।

दाँत काटी रोटी=बहुत मेल होना ।

सोहन और दिनेश में **दाँत काटी रोटी** है ।

आटे दाल का भाव मालूम होना=कठिनाई का सामना करना ।

"अब तक तो पूर्वजों की कमाई पर मौज की, अब अकेले रहकर **आटे दाल का भाव मालूम हो जावेगा**", राम ने मनोहर से कहा ।

मन चंगा कठौती में गङ्गा=प्रसन्नता में सब अच्छा लगता है ।

सब लोग मेला जा रहे थे और धनञ्जय बच्चों से खेल रहा था। साथियों ने मेला चलने को कहा तो वह बोला, "मैं यहीं प्रसन्न हूँ । **मन चंगा तो कठौती में गङ्गा** । मैं नहीं जाऊँगा ।"

(२) काजल की कोठरी में कैसो हू सयानो जाय, एक लीक काजर की लागिहै पै लागिहै ।" इस कहावत का अर्थ लिखिये और एक उदाहरण देकर इसे स्पष्ट कीजिये ।

अर्थ—बुरे स्थान पर या बुरी संगति में कैसा भी सच्चा और संयमी मनुष्य जावे उसमें कुछ न कुछ बुराई आ ही जाती है ।

उदाहरण—एक खोमचे वाला जुआरियों के अड्डे पर सौदा बेचने जाता था, क्योंकि वहाँ सौदा जल्दी बिक जाता था और लाभ भी अधिक होता था। वहाँ दूने होते देखकर उसकी भी तबियत मचलने लगी । समझदार होने के कारण वह जुआ तो नहीं खेलता था, कभी-कभी कुछ दाँव मान लेता था।

(३) निम्न मुहावरों का प्रयोग ऐसे ढंग के कीजिये कि इनका अर्थ स्पष्ट हो जाये—

पैर उखड़ना, पानी भरना, हाथ मलना, हाथ डालना, ऊँची दुकान फीका

पकवान, चार दिन की चाँदनी फिर अँधियारा पाख, काला अक्षर भैंस बराबर, का वर्षा जब कृषी सुखाने।

पैर उखड़ना=हिम्मत टूट जाना। भाग उठना।

हल्दीघाटी के युद्ध में थोड़ी देर बाद मुगल सेना के **पैर उखड़ गये।**

पानी भरना=आधीन होना, हीन होना, रौब मानना।

आजकल एडवोकेट दिनेश के आगे तमाम शहर के वकील **पानी भरते हैं।**

हाथ मलना=पछतावा करना।

अगर तुमने इस काम के लिये पूरी तैयारी न की तो बाद में **हाथ मलते** रह जाओगे।

हाथ डालना=किसी कार्य में भाग लेना।

जिसमें **हाथ डालो**, उसे पूरा करके छोड़ो।

ऊँची दुकान फीका पकवान=झूठी प्रसिद्धि होना।

वह दिखावा ऐसा करता है कि लोग प्रभावित हो जाते हैं किन्तु सम्पर्क में आने पर पता चलता है कि **ऊँची दुकान फीका पकवान है।**

चार दिन की चाँदनी फिर अँधियारा पाख=थोड़े दिन की मौज होना।

रिश्वत के पैसे में ऐसा इतरा गया है, यह नहीं जानता कि **चार दिन की चाँदनी फिर अँधियारा पाख।**

काला अक्षर भैंस बराबर=अनपढ़ होना।

सुरेश कपड़ों से बाबू लगता है, वैसे उसके लिये **काला अक्षर भैंस बराबर है।**

का वर्षा जब कृषी सुखाने=अवसर बीतने पर कार्य व्यर्थ होता है।

श्यामलाल ने लड़की की शादी में बरतन माँगे। लाला ने उन्हें तब भेजा, जब बरात विदा हो गई। श्यामलाल बोला—"अब ये किस काम के, **का वर्षा जब कृषी सुखाने।"**

(४) निम्नलिखित मुहावरों का अर्थ लिखिये और प्रत्येक को वाक्य में प्रयोग करके समझाइये—

आँखें बदलना, हाथ मलना, नमक मिर्च मिलाना।

आँखें बदलना=क्रुद्ध होना, निष्ठुरता का वर्ताव करना।

लोग काम निकल जाने पर **आँखें बदल लेते है।**

हाथ मलना=पछतावा करना ।

अगर तुमने इस काम के लिये पूरी तैयारी न की तो बाद में **हाथ मलते** रह जाओगे ।

नमक मिर्च मिलाना=बात बढ़ा-चढ़ा कर कहना ।

अगर इसके सामने तुमने कोई भी बात कही तो यह बाहर **नमक मिर्च मिलाकर** कहेगा ।

(५) **निम्नलिखित मुहावरों का वाक्यों में प्रयोग कीजिए—**

अन्धे की लकड़ी, अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना, ईद का चाँद होना, कब्र में पैर लटकाए बैठना, आग बबूला होना, काला **अक्षर भैंस बराबर ।**

अन्धे की लकड़ी होना=किसी का सहारा होना ।

बेचारे रमजानी का घोड़ा **अन्धे की लकड़ी** है । उसी से रोटी कमा रहा है।

अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना=अपने आप अपनी प्रशंसा करना ।

अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने वालों का सब मजाक उड़ाते हैं ।

ईद का चाँद होना=बहुत दिन में मिलना ।

जब रामेश्वर बहुत दिन में गाँव लौटा तो लोग बोले, "भाई ! तुम तो **ईद का चाँद हो गये हो ।**"

कब्र में पैर लटकाये रहना=मृत्यु के समीप होना, अधिक बुड्ढा होना।

नवाब अब्दुल्ला **कब्र में पैर लटकाये बैठे हैं,** पर शादी करने को तैयार हैं।

आग बबूला होना=बहुत क्रुद्ध होना ।

अपने अपमान की आधी बात सुनते ही वह **आग बबूला हो गया ।**

काला अक्षर भैंस बराबर=अपढ़ होना ।

मैं पत्र पढ़ना क्या जानूँ ? मुझे तो **काला अक्षर भैंस बराबर है ।**

अलंकार

परिभाषा—अलङ्कार संस्कृत शब्द है । इसकी व्युत्पत्ति है 'अलं करोति इति अलङ्कारः' अर्थात् जो शोभित करे अथवा सुन्दरता-वृद्धि करे वह अलङ्कार है । जिस प्रकार कंकण, केयूर आदि अलङ्कार शरीर की शोभा बढ़ाने के लिये पहने जाते हैं उसी प्रकार काव्य की भाषा एवं भाव को सुन्दर बनाने के लिए शब्द-रूप अलङ्कारों का प्रयोग होता है । जिस प्रकार अधिक आभूषण

पहन लेने से शरीर की सुन्दरता नहीं बढ़ती वरन् अलङ्कार स्वयं को ही दिखाने लगते हैं उसी प्रकार काव्य में अलङ्कारों का अनावश्यक प्रयोग उसे अरुचिकर बना देता है। अलङ्कार सौन्दर्य-वृद्धि में सहायता देकर स्वयं अलग रहते हैं। यह साधन मात्र हैं साध्य नहीं अर्थात् कवि अलङ्कार को अपने काव्य का विषय नहीं बनाता है क्योंकि ये भावों को स्पष्ट करने में तो सहायता कर सकते हैं किन्तु स्वयं कोई भाव नहीं व्यक्त कर सकते।

भेद—मुख्य रूप से अलङ्कारों के दो भेद हैं—(१) शब्दालङ्कार, और (२) अर्थालङ्कार।

(१) शब्दालङ्कार—जिस काव्य में शब्द सुनने मात्र से रमणीयता ज्ञात हो, वहाँ शब्दालङ्कार होता है।

(२) अर्थालङ्कार—जिस काव्य में अर्थ का विचार करने पर सुन्दरता जान पड़े, वहाँ अर्थालङ्कार होता है।

अन्तर—शब्दालङ्कार में रमणीयता शब्द मात्र पर आधारित होती है, अतः शब्द-परिवर्तन करने पर वहाँ वह सौन्दर्य नहीं रहता। अर्थालङ्कार में रमणीयता का कारण अर्थ होता है, अतः उस पर शब्द-परिवर्तन का कोई प्रभाव नहीं होता। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि जहाँ शब्द-परिवर्तन से अलङ्कार न रहे, वह शब्दालङ्कार, और शब्द बदलने पर भी बना रहे, वह अर्थालङ्कार होता है।

विशेष—जहाँ शब्द और अर्थ दोनों ही शोभा बढ़ाने वाले होते हैं, वहाँ 'उभयालङ्कार' अथवा 'मिश्रालङ्कार' होता है।

शब्दालङ्कार

(१) अनुप्रास—जहाँ समान वर्णों का बार-बार प्रयोग किया जावे, स्वरों की समानता हो या न हो, वह अनुप्रास अलङ्कार होता है। जैसे,

'तरनि-तनूजा-तट-तमाल-तरुवर बहु छाये' (भारतेन्दु)

अथवा

'बानर बरार बाघ बैहर बिलार बिग, बगरे बराह जानवरन के जोम हैं' (भूषण)

पहले उदाहरण में 'त' और दूसरे में 'व' का अनेक बार प्रयोग हुआ है। अतः दोनों जगह अनुप्रास अलङ्कार है।

(२) **यमक**—जहाँ एक शब्द या शब्दांश ज्यों का त्यों अनेक बार प्रयुक्त होता है और हर बार उसका अर्थ भिन्न होता है, वहाँ यमक अलङ्कार होता है। जैसे,

'पच्छी परछीने ऐसे परे परछीने वीर—
तेरी बरछीने बरछीने हैं खलन के।' (भूषण)

अथवा

'भजन कह्यो तासों भज्यो, भज्यो न एकौ बार,
दूरि भजन जासौं कह्यो, सो तें भज्यो गँवार।' (बिहारी)

पहले उदाहरण में 'परछीने-परछीने' तथा 'बरछीने-बरछीने' में एक शब्द की दो बार आवृत्ति हुई है। दूसरे 'परछीने' का अर्थ है 'उत्साहहीन' और पहले का 'पंख कटे हुए' '(पर=पंख, छीने=क्षीण, नष्ट)। पहले 'बरछीने' शब्द का अर्थ 'बरछी नामक शस्त्र ने' तथा दूसरे का 'बल छीन लिये' (बर=बल, छीने=नष्ट किये) है।

दूसरे उदाहरण में 'भजन' और 'भज्यो' शब्द दो-दो बार प्रयोग में आये हैं। पहले 'भजन' शब्द का अर्थ है 'नाम लेना—भक्ति करना' और दूसरे का 'दूर भागना'। पहले 'भज्यो' का अर्थ 'दूर भागा' तथा दूसरे का 'भजन किया' है।

(३) **श्लेष**—'श्लेष' शब्द का अर्थ है 'चिपकना'। जिस शब्द में कई अर्थ चिपके हों अथवा जहाँ एक बार प्रयुक्त शब्द के अनेक अर्थ निकलें, वहाँ श्लेष अलङ्कार होता है। जैसे,

'जहीं वारुनी की करी रंचक रुचि द्विजराज,
तहीं कियो भगवन्त बिनु सम्पति-सोभा-साज'। (केशव)

अथवा

'चिरजीवौ जोरी, जुरै क्यों न सनेह गम्भीर,
को घटि ये वृषभानुजा, वे. हलधर के वीर'।

पहले उदाहरण में 'वारुनी' शब्द के दो अर्थ हैं 'मदिरा और पश्चिम

दिशा' तथा 'द्विजराज' के 'ब्राह्मण और चन्द्रमा'। इसी प्रकार दूसरे उदाहरण में 'वृषभानुजा' शब्द के अर्थ हैं 'वृषभानु की पुत्री, राधा' (वृषभानु+जा), तथा 'बैल की बहिन, गाय' (वृषभ+अनुजा)। 'हलधर' के भी दो अर्थ हैं—बैल और कृष्ण के बड़े भाई बलराम।

अन्तर—यमक अलङ्कार में एक शब्द का कई बार प्रयोग होता है और उसके अनेक अर्थ होते हैं, किन्तु श्लेष अलङ्कार में एक शब्द का एक बार ही प्रयोग होता है और उसके बहुत से अर्थ होते हैं।

अर्थालंकार

(१) **उपमा**—जहाँ दो पृथक वस्तुओं में गुण, धर्म या स्वरूप के आधार पर समता दिखाई जाती है, वहाँ उपमा अलङ्कार होता है। जिसकी समता किसी दूसरे से की जाती है, उसे उपमेय; और जिससे समता की जाती है, उसे उपमान कहते हैं। जिसके आधार पर समता होती है, उसे साधारण धर्म कहते हैं। सम, समान, सदृश, तुल्य, ज्यों, यथा आदि उपमा वाचक शब्द होते हैं। जहाँ उपमेय, उपमान, साधारण धर्म और वाचक शब्द, चारों तत्व रहते हैं, वहाँ पूर्णोपमा; और जहाँ चारों में से एक या अधिक नहीं रहता, वहाँ लुप्तोपमा कहलाती है। जैसे,

राम लखन सीता सहित सोहत परम निकेत,
जिमि वासव बस अमर पुर सची जयन्त समेत। (तुलसी)

अथवा

सिमिट सिमिट जल भरहिं तलावा,
जिमि सदगुन सज्जन पंह आवा। (तुलसी)

दोनों उदाहरणों में उपमा के अंग इस प्रकार हैं—

१. उपमेय—राम, लखन और सीता। तालाब
२. उपमान—वासव, जयन्त और सची। सज्जन
३. साधारण धर्म—सोहत। आना
४. वाचक शब्द—जिमि। जिमि

उपमा के चारों अंग होने से दोनों जगह पूर्णोपमा है।

(२) **रूपक**—जहाँ उपमान और उपमेय में कोई भेद न मानकर दोनों को

एकता स्वीकार कर ली जाती है अथवा उपमान को ही उपमेय मान लिया जाता है, वहाँ रूपक अलङ्कार होता है। जैसे,

उदित उदयगिरि मंच पर रघुवर बाल पतंग,
विगसे सन्त सरोज सब हरषे लोचन भृंग। (तुलसी)

अथवा

चढ़ो गगन तरु धाय दिनकर वानर अरून मुख,
कीन्हों झुकि झहराइ सकल तारका कुसुम बिनु (केशव)

पहले उदाहरण में मंच पर उपस्थित हुए राम का उदयगिरि पर उदय हुए सूर्य से अभिन्न वर्णन किया गया है। यही बात सन्त-सरोज एवं लोचन-भृंग में है। सूर्य के उदित होने से सरोज विकसित और भृंग हर्षित होते हैं, राम के मंच पर जाने से सज्जन विकसित और (उपस्थित जन-समुदाय के) लोचन हर्षित हो गये।

दूसरे उदाहरण में 'तरु', 'वानर' एवं 'कुसुम' उपमानों को 'गगन', 'दिनकर' 'तारका' उपमेयों के साथ एक रूप कर दिया गया है। इसलिये यहाँ पर रूपक अलंकार है।

अन्तर—उपमा अलङ्कार में उपमेय और उपमान पृथक होते हैं तथा उनकी समानता का वर्णन किया जाता है, किन्तु रूपक अलङ्कार में दोनों को अभिन्न मानकर समता प्रदर्शित की जाती है।

(३) **उत्प्रेक्षा**—जहाँ उपमेय में ही उपमान की सम्भावना कर ली जाती है, वहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार होता है। इसके वाचक शब्द मानो, जानो आदि हैं। जैसे,

मकराकृति गोपाल के सोहत कुण्डल कान,
धस्यौ मनो हिय घरू समरू ड्यौढ़ी लसत निसान। (बिहारी)

अथवा

कहूँ तीर पर कमल अमल सोभित बहु भाँतिन,
कहुँ सैवालिनि मध्य कुमुदिनी लगि रही पाँतिनि।
मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखति जल सोभा,
कै उमगे प्रिय प्रिया प्रेम के अनगिन गोभा। (भारतेन्दु)

पहले उदाहरण में कृष्ण के कान में सुशोभित मकराकृति कुण्डल उपमेय में ही हृदय में प्रविष्ट कामदेव के बाहर रखे झण्डे उपमान की कल्पना कर ली गई है। इसी प्रकार दूसरे उदाहरण में कमल और कुमुदिनी उपमेय हैं, जिनमें जमुना की आखें और प्रेम के अंकुर रूप में उपमान की सम्भावना है।

(४) **उल्लेख**—'उल्लेख' शब्द का अर्थ है चर्चा या वर्णन। जहाँ एक वस्तु का अनेक प्रकार से वर्णन किया जाता है, वहाँ उल्लेख अलङ्कार होता है। जैसे,

देखहिं भूप महा रनधीरा, मनहुँ वीर रस धरे सरीरा।
पुर वासिनि देखे दोऊ भाई, नर-भूषण लोचन सुखदाई।
विदुषनु प्रभु विराट्मय दीसा, वहुमुख-कर-पग-लोचन-सीसा। **(तुलसी)**

अथवा

साधुनि कों सुख दानि हैं, दुर्जनगन दुखदानि।
वैरिन विक्रम हानिप्रद, राम रावरे पानि। **(केशव)**

पहले उदाहरण में राम को धनुष-यज्ञ के समय अन्य राजाओं ने सशरीर वीर रस के समान, पुरवासियों ने लोचन-सुखदायी नरभूषण के रूप में और विद्वानों ने विराट् पुरुषमय देखा, इसी का वर्णन है।

दूसरे उदाहरण में एक ही राजा रामसिंह के हाथों को सज्जनों के लिये सुख देने वाला, दुर्जनों के लिये दुःख देने वाला और शत्रुओं के लिए हानिकारक बताया गया है।

(५) **भ्रान्तिमान्**—जहाँ समानता के कारण निश्चय रूप से एक वस्तु को दूसरी मान लिया जावे, वहाँ भ्रान्तिमान् अलङ्कार होता है। यह भ्रम कवि-कल्पित होना चाहिए, वास्तविक नहीं। जैसे,

पाँय महावर दैन कों नाइनि बैठी आय,
फिरि फिर जानि महावरी ऐड़ी मीड़ति जाम। **(बिहारी)**

अथवा

नाक का मोती अधर की कान्ति से,
बीज दाड़िम का समझकर भ्रान्ति से।

देखकर सहसा हुआ शुक मौन है,
सोचता है अन्य शुक यह कौन है। (मैथिलीशरण गुप्त)

पहले उदाहरण में नाइन ने अधिक लाल होने के कारण ऐड़ियों के रंग को ही महावर समझकर रगड़ना आरम्भ कर दिया है। दूसरे में तोता ने उर्मिला की नाक को दूसरा तोता और नाक के मोती को उसकी चोंच में लगा अनार का दाना समझ लिया है।

(६) **सन्देह**—जहाँ किसी वस्तु को देखकर उसका वास्तविक ज्ञान न हो, अपितु उसके समान अनेक वस्तुओं का संशय बना रहे, वहाँ सन्देह अलङ्कार होता है। कै, किधों, अथवा इसके वाचक शब्द हैं। जैसे,

की तुम तीनि देव मंह कोऊ, नर नारायन की तुम दोऊ।
की तुम हरि दासन में कोई, मेरे हृदय प्रीति अति होई। (तुलसी)

अथवा

परि पूरन सिंदूर पूर कैधों मंगल घट,
किधौं सक्र को छत्र मढ्यौ मानिक-मयूख-पट।
कै स्रोनित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को,
यह ललित लाल कैधों लसत दिग्भामिनि के भाल को। (केशव)

पहले उदाहरण में हनुमान राम-लक्ष्मण के विषय में यह निश्चय नहीं कर पाये कि ये तीनों देवों में कोई हैं, नर नारायण हैं अथवा भगवान् के भक्त हैं।

इस प्रकार दूसरे उदाहरण में उदय होते सूर्य के विषय में संशय है कि वह सिन्दूर भरा मंगल-घट है, मणि किरणों से ढका इन्द्र का छत्र है, काल रूपी कापालिक साधु का खून से सना कपाल है या दिशा रूपी नारी के मस्तक की विन्दी है।

अन्तर—भ्रान्तिमान अलङ्कार में निश्चय रहता है, चाहे वह गलत ही हो और सन्देह में कोई निश्चय नहीं होता।

(७) **अन्योक्ति**—जहाँ वर्णन तो प्रस्तुत का किया जाये किन्तु तात्पर्य अप्रस्तुत से हो अथवा साधारण अर्थ के साथ अन्य अभीष्ट अर्थ भी ध्वनित हों, वहाँ अन्योक्ति अलङ्कार होता है। इसे अप्रस्तुत प्रशंसा भी कहते हैं। जैसे,

केरा तवहि न चेतिया, जव ढिग लागी वेरि,
अव के चेते का भयो, काँटनि लीन्हों घेरि। (कवीर)

अथवा

यहाँ न वे नागर बड़े जिन आदर तो आब,
फूल्यो अनफूल्यो भयो गँवई गाँव गुलाब। (बिहारी)

पहले उदाहरण में ऐसे केला के वृक्ष को सम्वोधित किया गया है, जिसने पहले अपने समीप लगी वेर की चिन्ता नहीं की। अव जवकि वेर के काँटों ने उसे घेर लिया है, तो वह चिन्तित है। पर इसका तात्पर्य वास्तव में ऐसे व्यक्ति से है, जिसने अपने अन्दर उत्पन्न हुए अवगुणों की पहले तो उपेक्षा कर दी और अव उनसे परेशान है जव उनमें बुरी तरह जकड़ गया है। दूसरे उदाहरण में भी गाँव में फूले गुलाव को सम्बोधित करके किसी ऐसे गुणी व्यक्ति से कहा गया है, जो ऐसी जगह रहता है, जहाँ उसके गुण ग्राहक नहीं हैं।

(८) **अतिशयोक्ति**—'अतिशय' शव्द का अर्थ है सीमा का उल्लङ्घन। जहाँ किसी वस्तु का वर्णन बहुत वढ़ा-चढ़ा कर किया जाए, वहाँ अतिशयोक्ति अलङ्कार होता है। जैसे,

भूषन भार संभारिहै क्यों ये तन सुकुमार,
सूधे पाँय न धरि परत शोभा ही के भार। (बिहारी)

अथवा

पत्रा ही तिथि पाइयत वा घर के चहुँ पास,
नित प्रति पून्यो ही रहति आनन ओप उजास। (बिहारी)

पहले उदाहरण में नायिका की शोभा को इतना अधिक बताया गया है कि वोझ के मारे उसके पैर सीधे नहीं पड़ते। इस उदाहरण में उसकी कोमलता भी वढ़ा-चढ़ा कर बताई गई है।

दूसरे उदाहरण में नायिका के मुख को इतना सुन्दर वताया है कि देखने वालों को उसके प्रकाश से पूर्णिमा का भ्रम हो जाता है। इसलिये दोनों स्थानों पर अतिशयोक्ति अलंकार है।

निम्न तीन अलंकार केवल राजस्थान बोर्ड में हैं—

(९) **अनन्वय**—जब उपमेय का उपमान न मिल सकने के कारण

उपमेय कोही उपमान मान लिया जाता है, तब अनन्वय अलंकार होता है। जैसे,

हरि को मुख सखि ! हरि मुख जैसो।

यहाँ कृष्ण के मुख की उपमा कृष्ण के मुख से ही दी गई है।

(१०) **दृष्टान्त**—जब पहले एक बात कहकर उससे मिलती-जुलती दूसरी बात कह दी जाती है, जो पहली के उदाहरण रूप में होती है, तब दृष्टान्त अलंकार होता है। जैसे,

भरतहिं होय न राजमद विधि हरि हर पद पाय,
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीर सिंधु बिनसाय। (तुलसी)

यहाँ ब्रह्मा-विष्णु-महेश का पद पाकर भी भरत को राज्यमद होना काँजी की बूँदों से क्षीर सागर के फटने के समान असम्भव बताया है।

(११) **उदाहरण**—जहाँ सामान्य से विशेष को अथवा विशेष को सामान्य से स्पष्ट करने के लिये ज्यों, त्यों आदि वाचक पदों का प्रयोग किया जाये, वहाँ उदाहरण अलंकार होता है। जैसे,

वह पांडु वंश प्रदीप यों शोभित हुआ उस काल में,
सुन्दर सुमन ज्यों पड़ गया हो कंटकों के जाल में। (गुप्त)

यहाँ पांडु वंश प्रदीप अभिमन्यु का कौरवों के झुण्ड में घिरा होना विशेष है। इसे कंटकों के जाल में घिरे फूल से स्पष्ट किया गया है। वाचक शब्द ज्यों का प्रयोग हुआ है।

अन्तर—दृष्टान्त और उदाहरण में कोई विशेष अन्तर नहीं है। दृष्टान्त में वाचक पद नहीं होता है तथा दोनों पदों का परस्पर प्रतिबिम्ब विशेष स्पष्ट नहीं होता। उदाहरण में वाचक शब्द द्वारा दोनों का सम्बन्ध स्पष्ट कर दिया जाता है।

———

: ५ :

संस्कृतानुवाद

बालक शब्द के रूप

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	
१. कर्त्ता	बालक:	बालकौ	बालका:	(ने)
२. कर्म	बालकम्	बालकौ	बालकान्	(को)
३. करण	बालकेन	बालकाभ्याम्	बालकै:	(से, के द्वारा)
४. सम्प्रदान	बालकाय	बालकाभ्याम्	बालकेभ्य:	(के लिये)
५. अपादान	बालकात्	बालकाभ्याम्	बालकेभ्य:	(से)
६. सम्बन्ध	बालकस्य	बालकयो:	बालकानाम्	(का, की, के)
७. अधिकरण	बालके	बालकयो:	बालकेषु	(में, पर)
८. सम्बोधन	हे बालक !	हे बालकौ !	हे बालका: !	(हे, अरे)

पठ् (पढ़ना) धातु के लट् लकार (वर्तमान काल) के रूप

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	पठति	पठत:	पठन्ति
मध्यम पुरुष	पठसि	पठथ:	पठथ
उत्तम पुरुष	पठामि	पठाव:	पठाम:

विशेष—प्राय: सभी अकारान्त शब्दों के रूप 'राम' की तरह ही होते हैं। जैसे:—राम, कृष्ण, अर्जुन, युवक, नर, मनुष्य, धर्म, दिवस आदि। बालक शब्द का षष्ठी विभक्ति (तत्पुरुष) के एकवचन में 'बालकस्य' रूप होता है और 'युवक' का 'युवकस्य', मनुष्य का 'मनुष्यस्य'।

क्रीड् (खेलना), लिख् (लिखना), हस् (हँसना), वस् (रहना), खाद् (खाना), मिल् (मिलना), भू (होना), इसका रूप 'भव' हो जाता है, आदि धातुओं के वर्तमान काल के रूप 'पठ्' धातु के ही समान होते हैं। जैसे पठ् का मध्यम पुरुष के एकवचन में 'पठसि' रूप बनता है और 'लिख' का लिखसि तथा 'हस्' का हससि।

अनुवाद करते समय इस बात का प्रयत्न करना चाहिये कि अकारान्त शब्द और पठ् आदि साधारण धातुओं से ही हमारा काम चल जावे। जहाँ तक सम्भव हो कठिन शब्दों या धातुओं का प्रयोग नहीं करना चाहिये। कुछ उदाहरण देखिये :—

हिन्दी	संस्कृत
(१) महेश पत्र लिखता है।	महेशः पत्रं लिखति।
(२) बालक गेंद से खेलते हैं।	बालकाः कन्दुकेन क्रीडन्ति।
(३) किसान घर को देखकर हँस रहा है।	कृषकः गृहं दृष्ट्वा हसति।
(४) राम और रमेश पुस्तक पढ़ते हैं।	रामरमेशौ पुस्तकं पठतः।
(५) आकाश में काले बादल चल रहे हैं।	आकाशे श्यामाः मेघाः चलन्ति।

अनुवाद करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि जो वचन कर्त्ता में होगा, वही क्रिया में। 'अस्मद्' शब्द के साथ उत्तम पुरुष एवं 'युष्मद्' के साथ मध्यम पुरुष की क्रिया आती है। इसके अतिरिक्त सभी के साथ अन्य पुरुष (प्रथम पुरुष) की।

सुधा शब्द के रूप

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	
१.	सुधा	सुधे	सुधाः	(ने)
२.	सुधाम्	सुधे	सुधाः	(को)
३.	सुधया	सुधाभ्याम्	सुधाभिः	(से, के द्वारा)
४.	सुधायै	सुधाभ्याम्	सुधाभ्यः	(के लिये)
५.	सुधायाः	सुधाभ्याम्	सुधाभ्यः	(से)
६.	सुधायाः	सुधयोः	सुधानाम्	(का, की, के)
७.	सुधायाम्	सुधयोः	सुधासु	(में, पर)
८.	हे सुधे !	हे सुधे !	हे सुधाः	(हे, अरे)

प्राय: सभी आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप इसी प्रकार चलते हैं। जैसे, लता, सरिता, रमा, उमा, निशा, कोकिला, प्रभा, बालिका, दिशा, क्षुधा (भूख), बड़वा (घोड़ी) आदि। 'सुधा' शब्द का चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में 'सुधायै' बनता है तो 'बालिका' का 'बालिकायै' और 'निशा' का 'निशायै'।

कुछ स्थान एवं कालवाचक अव्यय शब्द

यदा = जब
कदा = कब
सदा = हमेशा
सर्वदा = हमेशा
तदा = तब
एकदा = एक बार
इदानीम् = इस समय
साम्प्रतम् = अब, इस समय

यत्र = जहाँ
कुत्र = कहाँ
सर्वत्र = सब जगह
तत्र = वहाँ
एकत्र = एक जगह
अत्र = यहाँ
उपरि = ऊपर
नीचैः = नीचे

कुछ उदाहरण देखिये :—

हिन्दी	संस्कृत
(१) यहाँ लड़कियाँ पढ़ती हैं।	अत्र बालिकाः पठन्ति।
(२) सुधा कहाँ रहती है?	सुधा कुत्र वसति?
(३) रमेश कब पढ़ता है?	रमेशः कदा पठति?
(४) उमा इस समय हँस रही है।	उमा इदानीम् हसति।
(५) प्रभा ऊपर खेलती है।	प्रभा उपरि क्रीड़ति।

लिख् धातु के लृट् लकार (भविष्यत् काल) के रूप

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	लिखिष्यति	लिखिष्यतः	लिखिष्यन्ति
म० पु०	लिखिष्यसि	लिखिष्यथः	लिखिष्यथ
उ० पु०	लिखिष्यामि	लिखिष्यावः	लिखिष्यामः

अस्मद् शब्द के रूप

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	
१.	अहम्	आवाम्	वयम्	(ने)
२.	माम्	आवाम्	अस्मान्	(को)

३.	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः	(से, के द्वारा)
४.	मह्यम् (मे)	आवाभ्याम् (नौ)	अस्मभ्यम्	(नः) (के लिये)
५.	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्	(से)
६.	मम (मे)	आवयोः (नौ)	अस्माकम्	(नः) (का, की, के)
७.	मयि	आवयोः	अस्मासु	(में, पर)

युस्मद् शब्द के रूप

१.	त्वम्	युवाम्	यूयम्	(ने)
२.	त्वाम्	युवाम्	युष्मान्	(को)
३.	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः	(से, के द्वारा)
४.	तुभ्यम् (ते)	युवाभ्याम् (वाम्)	युष्मभ्यम्	(वः) (के लिये)
५.	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्	(से)
६.	तव (ते)	युवयोः (वाम्)	युष्माकम् (वः)	(का, की, के)
७.	त्वयि	युवयोः	युष्मासु	(में, पर)

नपुंसक धन शब्द के रूप

१.	धनम्	धने	धनानि	(ने)
२.	धनम्	धने	धनानि	(को)

अकारान्त नपुंसक शब्दों के शेष रूप अकारान्त पुल्लिग शब्दों के ही समान होते हैं। ज्ञान, वन, नयन, चरण, जल आदि नपुंसक हैं। इनके रूप धन के ही समान होंगे।

कुछ उदाहरण देखिए :—

(१) मेरा भाई विद्यालय में पढ़ता है।
मम भ्राता विद्यालये पठति।

(२) तुम कहाँ रहते हो ?
त्वं कुत्र वसति ?

(३) नदी में नावें चलती हैं।
सरितायां नौकाः चलन्ति।

(४) मैं तुम्हारा पत्र नहीं लिखूँगा।
अहं तव पत्रं न लिखिष्यामि।

(५) क्या तुम मुझे सवेरे यहाँ मिलोगे ?
किं त्वं मां प्रातः अत्र मिलिष्यसि ?

कुछ अव्यय

अद्य	=आज	साकम्	=साथ	तीनों के साथ तृतीया विभक्ति होती है।
ह्यः	=बीता हुआ कल	सह	=साथ	
श्वः	=आने वाला कल	सार्द्धम्	=साथ	

अस् (होना) धातु के लट् लकार (वर्तमान काल) के रूप

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अस्ति	स्तः	सन्ति
म० पु०	असि	स्थः	स्थ
उ० पु०	अस्मि	स्वः	स्मः

अस् धातु के लङ् लकार (भूतकाल) के रूप

प्र० पु०	आसीत्	आस्ताम्	आसन्
म० पु०	आसीः	आस्तम्	आस्त
उ० पु०	आसम्	आस्व	आस्म

कुछ उदाहरण देखिये :—

(१) आज पूर्णिमा का दिन है।
अद्य पूर्णिमायाः दिवसः अस्ति (दिवसोऽस्ति)।

(२) क्या तुम कल प्रयाग में थे ?
किं त्वं ह्यः प्रयागेः आसीः ?

(३) मैं तुम्हारे मित्र का भाई हूँ।
अहं तव मित्रस्य सहोदरः अस्मि (सहोदरोऽस्मि)।

(४) मेरे लिये आम लाभ करने वाला है।
मह्यं रसालः लाभकरः अस्ति (लाभकरोऽस्ति)।

(५) क्या तुम कल हम लोगों के साथ चलोगे ?
किं त्वं श्वः अस्माभिः साकं चलिष्यसि ?

हस् धातु के लङ् लकार (भूतकाल) के रूप

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अहसत्	अहसताम्	अहसन्
म० पु०	अहसः	अहसतम्	अहसत
उ० पु०	अहसम्	अहसाव	अहसाम

दृश् (देखना), गम् (जाना), पा (पीना), स्था (बैठना, ठहरना) धातुओं को लृट् (भविष्यत् काल) के अतिरिक्त क्रमशः पश्य, गच्छ, पिब और तिष्ठ आदेश हो जाता है। इनके लृट् के रूप क्रमशः दृक्ष्यति, गमिष्यति, पास्यति और स्थास्यति होते हैं।

कृ (करना) धातु के लट् लकार के रूप

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति
म० पु०	करोषि	कुरुथः	कुरुथ
उ० पु०	करोमि	कुर्वः	कुर्मः

लङ् लकार (भूतकाल) के रूप

प्र० पु०	अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्
म० पु०	अकरोः	अकुरुतम्	अकुरुत
उ० पु०	अकरवम्	अकरवाव	अकरवाम

कृ धातु के लृट् (भविष्यत् काल) में करिष्यति, करिष्यतः आदि रूप बनते हैं।

कृ धातु के द्वारा भी अनुवाद करने में बड़ी सहायता मिलती है। यदि हमें 'सोने' की संस्कृत धातु मालूम न हो तो कृ की सहायता से हम 'शयनं करोति' लिखकर अपना काम चला सकते हैं। कुछ उदाहरण देखिये :—

(१) मैं श्याम के घर भोजन करूँगा।
अहं श्यामस्य गृहे भोजनं करिष्यामि।

(२) सुरेश तुम्हारे साथ कहाँ जा रहा है ?
सुरेशः त्वया सह कुत्र गच्छति ?

(३) कोयल काली होती है।
कोकिला श्यामा भवति।

(४) मेरे घर में गाय बैठी है।
मम गृहे गौः तिष्ठति।

(५) सन्तोष सदा स्वच्छ जल पीता है।
सन्तोषः सदा स्वच्छं जलं पिबति।

(६) मैने तुम्हें पिछले वर्ष देखा था।
अहं त्वां गतवर्षे अपश्यम्।

कवि शब्द के रूप

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	
१.	कविः	कवी	कवयः	(ने)
२.	कविम्	कवी	कवीन्	(को)
३.	कविना	कविभ्याम्	कविभिः	(से, के द्वारा)
४.	कवये	कविभ्याम्	कविभ्यः	(के लिये)
५.	कवेः	कविभ्याम्	कविभ्यः	(से)
६.	कवेः	कव्योः	कवीनाम्	(का,की,के,)
७.	कवौ	कव्योः	कविषु	(में, पर)
८.	हे कवे !	हे कवी !	हे कवयः !	(हे, अरे)

हरि, ऋषि, मुनि, रवि आदि इकारान्त शब्दों के रूप भी कवि के समान होते हैं। 'कवि' शब्द का सप्तमी के एकवचन में 'कवौ' रूप बनता है और 'हरि' का हरौ तथा 'रवि' का 'रवौ'।

शिशु शब्द के रूप

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	
१.	शिशुः	शिशू	शिशवः	(ने)
२.	शिशुम्	शिशू	शिशून्	(को)
३.	शिशुना	शिशुभ्याम्	शिशुभिः	(से, के द्वारा)
४.	शिशवे	शिशुभ्याम्	शिशुभ्यः	(के लिये)

५.	शिशोः	शिशुभ्याम्	शिशुभ्यः	(से)
६.	शिशोः	शिश्वोः	शिशूनाम्	(का, की, के)
७.	शिशौः	शिश्वोः	शिशुषु	(में, पर)
८.	हे शिशौ !	हे शिशू !	हे शिशव !	(हे, अरे)

भानु, तनु, मनु, प्रभु, विभु, तरु, पटु आदि उकारान्त शब्दों के रूप भी 'शिशु' शब्द के समान होते हैं। 'शिशु' शब्द का चतुर्थी के एकवचन में 'शिशवे' रूप बनता है और 'भानु' का 'भानवे' तथा 'पटु' का 'पटवे'। कुछ उदाहरण देखिये :—

(१) बच्चा चारपाई पर रो रहा है।
शिशुः खट्वायां रोदनं करोति।

(२) सूर्य के प्रकाश से मनुष्यों का जीवन चलता है।
रवेः प्रकाशेन मनुष्याणां जीवनं चलति।

(३) दशरथ के पुत्र राम विष्णु के अवतार थे।
दशरथस्य पुत्रः रामः विष्णोः अवतार आसीत्।

(४) कवि अपनी कविता से हमारा मनोरंजन करेगा।
कविः स्व कवितया अस्माकं मनोरंजनं करिष्यसि।

(५) मनु ने सबसे पहले स्मृति ग्रन्थ लिखा।
मनुः सर्वप्रथमं स्मृति ग्रंथम् अलिखत्।

कुछ प्रत्यय, जो धातुओं के बाद आते हैं

धातु के पश्चात् क्त प्रत्यय लगा देने से वह भूतकाल का वाचक संज्ञा शब्द बन जाता है। क्त प्रत्यय का केवल 'त' शेष रह जाता है। जैसे,

गतः	=गया हुआ	पीतः	=पिया हुआ
दृष्टः	=देखा हुआ	खादितः	=खाया हुआ
प्रष्टः	=पूछा हुआ	चलितः	=चला हुआ
स्थितः	=ठहरा हुआ, बैठा हुआ	मिलितः	=मिला हुआ
पठितः	=पढ़ा हुआ	श्रुतः	=सुना हुआ

लिखितः =लिखा हुआ
कथितः =कहा हुआ
मतः =माना हुआ

इनके रूप पुलिंग में बालक के समान, स्त्रीलिंग में सुधा के समान और नपुंसक लिंग में धन के समान बनते हैं।

धातु के पश्चात् 'क्तवतु' प्रत्यय लगाने से भी भूतकाल का वाचक संज्ञा शब्द बन जाता है। 'क्तवतु' का केवल 'तवत्' शेष रहता है, जिसका प्रथमा के एकवचन में 'तवान्' बन जाता है। जैसे,

गतवान् =गया
दृष्टवान् =देखा
प्रष्टवान् =पूछा
पठितवान् =पढ़ा
लिखितवान् =लिखा
कथितवान् =कहा
हसितवान् =हँसा
खादितवान् =खाया
चलितवान् =चला
मिलितवान् =मिला
श्रुतवान् =सुना
कृतवान् =किया

सर्वनाम शब्दों के रूपों में कहीं-कहीं संज्ञा शब्दों से भिन्नता हो जाती है—

चतुर्थी का एकवचन	सर्वस्मै	(सर्व पु०)
षष्ठी का एकवचन	सर्वस्याः	(सर्वा स्त्री)
षष्ठी का बहुवचन	सर्वेषाम्	(सर्व पु०)
सप्तमी का एकवचन	सर्वस्मिन्	(सर्वा स्त्री०)
"	सर्वस्याम्	(सर्वा स्त्री०)
षष्ठी का बहुवचन	सर्वासाम्	(सर्वा स्त्री०)

विश्व, ईदृश, तादृश, द्वितीय प्रथम आदि शब्द सर्वनाम हैं। इन्हें आकारान्त कर देने से इनका स्त्रीलिंग हो जाता है।

ईदृशः =ऐसा कीदृशः =कैसा
तादृशः =वैसा विश्वः =सम्पूर्ण, संसार

कुछ उदाहरण देखिए—

(१) राम ने काम किया।
रामः कार्यं कृतवान्।

(२) घर गए हुए बालक ने समाचार कहा।
गृहं गतेन बालकेन समाचारः कथितः।

(३) मैंने मुनि का व्याख्यान सुना।
अहं मुनेः व्याख्यानं श्रुतवान्।

(४) तुम कल कहाँ गए थे ?
त्वं ह्यः कुत्र गतः आसीः ?

(५) वह पशुओं को देखकर हँसा।
स पशून् दृष्ट्वा हसितवान्।

धातु के बाद 'तव्यत्' या 'अनीयर' प्रत्यय लगाने से उसका अर्थ कर्तव्य-बोध (चाहिए) हो जाता है। 'तव्यत्' का 'तव्य' और 'अनीयर' का 'अनीय' शेष रह जाता है। जैसे,

कर्तव्यम्, करणीयम्	=	करना चाहिए
पठितव्यम्, पठनीयम्	=	पढ़ना चाहिए
श्रोतव्यम्, श्रवणीयम्	=	सुनना चाहिए
लिखितव्यम्, लिखनीयम्	=	लिखना चाहिए
कथितव्यम्, कथनीयम्	=	कहना चाहिए
भवितव्यम्	=	होना चाहिए
पानीयम्	=	पीना चाहिए
स्थातव्यम्	=	ठहरना चाहिए, बैठना चाहिए
गंन्तव्यम्	=	जाना चाहिए
वस्तव्यम्	=	बसना चाहिए

धातुओं के पश्चात् 'तुमुन्' प्रत्यय लगाने से प्रयोजन-वाचक (के लिए) शब्द बन जाता है। 'तुमुन्' का केवल 'तुम्' शेष रह जाता है। ऐसे शब्द भी अव्यय होते हैं। जैसे,

गन्तुम्	=	जाने के लिए	स्थातुम्	=	ठहरने के लिए
पठितुम्	=	पढ़ने के लिए	पातुम्	=	पीने के लिए
लिखितुम्	=	लिखने के लिए	हसितुम्	=	हँसने के लिए

द्रष्टुम् = देखने के लिए वसितुम् = रहने के लिए
कर्तुम् = करने के लिए भोक्तुम् = खाने के लिए

कुछ उदाहरण देखिए—

(१) परीक्षा में सफलता पाने के लिए परिश्रम करना चाहिए।
परीक्षायां सफलतां प्राप्तुं परिश्रमः कर्तव्यः।

(२) मैं ठहरने के लिए स्थान चाहता हूँ।
अहं स्थातुं स्थानं वाञ्छामि।

(३) संसार के पार जाने के लिए भगवत्कथा सुननी चाहिए।
संसारस्य पारं गन्तु भगवत्कथा श्रोतव्या।

(४) तुम्हें मेरे समीप कभी नहीं रहना चाहिए।
त्वया मम समीपे कदापि न वस्तव्यम्।

(५) क्या तुम पीने के लिए दूध चाहते हो?
किं त्वं दुग्धं पातुं वाञ्छसि?

वाक्यों में आने वाले कुछ अव्यय

यतः=क्योंकि	अतएव=इसलिए	च=और	न =नहीं
ततः=इसके बाद	अपितु =बल्कि	वा=अथवा	आम्=हाँ

धातु के पश्चात् 'क्त्वा' प्रत्यय लगाने से क्रिया के पश्चात् अर्थ-बोधक शब्द (करके) बनता है। 'क्त्वा' का 'त्वा' शेष रह जाता है। यदि धातु से पूर्व विरोधार्थक अ अथवा अन् के अतिरिक्त कोई अन्य उपसर्ग होता है तो 'क्त्वा' को ल्यप् आदेश हो जाता है। ल्यप् का 'य' मात्र शेष रह जाता है। जैसे,

गत्वा	=	जाकर	आगत्य	=	आकर
नीत्वा	=	लाकर	सम्प्रच्छ्य	=	पूछकर
नत्वा	=	नमस्कार करके	संस्मृत्य	=	याद करके
लिखित्वा	=	लिखकर	उल्लिख्य	=	वर्णन करके
पठित्वा	=	पढ़कर	उपनीय	=	यज्ञोपवीत देकर

पीत्वा	=	पीकर	अपनीय	=	हटाकर
दृष्ट्वा	=	देखकर	आनीय	=	लाकर
उक्त्वा	=	कहकर	संस्कृत्य	=	शुद्ध करके
श्रुत्वा	=	सुनकर	कृत्वा	=	करके

बहुत सी धातुओं से पहले उपसर्ग लगने से उनका अर्थ बदल जाता है। जैसे,

आ +गम् (जाना)	=	आगच्छति	=	आता है
अव +गम् (जाना)	=	अवगच्छति	=	जानता है
निर् +गम् (जाना)	=	निर्गच्छति	=	निकलता है
अनु +भू (होना)	=	अनुभवति	=	अनुभव करता है
आ +नि (ले जाना)	=	आनयति	=	लाता है
अप +नि (ले जाना)	=	अपनयति	=	हटाता है

कुछ उदाहरण देखिए—

(१) राम भोजन करके आ रहा है।
राम: भोजनं कृत्वा आगच्छति।

(२) पोस्टमैन डाकखाने से पत्र लेकर आवेगा।
पत्र पुरुष: पत्रालयात् पत्रं नीत्वा आगमिष्यति।

(३) मैं स्नान करके घर से निकलता हूँ।
अहं स्नानं कृत्वा गृहात् निर्गच्छामि।

(४) उमेश ने पानी पीकर पाठ पढ़ा।
उमेश: जलं पीत्वा पाठं पठितवान्।

(५) गंगा हिमालय से निकलकर समुद्र में मिलती है।
गंगा हिमालयात् निर्गत्य सागरे मिलति।

धातु के पश्चात् शतृ एवं शानच् प्रत्यय (जिन्हे अँग्रेजी में Present participle करते हैं) लगने से वर्तमान काल की क्रिया का बोध होता है। शतृ प्रत्यय परस्मैदी धातुओं से और शानच् आत्मनेदी धातुओं से होता है। शतृ का अत् और शानच् का प्राय: मान शेष रह जाता है। जैसे,

कुर्वन्	=	करता हुआ	नयन्	=	ले जाता हुआ
हसन्	=	हँसता हुआ	एधमानः	=	बढ़ता हुआ
पिवन्	=	पीता हुआ	जायमानः	=	उत्पन्न होता हुआ
पठन्	=	पढ़ता हुआ	प्रीयमाणः	=	प्रसन्न होता हुआ
लिखन्	=	लिखता हुआ	शयानः	=	सोता हुआ
गच्छन्	=	जाता हुआ	ब्रुवाणः	=	बोलता हुआ
पश्यन्	=	देखता हुआ	दधानः	=	धारण करता हुआ

शतृ प्रत्ययान्त धातुओं के रूप स्त्रीलिंग में कुर्वन्ती, हसन्ती, पिवन्ती, पठन्ती लिखन्ती आदि बनते हैं।

कारकों का अर्थ

(१) **प्रथमा विभक्ति—कर्त्ता कारक**—जो कार्य करने में स्वतन्त्र हो। जैसे, 'राम पढ़ता है'। इस वाक्य में राम कर्त्ता है, क्योंकि 'पढ़ना' क्रिया करने में वह स्वतन्त्र है।

(२) **द्वितीया विभक्ति—कर्म कारक**—कर्त्ता द्वारा की गई क्रिया का जिस पर प्रभाव पड़े। जैसे, 'राम पुस्तक पढ़ता है'। इस वाक्य में राम द्वारा की गई 'पढ़ना' क्रिया का प्रभाव 'पुस्तक' पर पड़ता है।

(३) **तृतीया विभक्ति—करण कारक**—कर्त्ता क्रिया करने के लिए जिसे अपना निमित्त बनावे। जैसे, 'राम लेखनी से पत्र लिखता है'। इस वाक्य में राम ने लिखना क्रिया पूरी करने के लिए लेखनी को साधन बनाया है।

(४) **चतुर्थी विभक्ति—सम्प्रदान कारक**—जिसके लिए कुछ दिया जावे। जैसे, 'राम ने छात्र के लिए पुस्तक दे दी'। यहाँ देना क्रिया का व्यापार छात्र के निमित्त हुआ है।

(५) **पंचमी विभक्ति—अपादान कारक**—जिससे किसी वस्तु का वियोग हो रहा हो। जैसे, 'पेड़ से पत्ते गिरते हैं'। यहाँ पत्तों का पेड़ से वियोग हो रहा है।

(६) **षष्ठी विभक्ति—सम्बन्ध कारक**—जिसका प्रयोग किसी का परिचय कराने को किया जावे। जैसे, "यह राजा का पुत्र है'। यहाँ राजा के द्वारा पुत्र का परिचय कराया गया है।

(७) **सप्तमी विभक्ति—अधिकरण कारक**—जिसके द्वारा आधार का ज्ञान हो। यह आधार ऊपर या भीतर दोनों जगह हो सकता है। 'पेड़ पर पक्षी बैठे हैं' और 'घर में बच्चे खेल रहे हैं', वाक्यों में पेड़ और घर क्रमशः पक्षी और बच्चों के आधार हैं।

विशेष—कर्त्ता, कर्म, करण और सम्प्रदान का सम्बन्ध क्रिया से रहता है। शेष सब कारक अपने आगे की संज्ञाओं से सम्बन्धित रहते हैं। कुछ उदाहरण देखिये—

(१) रमेश ने मार्ग में चलते हुए पत्र पढ़ा।
रमेशः मार्गे गच्छन् पत्रं पठितवान्।

(२) हँसती हुई बालिका अच्छी नहीं लगती।
हसन्ती बालिका न शोभते।

(३) दिनेश की बहिन पत्र लिखती हुई रोती है।
दिनेशस्य भगिनी पत्रं लिखन्ती रोदनं करोति।

(४) मैं मार्ग में प्रकृति की शोभा देखता हुआ जाऊँगा।
अहं मार्गे प्रकृतेः शोभां पश्यन् गमिष्यामि।

(५) मार्ग में सोता हुआ कुत्ता किसका है?
मार्गे शयानः कुक्कुरः कस्यास्ति।

अनुवाद करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि क्रिया का पुरुष और वचन कर्त्ता के पुरुष और वचन के समान ही रहे। लोगों के नाम एवं पदार्थों के साथ अन्य पुरुष की क्रिया ही आती है। जैसे,

प्रथम पुरुष—

आनन्दः हसति = आनन्द हँसता है।
आनन्द रमेशौ हसतः = आनन्द और रमेश हँसते हैं।
आनन्द रमेश दिनेशाः हसन्ति = आनन्द, रमेश और दिनेश हँसते हैं।
बालकः क्रीडति = बच्चा खेलता है।
बालकौ क्रीडतः = दो बच्चे खेलते हैं।

बालकाः क्रीडन्ति = बहुत से बच्चे खेलते हैं।
बालिका गच्छति = लड़की जाती है।
स पृच्छति = वह पूछता है।
तौ पृच्छतः = वे दोनों पूछते हैं।
ते पृच्छन्ति = वे सब पूछते हैं।

मध्यम पुरुष—

त्वं पिबसि = तू पीता है, तू पीती है।
युवां पिबथः = तुम दोनों पीते हो,
तुम दोनों पीती हो।
यूयं पिबथ = तुम सब पीते हो, तुम सब पीती हो।

उत्तम पुरुष—

अहं लिखामि = मैं लिखता हूँ, मैं लिखती हूँ।
आवां लिखावः = हम दोनों लिखते हैं।
हम दोनों लिखती हैं।
वयं लिखामः = हम सब लिखते हैं, हम सब लिखती हैं।

अनुवाद करते समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि विशेष्य में जो लिंग, वचन और विभक्ति होती है, वही लिंग, वचन और विभक्ति विशेषण में भी होती है। विशेषण और विशेष्य दोनों साथ-साथ आते हैं; एक के विना दूसरा रह नहीं सकता। प्रायः विशेषण विशेष्य से पहले आता है। कुछ उदाहरण देखिए :—

(१) काला पक्षी पेड़ पर बैठा है।
श्यामः खगः तरौ (वृक्षे) तिष्ठति।

(२) सभ्य बालकों को सब प्रेम करते हैं।
सभ्यान् बालकान् सर्वे स्नेहं कुर्वन्ति।

(३) रमा का भाई सफेद कपड़े पहनता है।
रमायाः सहोदरः श्वेतानि वस्त्राणि धारयति।

(४) मैं मीठा दही चाहता हूँ।
अहं मधुरं दधि वाञ्छामि।
(५) लाल कमल पर काले भौंरे बैठे हैं।
रक्त-कमले श्यामाः भ्रमराः तिष्ठन्ति।

खाद् धातु के लोट् लकार (आज्ञा एवं आशीर्वाद वाचक) के रूप

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	खादतु	खादताम्	खादन्तु
म० पु०	खाद	खादतम्	खादत
उ० पु०	खादानि	खादाव	खादाम

कृ धातु के लोट् लकार के रूप

प्र० पु०	करोतु	कुरुताम्	कुर्वन्तु
म० पु०	कुरू	कुरुतम्	कुरुत
उ० पु०	करवाणि	करवाव	करवाम

कुछ उदाहरण देखिए—
(१) तुम जल्दी पाठ पढ़ो।
त्वं शीघ्रं पाठं पठ।
(२) आज सुरेश पाठशाला न जाए।
अद्यः सुरेशः पाठशालां न गच्छतु।
(३) तुम दोनों मेरी आज्ञा का पालन करो।
युवां मम आज्ञायाः पालनं कुरुतम्।
(४) शाम तक सब किसान अपने-अपने घर आ जाएँ।
संध्या पर्यन्तं सर्वे कृषकाः स्वं स्वं गृहम् आगच्छन्तु (गृहमागच्छन्तु)।
(५) भिखारी के लिए अनाज दो।
भिक्षुकाय अन्नं प्रयच्छ।

वस् (रहना) धातु के विधि लिङ् (सम्भावना) के रूप

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	वसेत्	वसेताम्	वसेयुः

म० पु०	वसेः	वसेतम्	वसेत
उ० पु०	वसेयम्	वसेव	वसेम

कृ धातु के विधि लिंग के रूप

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युः
म० पु०	कुर्याः	कुर्यातम्	कुर्यात
उ० पु०	कुर्याम्	कुर्याव	कुर्याम

कुछ उदाहरण देखिए—

(१) मैं अध्यापक हो जाऊँ।
अहम् अध्यापकः भवेयम्।

(२) यदि तुम घर जाओ तो अच्छा होगा।
यदि त्वं गृहं गच्छेः तदा शोभनं भविष्यति।

(३) मेरी इच्छा है कि रमेश पाठ पढ़े।
मम इच्छास्ति यत् रमेशः पाठं पठेत्।

(४) वह शायद भविष्य में ठीक काम करे।
सम्भवतः स भविष्य काले उचितं कार्यं कुर्यात्।

(५) वह उत्तीर्णता के लिये यत्न करे।
स उत्तीर्णतायै यतेत्।

विशेष—लोट् लकार आज्ञा एवं आशीर्वाद अर्थ में आता है तथा विधि लिङ् सम्भावना, इच्छा आदि में। इनका प्रयोग करते समय भावना का ध्यान रखना चाहिए।

कुछ संख्याएँ

एकः=एक, द्वौ=दो, त्रयः=तीन, चत्वारि=चार, पञ्च—पाँच, षट्=छः, सप्त=सात, अष्टौ=आठ, नव=नौ, दश=दस, एकादश=ग्यारह, द्वादश=बारह, त्रयोदश=तेरह, चतुर्दश=चौदह, पंचदश=पन्द्रह, षोडश=सोलह, सप्तदश=सत्रह, अष्टादश=अठारह, एकोनविंशति=उन्नीस, विंशति=

बीस, त्रिशत्=तीस, चत्वारिंशत्=चालीस, पंचाशत=पचास, षष्टि=साठ, सप्तति=सत्तर, अशीति=अस्सी, नवति=नव्वे, शतम्=सौ, सहस्रम्=हजार, लक्षम्=लाख।

निम्नलिखित शब्दों के स्त्रीलिंग एवं नपुंसक लिंग में रूप बदल जाते हैं :—

स्त्रीलिंग—

एका=एक, द्वे=दो, तिस्रः=तीन, चतस्रः=चार।

नपुंसक लिंग—

एकम्=एक, द्वे=दो, त्रीणि=तीन, चतुः=चार।

प्रथमः=पहला, द्वितीयः=दूसरा, तृतीयः=तीसरा, चतुर्थः=चौथा, पंचमः=पाँचवाँ, षष्ठः=छठा, सप्तमः=सातवाँ, अष्टमः=आठवाँ, नवमः=नवाँ, दशमः=दसवाँ, एकादशमः=ग्यारहवाँ, द्वादशमः=बारहवाँ।

इनके स्त्रीलिंग में प्रथमा, द्वितीया, तृतीया एवं नपुंसक लिंग में प्रथमम्, द्वितीयम्, तृतीयम् आदि रूप होंगे। कुछ उदाहरण देखिए :—

(१) मेरे पास पाँच पुस्तकें हैं।
मम समीपे पंच पुस्तकानि सन्ति।

(२) दिनेश चौथा लड़का है।
दिनेशः चतुर्थः बालकः अस्ति (बालकोऽस्ति)।

(३) दूसरी लड़की ने इनाम पाया।
द्वितीया बालिका पारितोषिकं प्राप्तवती।

(४) कल पन्द्रह मनुष्य काम पर जावेंगे।
श्वः पंचदश मनुष्याः कार्ये गमिष्यन्ति।

(५) आज नवाँ दिन है।
अद्यः नवमः दिवसः अस्ति (दिवसोऽस्ति)।

आवश्यक निर्देश—अनुवाद करते समय सदा सरल शब्दों एवं धातुओं का प्रयोग करो। जिस शब्द या धातु के रूपों में तुम्हें सन्देह हो उसे मत लिखो। यदि सन्धि का तुम्हें ठीक ज्ञान हो तब उसका प्रयोग करो, अन्यथा शब्द ज्यों के त्यों रहने दो।

विशेष—यदि र और ष के बाद न होता है तो उसका ण हो जाता है। अकारान्त, इकारान्त, उकारान्त आदि शब्दों के रूप बनाते समय इसका ध्यान रखना चाहिए। जैसे,

	तृतीया का एकवचन	षष्ठी का बहुवचन
लता	लतया	लतानाम्
रमा	रमया	रमाणाम्
मोहन	मोहनेन	मोहनानाम्
राम	रामेण	रामाणाम्
कृषक	कृषकेण	कृषकाणाम्

नपुंसक लिंग शब्द	प्रथमा का बहुवचन
ज्ञान	ज्ञानानि
मधुर	मधुराणि

अभ्यासार्थ वाक्य

नीचे अभ्यासार्थ कुछ वाक्य दिये जाते हैं। अब तक बताये गये नियमों के आधार पर उनका संस्कृत में अनुवाद करो और प्रत्येक के साथ दिये संस्कृत अनुवाद से मिलाओ।

अभ्यास प्रथम

(१) अब हमारा देश स्वतन्त्र है। (२) हम अपने देश के शासक हैं। (३) जवाहरलाल हमारे प्रधान मन्त्री हैं। (४) वे राष्ट्र के सच्चे नायक हैं। (५) राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद त्यागी पुरुष हैं। (६) भारत का भविष्य इनके हाथों में सुरक्षित है। (७) हम सब देशों के साथ मित्रता का व्यवहार करेंगे। (८) संसार के लोग पंचशील पर मोहित हैं। (९) संसार में युद्ध के बादल गरज रहे हैं। (१०) हम शान्ति के पुजारी हैं।

अनुवाद—

१—इदानीं अस्माकं देशः स्वतन्त्रः अस्ति। २—वयं स्वदेशस्य शासकाः स्मः। ३—जवाहरलालः अस्माकं प्रधानमन्त्री अस्ति। ४—स राष्ट्रस्य वास्त-

विकः नायकः अस्ति (नायकोऽस्ति)। ५—राष्ट्रपतिः राजेन्द्रप्रसादः त्यागी पुरुषः अस्ति (पुरुषोऽस्ति)। ६—भारतस्य भविष्यम् एतेषां हस्तेषु सुरक्षितम् अस्ति (सुरक्षितमस्ति)। ७—वयं सर्वैं देशैः सह मित्रतायाः व्यवहारं करिष्यामः। ८—संसारस्य मनुष्याः पंचशीले मोहिताः सन्ति। ९—विश्वस्य उपरि युद्धस्य मेघाः गर्जन्ति। १०—वयं शान्तेः उपानकाः स्मः।

अभ्यास द्वितीय

(१) रमेश विद्या का भाई है। (२) वह रोजना पाठशाला जाता है। (३) उसका स्कूल शहर से बाहर है। (४) मास्टर साहब उससे प्रसन्न हैं। (५) वह भविष्य में उन्नति करेगा। (६) ऐसे बच्चों का सब को अनुकरण करना चाहिए। (७) व्यायाम स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है। (८) मेरे घर के समीप एक पहलवान (मल्ल) रहता है। (९) पहलवानों का शरीर मजबूत (पुष्ट) होता है। (१०) स्वस्थ मनुष्य अधिक दिन जीते हैं।

अनुवाद

१—रमेशः विद्यायाः भ्राता अस्ति (भ्रातास्ति)। २—स प्रतिदिनं पाठशालां गच्छति। ३—तस्य विद्यालयः नगराद् वहिः अस्ति। ४—अध्यापकः तेन प्रसन्नः अस्ति। ५—स भविष्ये उन्नति करिष्यति। ६—ईदृशाणां बालकानां सर्वैः अनुकरणं कर्तव्यम्! ७—व्यायामः स्वास्थ्याय लाभदायकः अस्ति (लाभदायकोऽस्ति)। ८—मम गृहस्य समीपे एकः मल्लः निवसति। ९—मल्लानां शरीरं पुष्टं भवति। १०—स्वस्थाः मनुष्याः बहुदिनपर्यन्तं जीवन्ति।

अभ्यास तृतीय

(१) वसन्त ऋतु बड़ी सुहावनी होती है। (२) इस समय वृक्षों पर सुन्दर फूल खिलते हैं। (३) फूलों पर भौंरे गूंजने लगते हैं। (४) वसन्त में प्रातःकाल टहलना चाहिये। (५) गर्मी में शरीर से पसीना निकलता है। (६) वर्षा ऋतु में आकाश पर बादल दौड़ते हैं (धाव् धातु)। (७) शरद् ऋतु की कवियों ने बहुत प्रशंसा की है। (८) इस समय तालाबों में कमल खिलते हैं। (९) जाड़ों में अनेक वस्त्रों की आवश्यकता होती है। (१०) भारत में ऋतुएँ क्रम से आती हैं।

अनुवाद—

१—वसन्तः ऋतुः शोभनः भवति। २—अस्मिन् समये वृक्षेषु पुष्पाणि विकसन्ति। ३—पुष्पेषु भ्रमराः गुंजनं कुर्वन्ति। ४—वसन्ते प्रातः भ्रमणं कर्तव्यम्। ५—ग्रीष्मे शरीरात् स्वेदः निर्गच्छति। ६—वर्षायां ऋतौ आकाशे मेघाः धावन्ति। ७—शरत् ऋतोः कविभिः महती प्रशंसा कृतास्ति। ८—अस्मिन् समये सरोवरेषु कमलानि विकसन्ति। ९—शीते अनेकेषां वस्त्राणम् आवश्यकता (वस्त्राणामावश्यकता) भवति। १०—भारते सर्वे ऋतवाः क्रमेण आगच्छन्ति।

अभ्यास चतुर्थ

(१) छात्रों को परिश्रम करना चाहिये। (२) अन्यथा वे परीक्षा में सफल नहीं होंगे। (३) रामायण की पुस्तक सन्दूक (मंजूषा) में है। (४) क्या तुम पाठ नहीं पढ़ोगे ? (५) मैंने रात स्वप्न देखा। (६) मार्ग में जाता हुआ मनुष्य भिखारी है। (७) तुम सब पत्र लिख कर अपने-अपने घर जाओ। (८) सदा सत्य भाषण करो। (९) सूर्य पूर्व दिशा में निकलेगा। (१०) चन्द्रमा का प्रकाश शीतल होता है।

अनुवाद—

१—छात्रैः परिश्रमः कर्तव्यः। २—अन्यथा ते परीक्षायां सफलाः न भविष्यन्ति। ३—रामायणस्य पुस्तकं मञ्जूषायामस्ति। ४—किं त्वं पाठं न पठिष्यसि। ५—मया निशायां स्वप्नं दृष्टम्। ६—मार्गे गच्छन् पुरुषः भिक्षुकः अस्ति (भिक्षुकोऽस्ति)। ७—यूयं पत्राणि लिखित्वा स्वं स्वं गृहं गच्छत। ८—सदा सत्यभाषणं कुरू। ९—सूर्यः पूर्वस्यां दिशायां उदेष्यति। १०—चन्द्रस्य प्रकाशः शीतलः भवति।

अभ्यास पंचम

(१) मैं प्रयाग में जाकर गङ्गा नहाऊँगा। (२) महाकाल का मन्दिर देखो। (३) क्या तुम वहाँ जाकर पूजा करोगे ? (४) यहाँ कितने मनुष्य हैं ? (५) लड़की चारपाई पर बैठी रो रही है। (६) माता-पिता की आज्ञा का पालन करना चाहिये। (७) अवकाश का समय व्यर्थ मत करो। (८) तुम

प्रयाग से मेरे लिए क्या लाओगे ? (९) तुम्हारे बाप खेत जाते हुए बातें करते हैं। (१०) उस पथिक की बात भी सुनो।

अनुवाद—

१—अहं प्रयागे गत्वा गंगायां स्नानं करिष्यामि। २—महाकालस्य मन्दिरं पश्य। ३—किं त्वं तत्रगत्वा पूजां करिष्यसि ? ४—अत्र कति पुरुषाः सन्ति। ५—बालिका शय्यायां शयाना रोदनं करोति। ६—जनन्याः जनकस्य च आज्ञायाः पालन कर्तव्यम्। ७—अवकाशस्य समयं व्यर्थं मा कुरू। ८—त्वं प्रयागात् मह्यं किम् आनेष्यसि (किमानेष्यसि) ? ९—युष्माकं पिता क्षेत्रं गच्छन् वार्ताम् करोति। १०—तस्य पथिकस्य अपि वार्ता श्रुणु।

अभ्यास षष्ठ

(१) मुझे एक कुत्त की आवश्यकता है। (२) कुत्ता तुम्हारे घर की रखवाली (रक्षा) करता है। (३) बिल्ली चूहों को खाती है। (४) कोयल मीठा शब्द करती है। (५) सायं-प्रातः संध्या करनी चाहिए। (६) एक महीने बाद मैं बनारस जाऊँगा। (७) मेरे दाँत में दर्द हो रहा है। कल एक नवयुवक सातवें खण्ड से गिर पड़ा। (९) रमेश कमलेश से प्रश्न पूछता है। (१०) दिल्ली भारत की राजधानी है।

अनुवाद—

१—मह्यं एकस्य कुक्कुरस्य आवश्यकतास्ति। २—श्वानः युष्माकं गृहस्य रक्षां करोति। ३—मार्जारः मूषकान् खादति। ४—कोकिला मधुरं शब्दं करोति। ५—सायं प्रातः सन्ध्या कर्तव्या। ६—एकमासं पश्चात् अहं वाराणसीं गमिष्यामि। ७—मम दन्ते पीड़ा भवति। ८—ह्यः एकः युवकः सप्तमात् खण्डात् अपतत्। ९—रमेशः कमलेशात् प्रश्नं प्रच्छति। १०—दिल्ली भारतस्य राजधानी अस्ति (राजधान्यस्ति)।

अभ्यास सप्तम

(१) मैं विद्यालय जाता हूँ। (२) इसका भवन सुन्दर है। (३) यह मेरा विद्यालय है। (४) मेरी पुस्तकें देखो (५) यहाँ मैं पढ़ता हूँ।

अनुवाद—

१—अहं विद्यालयं गच्छामि। २—अयं मम विद्यालयः अस्ति (विद्यालयोऽस्ति)। ३—अत्र अहं पठामि। ४—अस्य भवनं सुन्दरमस्ति। ५—मम पुस्तकानि पश्य।

अभ्यास अष्टम

(१) वह अपनी पुस्तक पढ़ता है। (२) यह नगर सुन्दर था। (३) तुम यह क़ाम करो। (४) हम जल पीते हैं। (५) वह घर जायेगा।

अनुवाद—

१—स स्वं पुस्तकम् पठति। २—इदम् नगरम् सुन्दरम् आसीत्। ३—त्वम् इदम् कार्यम् कुरू। ४—वयम् जलम् पिवामः। ५—स गृहं गमिष्यति।

नोट—ऊपर अभ्यास के लिए दिये गये संस्कृत वाक्यों के शब्दों में कहीं-कहीं सन्धि की गई है और कहीं-कहीं सन्धि कोष्ठक में दे दी गई है। पाठक उन उदाहरणों को सामने रखकर उसी प्रकार अन्य शब्दों में भी सन्धि कर सकते हैं। यदि सन्धि करके लिखने में अशुद्धि की आशंका हो तो शब्दों को अपने मूल रूप में रखना ही उचित है। उदाहरण के लिए 'सुन्दरतम् अस्ति' लिखिये अथवा 'सुन्दरमस्ति' लिखिये।

: ६ :

निबन्ध

१. व्यायाम

रूपरेखा—

१. जीवन में व्यायाम की आवश्यकता।
२. व्यायाम के विभिन्न रूप।
३. व्यायाम के लाभ।
४. आज के जीवन की दशा और व्यायाम।
५. व्यायाम और जीवन का आनन्द।

हमारे आचार्यों ने कहा है, 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्, अर्थात् धर्म-साधन में शरीर ही सर्वप्रथम है। स्वस्थ शरीर से ही मनुष्य संसार में कुछ कार्य करके अपने जीवन को सार्थक कर सकता है, अतः स्वास्थ्य उसके लिये सबसे बड़ा वरदान है। किन्तु इस वरदान को ईश्वर-प्रदत्त समझकर भाग्य पर नहीं छोड़ना चाहिये। स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिये चेष्टा करनी पड़ती है, और वह चेष्टा है—नियमित, संयमित जीवन तथा व्यायाम। बिना व्यायाम के न तो शरीर स्वस्थ रहता है, न सुगठित, अतः व्यायाम को दैनिक जीवन का एक आवश्यक कार्य समझकर ही करना उचित है।

हम देखते हैं कि साधारण एवं रूखा भोजन करने वाले देहाती हट्टे-कट्टे होते हैं और पौष्टिक भोजन करने वाले धनी नागरिक डाक्टरों का बिल चुकाते-चुकाते थक जाते हैं। वे बेचारे सदा किसी न किसी रोग के शिकार बने ही रहते हैं। इसका मुख्य और एकमात्र कारण है व्यायाम का अभाव। शरीर

को स्वस्थ और पुष्ट रखने के लिए उत्तम भोजन की अपेक्षा यह अधिक आवश्यक है कि जो खायें, उसे हमारा शरीर भली प्रकार पचा सके। गाँव का किसान रात-दिन परिश्रम करता है, फिर भी स्वस्थ रहता है, और धनी नागरिक सुखमय जीवन बिताता है किन्तु रोगी रहता है; यही दोनों की दशा के अन्तर का कारण है।

अपने आपको स्वस्थ और प्रसन्न रखने के लिये व्यायाम अत्यन्त आवश्यक है। सभी अंगों को शक्तिशाली बनाने के लिए उनसे काम लेना अनिवार्य है। हमारा जो भी अङ्ग काम में नहीं आवेगा, धीरे-धीरे वही आलसी और निकम्मा होकर बेकार बन जावेगा। शरीर के सभी अङ्गों को केवल व्यायाम द्वारा ही क्रियाशील रखा जा सकता है। जो लोग अपने दैनिक कार्यों में ही इतना श्रम कर लेते हैं कि उनका प्रत्येक अङ्ग मजबूत बन जावे, उन लोगों को व्यायाम की आवश्यकता नहीं रह जाती। हाँ, जो लोग बुद्धिजीवी हैं, उनका काम तो व्यायाम के विना चल ही नहीं सकता।

व्यायाम प्रत्येक अवस्था और रहन-सहन वाले व्यक्ति का भिन्न होता है। व्यायाम करते समय शरीर की शक्ति का भी ध्यान रखना चाहिये। शरीर की शक्ति से अधिक व्यायाम करना लाभ के स्थान में हानि करता है। बालक और वृद्ध का व्यायाम कभी एक-सा नहीं हो सकता। बालक के लिये मिट्टी-धूल में खेलना ही व्यायाम है और वृद्ध मनुष्यों के लिये खुली हवा में टहलना। बहुत से लोग कपड़े मैले होने के डर से बच्चों को धूल-मिट्टी से दूर रखते हैं। पर इस प्रकार वे बच्चों के साथ अहित ही करते हैं। मिट्टी में खेलने वाले बच्चे प्राय: स्वस्थ और प्रसन्न रहते हैं। धूल में खेलने वाले बच्चों के दाँत बड़ी आसानी से निकल आते हैं। नवयुवक व्यक्ति को इतना व्यायाम करना चाहिये, जिससे उनके शरीर से अच्छी तरह पसीना निकलने लगे। दौड़ना, दण्ड-बैठक करना, कुश्ती लड़ना, तैरना आदि नवयुवकों के व्यायाम हैं।

विद्यालयों में जो खेल खिलाये जाते हैं, छात्रों को उनमें अवश्य भाग लेना चाहिये। उनके खेलने से व्यायाम तो हो ही जाता है, साथ ही साथ सहयोग और मित्रता की भावना भी बढ़ती है। जो छात्र खेलों में समय का दुरुपयोग समझकर उनसे दूर रहते हैं, वे अपने ही पैर में कुल्हाड़ी मारते हैं। पढ़ते-पढ़ते

मस्तिष्क में जो थकावट आ जाती है, खेलने के मनोरंजन से वह दूर हो जाती है और मन पढ़ने-लिखने में फिर खूब लगता है।

विदेशी व्यायाम एवं खेलों की अपेक्षा भारतीय व्यायाम तथा खेल कम खर्चीले और अधिक लाभकर होते हैं। कुछ व्यायाम ऐसे भी हैं जिनके द्वारा आर्थिक लाभ भी हो सकता है; जैसे कुएँ से पानी खींचना और फावड़ा चलाना। यदि आपके घर में पानी कुएँ से आता है तो आप सवेरे ही आधा घण्टा परिश्रम करके अपना व्यायाम और कहारी का खर्चा बचा सकते हैं। यदि आपके घर में कुछ खाली भूमि है तो उसमें सब्जियाँ लगा लीजिये। उनकी खुदाई और सिंचाई के रूप में आधा घण्टा प्रतिदिन लगाकर भी आप व्यायाम के साथ अपने परिवार के लिये ताजा सब्जियों का प्रबन्ध कर सकते हैं।

व्यायाम के लाभों की कोई गणना नहीं है। मनुष्य-जीवन की जितनी सफलताएँ हैं, जो खुशियाँ हैं, वे सब व्यायाम की ही देन हैं। शरीर की स्व-स्थता का आधार है पेट। जो कुछ हम भोजन के रूप में खाते हैं, उसे अगर ठीक से नहीं पचा पाते तो हमारा शरीर कभी स्वस्थ नहीं रह सकता है। जब तक भोजन का रस नहीं बनेगा, तब तक वह शरीर के लिये किसी काम का नहीं। व्यायाम करने से आँतों में बल आता है। साँस जल्दी-जल्दी चलने से रक्त का संचार बढ़ता है। व्यायाम से शरीर में फुर्ती और हल्कापन रहता है, आलस्य तथा सुस्ती पास भी नहीं आती। एक वृद्ध महोदय रोजाना दस बैठक और पाँच दण्ड किया करते थे। इसका प्रयोजन पूछने पर उन्होंने बताया—"जिस प्रकार चारपाई खिंची हुई और तंग रखने के लिये अदमायन खींचना आवश्यक है, उसी प्रकार शरीर को फुर्तीला बनाने के लिये कुछ न कुछ व्यायाम करना आवश्यक है।"

जो लोग व्यायाम करते हैं, उन्हें शारीरिक कष्ट सहने का अभ्यास सा पड़ जाता है। वे मुसीबत पड़ने पर घबराते नहीं। व्यायाम करने वाले लोग स्वभाव से परिश्रमी और महत्वाकांक्षी होते हैं। व्यायाम का तिरस्कार करके अन्य कामों में रात-दिन लगे रहने वाले लोग अधिक दिन स्वस्थ नहीं रह पाते। आजकल नगरों की आबादी बढ़ रही है, खाने की वस्तुओं में मिलावट

की भरमार है, शुद्ध वायु और सूर्य की किरणों के दर्शन दुर्लभ होते जा रहे हैं, ऐसी अवस्था में केवल व्यायाम ही स्वास्थ्य की रक्षा कर सकता है।

आजकल मनुष्य-जीवन बड़ा संघर्षमय बन गया है। वस्तुओं के भाव चढ़ जाने और रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठ जाने से मनुष्य बड़ा व्यस्त रहने लगा है। उसके पास समय की बहुत न्यूनता हो चली है। वह समय बीत गया, जब एक कमाता था और दस बैठे खाते थे। आज तो सब कमावें, तब भी पेट नहीं भरता। ऐसी अवस्था में लोग व्यायाम करना बन्द कर देते हैं, क्योंकि उतने समय में काम करके कुछ न कुछ कमाया जा सकता है। किन्तु जब भाँति-भाँति की बीमारियाँ उन्हें घेरती हैं तो डाक्टरों की फीस और हकीम जी के नुस्खों में उससे कई गुना पैसा उठ जाता है, जो उन्होंने व्यायाम के समय में कमाया था।

दण्ड, बैठक, मुगदर आदि भारतीय व्यायाम ऐसे हैं, जो बिना किसी अतिरिक्त व्यय के थोड़े से समय में किये जा सकते हैं। इनके लिए कहीं आने-जाने की भी आवश्यकता नहीं। ये व्यायाम अपने घर पर ही खुली हवा और साफ जगह में किये जा सकते हैं। दिखावटी भड़कीलापन दूर रखकर तथा सादगी का आश्रय लेकर इतना समय निकालना कोई बड़ी बात भी नहीं है। लगातार एक ही कार्य करते रहने से जीवन में कोई रस भी तो नहीं रह जाता। परिवर्तन के लिये भी व्यायाम अत्यन्त आवश्यक है। लगातार एक ही कार्य में व्यस्त रहा भी तो नहीं जा सकता।

जीवन का वास्तविक आनन्द व्यायाम में ही है। कुछ लोग बरसात आने से पहले ही छत पर मिट्टी डाल देते हैं और कुछ वर्षा होने पर जब छत टपकने लगती है, तब भीगते हुए ऊपर जाते हैं। व्यायाम करना पहले प्रकार के लोगों की तरह रोगों की आगामी रोकथाम है और चिकित्सा करना दूसरी तरह के लोगों की भाँति तात्कालिक उपाय है। टपकती हुई छत पर मिट्टी डालने से प्राय: वह ठीक नहीं होती। यदि ठीक होती भी है तो कुछ कमजोर अवश्य हो जाती है। इसी प्रकार रोगों की चिकित्सा से तुरन्त छुटकारा मिलने पर भी शरीर कमजोर हो जाता है। व्यायाम जैसा सस्ता और सुलभ साधन होते हुए भी लोग रोगी और दुर्बल बनते हैं, यह आश्चर्य की बात है। बुद्धिमत्ता इसी में है कि व्यायामशील बनकर जीवन आनन्द से बितावें।

२. विद्यार्थी जीवन

रूपरेखा—

१. विद्यार्थी जीवन की आवश्यकता।
२. प्राचीन तथा आधुनिक विद्यार्थी।
३. विद्यार्थी जीवन के आनन्द, नियम और संयम।
४. विद्यार्थी जीवन की देन।
५. तपस्या का सुखद फल।

हमारे आचार्यों ने मानज जीवन को लगभग १०० वर्ष का मानकर उस को चार भागों में बाँटा है जो आश्रम कहे जाते हैं: (१) ब्रह्मचर्याश्रम, (२) गृहस्थाश्रम, (३) वानप्रस्थाश्रम, और (४) संन्यासाश्रम। ब्रह्मचर्याश्रम का दूसरा नाम ही विद्यार्थी जीवन है। यह जीवन का सर्वश्रेष्ठ भाग है जो मनुष्य को भविष्य के जीवन के लिए तैयार करता है। यह वह नींव है जिस पर भवन का निर्माण होता है। जितनी गहरी, जितनी मजबूत नींव होगी उतना टिक सकने वाला भवन होगा। विद्यार्थी जीवन एक वृक्ष है जिसको जितने ही परिश्रम के जल से सींचा जाएगा या जितना ही अधिक निरीक्षण होगा उतना ही वह एक निश्चित अवधि आने पर मीठे फल देगा। यही जीवन का स्वर्णकाल है जब कि अन्य सभी झंझटों से मुक्त होकर विद्यार्थी साहित्य-कला का अध्ययन कर सकता है। जिसने इस समय को नष्ट किया, वह जीवन भर भटकता रहता है।

हमारे शास्त्रकारों ने जीवन का विभाजन बड़े वैज्ञानिक ढङ्ग से किया है। जीवन के आरम्भ में मनुष्य की शक्तियाँ उन्नतिशील होती हैं। वह प्रत्येक बात जल्दी सीख लेता है एवं थोड़े समय में याद कर लेता है। सफल विद्यार्थी ही अच्छा गृहस्थ बन सकता है। वानप्रस्थ और संन्यास की सफलता भी बहुत कुछ विद्यार्थी जीवन पर ही निर्भर है। जिस व्यक्ति ने विद्यार्थी जीवन में ज्ञान-संचय नहीं किया, वह वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में ही क्या कर लेगा? अतएव मानव-जीवन को सुखपूर्वक विताने के लिये तथा जीवन सफल बनाने के लिये विद्यार्थी जीवन की नितान्त आवश्यकता है।

समय के साथ-साथ सभी बातें बदलती रहती हैं। प्राचीन विद्यार्थी और आज के विद्यार्थी में भी बहुत अन्तर आ गया है। उनके रहन-सहन में जमीन-आसमान का भेद हो गया है। प्राचीन काल में विद्यार्थी २५ वर्ष तक गुरू के आश्रम में ब्रह्मचारी बनकर रहते थे। उन्हें घर से दूर रहकर एक संयमपूर्ण जीवन बिताना पड़ता था। उन्हें भिक्षा माँगकर निर्वाह करना एवं गुरू की आज्ञा का पालन करना होता था। उस समय विद्यार्थी जीवन एक प्रकार की तपस्या थी। पुस्तकें नहीं थीं। प्रत्येक बात गुरू के मुख से सुनकर ही याद रखनी पड़ती थी। वे विद्यार्थी गुरू की सेवा भी बड़ी लगन से करते थे। विद्यार्थी जीवन की सफलता परीक्षा में उत्तीर्ण होना नहीं थी, ज्ञान की प्राप्ति में ही वहाँ सफलता समझी जाती थी। आज के विद्यार्थी को वे सब मुसीबतें नहीं उठानी पड़तीं। वह अपने घर रहकर तथा अन्य गृहस्थों के समान ठाट-बाट का जीवन व्यतीत करता हुआ पढ़ सकता है। उच्च कक्षाओं में यदि कुछ लोगों को घर से बाहर रहना भी पड़ता है तो जीवन की उच्चता में कोई कमी नहीं आती। वे लोग वर्ष में कई बार घर आ सकते हैं। उन्हें पुराने विद्यार्थियों के समान एक निश्चित अवधि तक शिक्षा समाप्त करने का बन्धन नहीं होता। आज के विद्यार्थी का उद्देश्य किसी न किसी तरह परीक्षा पास करना हो गया है। जीवन की बाहरी दिखावट के लिए प्रमाण-पत्रों की आवश्यकता पड़ती है न कि वास्तविक ज्ञान के लिए। कुछ को छोड़कर शेष लोग जीवन भर गृहस्थ ही बने रहते हैं, उनकी विचारधारा वानप्रस्थ या संन्यास की ओर नहीं जाती। इसका कारण उनका विद्यार्थी जीवन में वास्तविक ज्ञान से दूर रहना है।

प्राचीन काल के विद्यार्थी पहले कष्ट और तपस्या का अभ्यास करके गृहस्थ जीवन में संयमपूर्वक रहते थे तथा वानप्रस्थ-संन्यास में फिर तपस्या तथा ज्ञान-प्राप्ति आरम्भ कर देते थे। आज का विद्यार्थी जन्म से ही सुख और सुविधा में पलता है, उससे आधी अवस्था बीतने पर त्याग और तपस्या की आशा कैसे की जावे ? यही कारण है कि देश का चरित्र गिर रहा है, लोगों के जीवन दुःखमय हो रहे हैं, इस सब का कारण विद्यार्थी जीवन का बिगड़ जाना ही है।

प्राचीन काल के विद्यार्थियों की अपेक्षा आजकल के छात्रों को बहुत कुछ सुविधाएँ हैं, किन्तु सुख-दुःख का झमेला उनके साथ भी लगा हुआ है। इस जीवन में बहुत से सुख भी हैं और दुःख भी। मस्ती, निश्चिन्तता और स्वतन्त्रता इस जीवन की सुखद विशेषताएँ हैं। विद्यार्थी को रोटी-कपड़े की कोई चिन्ता नहीं रहती। उसके घर वाले किसी न किसी प्रकार उसकी आवश्यकताएँ पूरी करते हैं। उसे किसी भी झगड़े-झंझट से सम्बन्ध नहीं रहता। स्वतन्त्रता तो उसकी साथिन रहती है। विद्यार्थी के आगे सब नियम ढीले पड़ जाते हैं।

प्राचीन काल में राजा-महाराजा भी छात्रों को मार्ग छोड़ देते थे। आज भी रेल, सिनेमा आदि में छात्रों को बहुत-सी सुविधाएँ दी जाती हैं। अनेक प्रकार के सुख और भाँति-भाँति की सुविधाओं के साथ विद्यार्थी जीवन में कुछ ऐसी बातें भी हैं, जिन्हें कष्ट कहा जा सकता है। विद्यार्थी को रुपये-पैसे की चिन्ता न सही, परीक्षा-फल की चिन्ता तो करनी ही पड़ती है। बहुत से छात्र तो असफल होने पर आत्महत्या करते तक सुने गये हैं। गर्मी, वर्षा और ठण्ड में ठीक समय पर पाठशाला जाना, इच्छा न रहते हुए भी ठीक समय पर पाठ याद करना क्या कम मुसीबत है? जब ठण्डी-ठण्डी हवा चलती है और सब लोग सोते हैं, तब उठकर पढ़ना विद्यार्थी को अनिवार्य हो जाता है।

कुछ ऐसी असुविधाएँ होते हुए भी जिन्हें दुःख का नाम दिया जा सकता है, विद्यार्थी जीवन सुखपूर्ण ही है। जिन्हें हम दुःख समझते हैं, उनका फल बड़ा सुखद और सुन्दर होता है। विद्यार्थी जीवन के अनेक वरदान हैं। विद्यार्थी-जीवन की सफलता-असफलता पर ही जीवन का सारा कार्यक्रम निर्भर रहता है। इस समय बालक अक्षर-ज्ञान के साथ-साथ साहस, आत्म-निर्भरता, सहयोग, अनुशासन आदि ऐसे गुण भी सीखता है, जो जीवन में अत्यन्त आवश्यक होते हैं। विद्याध्ययन के लिए घर से बाहर निकलकर बालक अपनी बहुत-सी समस्याएँ स्वयं सुलझाने और अनेक आपत्तियों का सामना करने का अभ्यास करता है।

विद्यार्थी जीवन की सबसे बड़ी देन योग्य मित्रों को प्राप्त करना है। विद्यार्थी जीवन में समान शील वाले जितने बालक एकत्र होते हैं, उतने अन्यत्र कहीं नहीं। पाठशालाओं और विद्यालयों में दूर-दूर के बाल ज्ञान प्राप्त करते

आते हैं। इस जीवन में सबको अपनी-अपनी पसन्द के अनुसार मित्र बनाने की सुविधा रहती है। मित्र जीवन में सबसे बड़ा धन और मुसीबत का सहारा होता है। यदि सब को मित्र नहीं बनाया जा सकता तो जान-पहिचान तो अनेक से हो ही सकती है। कभी-कभी जान-पहचान मात्र से भी बहुत से काम निकल जाते हैं।

विद्यार्थी जीवन एक तपस्या है, इससे इंकार नहीं किया जा सकता; पर साथ-साथ इसका फल भी सुखद होता है। विद्यार्थी जीवन में परिश्रम करने वाला व्यक्ति सदा सुखी और सन्तुष्ट रहता है। जो विद्यार्थी विलासिता का जीवन व्यतीत करते हैं वे आगे दुःख के भागी होते हैं।

विद्यार्थी देश के भावी नागरिक और राष्ट्र के स्तम्भ कहे जाते हैं, अतएव विद्यार्थी जीवन की सफलता पर स्वयं छात्रों, उनके अभिभावकों, अध्यापकों और सरकार को ध्यान देना चाहिए। कभी-कभी ऐसा होता है कि थोड़ी-सी असुविधा के कारण योग्य छात्र भी अपना विद्यार्थी जीवन सफल नहीं बना पाते, जबकि दूसरी ओर अनधिकारी लोग माँ-बाप का पैसा पानी की तरह बहाकर विद्यार्थी जीवन की ओट में गुलछर्रे उड़ाते हैं। यदि छात्र अपने समय का सदुपयोग करें तो उनके जीवन के साथ सारे राष्ट्र का जीवन सुखमय हो सकता है। आज की शिक्षा-प्रणाली ने छात्रों के जीवन को गलत राह पर मोड़ रखा है। इसके परिवर्तन से भी बहुत कुछ सुधार हो सकता है।

३. विज्ञान के चमत्कार

रूपरेखा—

१. विज्ञान की व्यापकता।
२. भाँति-भाँति के आविष्कार।
३. मानव-जीवन के विकास में सहायक।
४. प्राकृतिक शक्तियों का उपयोग।
५. दुरुपयोग और हानि।

आज का युग विज्ञान का युग कहलाता है। जिधर दृष्टि जाती है, उधर

ही विज्ञान के चमत्कार मनुष्य को आश्चर्यचकित कर देते हैं। आकाश में उड़ते हुए वायुयान, धरती की छाती पर रात-दिन दौड़ती हुई रेलें और मोटरें, अथाह सागर में निर्भय होकर तैरते हुए जहाज विज्ञान की ही दुन्दुभी बजाते हैं। आज विज्ञान मनुष्य के जीवन में इतना समा गया है कि एक सभ्य व्यक्ति को इसके अभाव में जीने की कल्पना भी कठिन मालूम होती है। आज मनुष्य की सभी आवश्यकताएँ विज्ञान द्वारा पूरी होती हैं। खाने का आटा, पहनने के वस्त्र, पढ़ने की पुस्तकें, यात्रा की सवारियाँ, रहने के मकान और स्वास्थ्य-लाभ करने की औषधियाँ, कोई भी तो वस्तु ऐसी नहीं है, जिनमें विज्ञान की सहायता न ली गई हो। साधारण मनुष्य पर भी यदि हम ध्यान दें तो वह भी बहुत कुछ विज्ञान के ही आधार पर आवश्यकताएँ पूरी करता लगेगा।

विज्ञान की सहायता से जीवन के सभी क्षेत्रों में भाँति-भाँति के आविष्कार हुए हैं और हो रहे हैं, जिन्हें हम साधारण तौर पर निम्न रूपों में विभक्त कर सकते हैं:—

(क) **खाद्य-विज्ञान**—जीवन एवं स्वास्थ्य के लिये भोजन आवश्यक है, इसे तो लोग बहुत पहले से जानते थे, किन्तु आज के वैज्ञानिक ने पोषक तत्वों को विटामिन के नाम देकर कई कोटियों में बाँटकर स्वास्थ्य का सुगम मार्ग बताया है। भोजन तथा दूसरे खाद्य-पदार्थों को सुरक्षित रखने की दिशा में कदम उठाया गया है। ऐसी गोलियों का भी आविष्कार किया गया है, जिन्हें एक बार खाकर कई दिन तक बिना भोजन किये सभी काम किये जा सकते हैं।

(ख) **वस्त्र-विज्ञान**—वस्त्र बनाने की कला भी मनुष्यों को बहुत पहले मालूम थी, पर आज विज्ञान ने ऐसी मशीनों का आविष्कार किया है, जिनसे लाखों गज कपड़ा एक दिन में तैयार हो जाता है। कपड़ों की रंगाई, भाँति-भाँति की डिजायनें तथा टिकाऊपन भी कम आश्चर्यजनक नहीं होता। नकली ऊन और नकली रेशम बनाकर तो इस ओर एक प्रकार की क्रान्ति कर दी गई है।

(ग) **कृषि-विज्ञान**—भोजन की समस्या कृषि द्वारा ही सर्वत्र हल होती है। इस क्षेत्र में भी विज्ञान ने जुताई, बुवाई, कटाई, बीज, खाद, सिंचाई

सम्बन्धी अनेक खोजें की हैं। बंजर भूमि को ट्रैक्टर द्वारा उपजाऊ बनाया जा रहा है। बिजली के कुओं के ऊसर भूमि भी हरी-भरी बनादी गई है। रासायनिक खाद और फसलों को हानि पहुँचाने वाले कीड़ों को मारने वाली दवाएँ बनाई गई हैं। रूस में तो ऐसी कपास के बीज उत्पन्न किये गये हैं, जिनसे लाल, नीली, पीली रुई निकलती है।

(घ) **गृह-निर्माण-विज्ञान**—मकान बनाने के लिये सीमेंट, ईंटें, रोड़ी मिलाने की मशीनें ही विज्ञान की देन नहीं हैं, मकान बनाने के कारखाने भी बन गये हैं, जिनमें ऐसे मकानों का निर्माण होता है, जो आसानी से एक जगह से दूसरी जगह ले जाये जा सकें। मकानों को ठण्डा और गर्म रखने के यन्त्र तो साधारण बातें हैं। भोजन बनाने और सफाई करने तक की मशीनें बन गई हैं।

(ङ) **औषधि और शल्य-चिकित्सा**—चिकित्सा के इन दोनों रूपों में विज्ञान ने अनेक आविष्कार किये हैं। इन्जेक्शन के रूप में शरीर के भीतर दवा पहुँचाकर रोग की तुरन्त रोक-थाम की जा सकती है। ऐक्स-रे के द्वारा शरीर के भीतरी भागों का चित्र सरलता से लिया जा सकता है। अनेक प्रकार के बनावटी अङ्गों का आविष्कार हुआ है, जो असली की भाँति दीखते या काम करते हैं। एक के शरीर से खून लेकर दूसरे के शरीर में प्रविष्ट करके मरणासन्न व्यक्ति की जीवन-रक्षा क्या कुछ कम आश्चर्यजनक है ?

(च) **यातायात के साधन**—विज्ञान ने शीघ्रगामी यातायात के साधनों का निर्माण करके संसार को बहुत छोटा बना दिया है। अब यात्रा सुखद और सुरक्षित बन गई है। देश के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँचने में कुछ दिन या कुछ घंटों का ही समय लगता है। इन साधनों के कारण दूर देश के निवासियों से सम्पर्क रहने से सभ्यता का भी विकास हुआ है।

(छ) **मनोरंजन के साधन**—मनुष्य सदा से किसी न किसी प्रकार मनोरंजन करके ही अपनी थकान को दूर करता आया है। पर आज विज्ञान ने मनोरंजन के इतने सस्ते, सरल और सुलभ साधन प्रस्तुत कर दिये हैं कि साधारण व्यक्ति भी उनसे लाभ उठा सकता है। सिनेमा, सरकस, रेडियो, टेलीविजन, समाचार-पत्र से आज कौन परिचित नहीं है ? जिन कलाकारों का

गीत और नृत्य बड़े-बड़े धनिकों को भी दुर्लभ था, आज हम थोड़े से पैसे व्यय करके उसे सिनेमा के पर्दे पर देख-सुन सकते हैं।

इनके अतिरिक्त भी बहुत से उपयोगी आविष्कार हुए हैं। टेलीफून और तार की व्यवस्था ने समय और दूरी बिल्कुल समाप्त ही करदी है। छापने की कला से ज्ञान बहुत ही सुलभ हो गया है। इसके साथ-साथ विज्ञान ने विनाश की ओर भी कदम बढ़ाये हैं। ऐसे-ऐसे घातक अस्त्रों और विषैली गैसों का आविष्कार हुआ है कि क्षण मात्र में लाखों-करोड़ों व्यक्तियों का संहार हो सके।

यह कहने में किसी को कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि विज्ञान ने मानव-जीवन का सब प्रकार विकास किया है। आज मृत्यु से जूझना स्वप्न नहीं, प्रत्यक्ष है। ऐसे रोगों की चिकित्साएँ प्रचलित हैं, जिन्हें ईश्वर का कोप और मृत्यु का दूत माना जाता था। विज्ञान ने प्राचीन सभ्यता की खोज, दूर-दूर के स्थानों का भ्रमण और अनेक रहस्यों को जानने में सहायता दी है। विज्ञान की सहायता से लोग पर्वतों की दुर्गम चोटियों, सागर की मीलों गहराई और ज्वालामुखी के गर्भ में उतरकर वहाँ की वास्तविकताएँ जान सके हैं। विज्ञान ने आराम की वस्तुएँ—पंखा, कुकर, रेफ्रीजेटर, विजली आदि—बड़े सस्ते दामों में सर्व-सुलभ बना दी हैं। समाचार-पत्र और रेडियो के रूप में विश्व के कोने-कोने से तत्क्षण सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। माइक्रोफोन की सहायता से कमजोर व्यक्ति की आवाज भी करोड़ों की भीड़ तक पहुँच सकती है। रिकार्ड के रूप में कोई भी स्वर सैकड़ों वर्ष सुरक्षित रखा जा सकता है।

प्रकृति में अनन्त शक्तियों का भण्डार छिपा पड़ा था। विज्ञान ने उनकी खोज करके उन्हें मानव-हित में लगाने का सराहनीय कार्य किया है। कौन जानता था कि भूमि में छिपा हुआ कोयला रेल के एन्जिन और बड़े-बड़े कारखाने चला सकता है? किसे ज्ञात था कि भयानक झरने अनेक नगरों को विजली के प्रकाश से जगमगा सकते हैं? मिट्टी में छिपे तेल द्वारा मोटर, ट्रैक्टर वायुयान एवं अन्य मशीनें चलने का रहस्य किसे मालूम था? आज तो ऐसे आविष्कार भी हो गये हैं जिनकी सहायता से इच्छानुसार किसी भी समय कहीं भी वर्षा की जा सकती है अथवा घिरे हुए हानिकारक बादलों को छिन्न-भिन्न किया जा सकता है।

जहाँ मनुष्य ने विज्ञान की खोज में अपनी बुद्धि का सदुपयोग किया है, वहाँ वैज्ञानिक शक्तियों के हानिकारक प्रयोग भी उसी ने सोचे हैं। भाँति-भाँति की संहारक तोपें, मशीनगनें, बन्दूकें और परमाणु बम संसार को नष्ट करने की शक्ति रखते हैं। जिस वायुयान से यात्री एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाये जा सकते हैं, उससे शत्रु के देश पर बम-वर्षा भी की जा सकती है। विज्ञान के घातक प्रयोगों की सम्भावना मात्र से लोग काँप रहे हैं। नागासाकी और हिरोशिमा में विज्ञान की संहार-शक्ति देखी जा चुकी है। यदि वैज्ञानिकों को सद्बुद्धि नहीं आई और उन्होंने विज्ञान की अनन्त शक्तियों का उपयोग मानव-कल्याण के लिये नहीं किया तो विज्ञान मनुष्य के लिये सबसे बड़ा अभिशाप सिद्ध होगा।

४. चलचित्र (सिनेमा)

रूपरेखा—

१. **सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक मनोरंजन।**
२. **सिनेमा का साधारण परिचय।**
३. **शिक्षा एवं प्रचार का साधन।**
४. **हानियाँ तथा सुधार।**
५. **सिनेमा का भविष्य।**

आजकल विज्ञान ने मनुष्य का जीवन बड़ा व्यस्त बना दिया है। वह तेली के बैल की भाँति हर समय काम में ही जुता रहता है। इसके साथ-साथ विज्ञान ने अनेक सुलभ, सस्ते और सरस मनोरंजन भी प्रस्तुत किये हैं, जिनके द्वारा मनुष्य थोड़े ही समय में मन की उदासी और थकान दूर करके स्फूर्ति का अनुभव कर सकता है। सिनेमा इस प्रकार के वैज्ञानिक मनोरंजनों में सर्वश्रेष्ठ है।

पुराने ढङ्ग के जितने भी मनोरंजन हैं, उनमें समय और पैसा अधिक व्यय होता है। नाटक को प्राचीन काल का सभ्य मनोरंजन माना जाता है। पर उसमें देखने वालों को रात भर जागना पड़ता है। कुछ ऐसे दृश्य भी हैं, जिन्हें नाटक के मंच पर नहीं दिखाया जा सकता; जैसे, युद्ध, आग लगना, भूकम्प।

इसके अतिरिक्त जब-जब देखने वाले को उनके बनावटी होने का भान होता है, तभी उसका आनन्द आधा रह जाता है। सिनेमा में इस प्रकार की कोई भी असुविधा नहीं है। वहाँ केवल चित्रों का ही प्रदर्शन होता है, इसलिये कोई भी दृश्य दिखाया जा सकता है। समय भी ढाई-तीन घण्टे ही लगता है। भवन में अन्दर बैठकर जाड़े, गर्मी और वर्षा में भी निश्चिन्त रहा जा सकता है। मध्यान्तर से पहले दर्शक बहुत कम जान पाता है कि वह वास्तविक घटना नहीं देख रहा था। सिनेमा का घटना-क्रम इतनी जल्दी चलता है कि किसी अन्य बात पर विचार करने का अवकाश ही नहीं रहता। अपनी इन्हीं सब विशेषताओं के कारण सिनेमा धनी-निर्धन, मूर्ख-विद्वान्, बाल-वृद्ध सब का प्रिय बना हुआ है। छोटे से छोटे नगर में एक-दो सिनेमा-घर अवश्य होते हैं।

सिनेमा का आविष्कार अमेरिका में सन् १८६० में हुआ था। इसका आविष्कार करने वाला एडीसन था। प्रारम्भ में सिनेमा-घरों में मूक चित्र दिखाये जाते थे। अब उन्हें वाणी भी प्रदान कर दी गई है और पर्दे पर पात्रों के चलने-फिरने और बोलने के कारण वे वास्तविक से दिखाई देते हैं। सिनेमा का सारा श्रेय फोटोग्राफी को है। अभिनय करते हुए अभिनेताओं के चित्रों की रील बना ली जाती है तथा उनके शब्दों और गीतों के रिकार्ड बना लिये जाते हैं। सिनेमा-हाल में दर्शकों के सामने दीवार के सहारे एक सफेद कपड़ा टंगा रहता है। पीछे की ओर से ऊँचाई से मशीन द्वारा इसी कपड़े पर रील का प्रतिबिम्ब फेंका जाता है। सिनेमा की मशीन बिजली के सहारे चलती है और रील के छोटे-छोटे चित्रों को पर्दे पर बड़ा करके दिखाती है। पर्दे के पीछे लाउडस्पीकर लगा रहता है, जिससे निकला हुआ शब्द चित्र के साथ-साथ ही चलता है, जिससे यही प्रतीत होता है कि चित्रगत पात्र उसी समय बोल रहे हैं।

सिनेमा के प्रचार से जनता को बहुत से लाभ हैं। सरल, सस्ता और सुलभ मनोरंजन होने के साथ-साथ यह जनता में शिक्षा भी फैला सकता है। सामाजिक समस्याओं पर चित्र बनाकर जनता में सुधार की भावना फैलाई जा सकती है। सौ व्याख्यानों और उपदेशों का वह प्रभाव नहीं होगा जो

एक बार के सिनेमा देखने का हो सकता है। सिनेमा में कोई भी कथानक प्रत्यक्ष दिखाये जाने के कारण सब की समझ में आ जाता है। धार्मिक एवं पौराणिक चित्रों के द्वारा जनता में धर्म की भावना भी जगाई जा सकती है। ऐतिहासिक चित्र जनता को प्राचीन घटनाओं से जानकारी करा देते हैं। विदेशों में तो सिनेमा के द्वारा विद्यार्थियों को पाठ्य-विषय सिखाए जाते हैं। इतिहास, भूगोल, विज्ञान आदि की शिक्षा जिस सफलता से चलचित्र द्वारा दी जा सकती है, वह पुस्तकों या अध्यापकों द्वारा नहीं। ऐतिहासिक घटनाओं को अपने सामने देखकर, भूगोल सम्बन्धी स्थानों का प्रत्यक्ष दर्शन करके और विज्ञान के प्रयोगों का ऐसा साक्षात ज्ञान पाकर भला कौन भूल सकता है? जिन नटखट बालकों का मन पढ़ाई में नहीं लगता, इस प्रकार उन्हें भी सरलतापूर्वक पढ़ाया-लिखाया जा सकता है।

सिनेमा प्रचार का भी एक सफल एवं प्रभावशाली साधन है। लोग अपनी नई-नई वस्तुओं, पुस्तकों आदि का सिनेमा के द्वारा विज्ञापन करते हैं। इस प्रकार एक बात एक ही समय में हजारों लोगों तक पहुँच जाती है। सरकार ने भी कुछ ऐसी प्रचार सम्बन्धी फिल्में बनवाई हैं, जिनका प्रदर्शन प्रत्येक सिनेमा घर में आवश्यक है। इन सरकारी रीलों में देश-विदेश के समाचार, प्राचीन स्थानों की जानकारी, सरकार द्वारा की गई प्रगति और नेताओं सम्बन्धी जानकारी रहती है। सफाई रखने, खेती में सुधार करने जैसे विषयों की रीलें भी देहात के लोगों को दिखाई जाती हैं। आज हम चाय का जो इतना प्रचार देख रहे हैं, इसमें भी सिनेमा का बहुत कुछ हाथ है। चाय कम्पनी वालों की मोटरें मेलों और गाँवों में मुफ्त प्रचार-फिल्म दिखाती फिरती थीं। लड़ाई के समय में गाँवों में ऐसी फिल्में भी दिखाई गई थीं, जिससे लोगों में सैनिक-जीवन के प्रति उत्साह बढ़े।

जिस प्रकार सागर से अमृत के साथ घातक विष भी निकला था, उसी प्रकार सिनेमा से भी बहुत सी हानियाँ हैं। अधिक सिनेमा देखने से बिजली की तेज रोशनी के कारण आँखें खराब हो जाती हैं। बच्चों को जब सिनेमा देखने की लत पड़ जाती है तो वे इसके लिये चोरी और झूँठ जैसे कुकर्मों का सहारा भी लेने लगते हैं। सिनेमा के अधिकांश निर्माता पूँजीपति हैं। उनका उद्देश्य

सभी प्रकार से पैसा कमाना होता है, इसलिये वे ऐसी भड़कीली और वासना को उभाड़ने वाली फिल्मों का निर्माण करते हैं, जिनसे जन-साधारण के चरित्र पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अबोध और किशोरावस्था के लड़के-लड़कियाँ जैसी प्रेम-लीलाएँ सिनेमा में देख आते हैं, उन्हें अपने जीवन में प्रत्यक्ष करने की कोशिश करते हैं। आज सिनेमा एक प्रकार से फैशन के प्रचार का दूत बना हुआ है। सिनेमा के पात्रों का जीवन इतना आकर्षक दिखाई देता है कि लाखों नवयुवक-नवयुवतियाँ सिनेमा में जाने की धुन में ही मस्त रहते हैं। आये दिन समाचार-पत्रों में घर से रुपया लेकर बम्बई, कलकत्ता भागने वाले युवक-युवतियों के समाचार प्रकाशित होते रहते हैं, जो या तो असफल होकर आत्महत्या कर लेते हैं अथवा अपना सब कुछ लुटाकर वापिस लौट आते हैं।

सिनेमा को मानव-कल्याण का साधन बनाने के लिये कुछ सुधारों की नितान्त आवश्यकता है। सिनेमा के निर्माण में जब तक लालच को त्यागकर जनता के लाभ का ध्यान नहीं रखा जायगा, तब तक इसमें कोई सुधार होने की आशा नहीं है। ऐसा तभी हो सकता है, जब इस व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण कर दिया जावे। हमारी सरकार ने फिल्मों की अश्लील और हानिकर बातों को रोकने के लिये एक सेन्सर बोर्ड बना रखा है, किन्तु वह ठीक प्रकार काम नहीं कर रहा है। कुछ निर्माता पैसा न होने के कारण मनचाही फिल्में नही बना पाते। एक ही फिल्म से प्रत्येक अवस्था और योग्यता वाले लोगों का मनोरंजन नहीं हो पाता। सब लोगों के लिये अलग-अलग फिल्मों का निर्माण होना चाहिये।

यदि सिनेमा का ढङ्ग आज का जैसा ही रहा तो इसके द्वारा मानव-कल्याण की अपेक्षा उसके पतन की ही अधिक सम्भावना है। यदि सिनेमा के व्यवसायी स्वयं नहीं चेत जाते तो एक दिन जनता ही आन्दोलन करके उन्हें अधिक अच्छी फिल्में बनाने के लिए विवश कर देगी। आज की जनता में इस प्रकार के जागरण के चिन्ह दिखाई देने लगे हैं कि उसे अधिक समय तक मूर्ख नहीं बनाया जा सकता। जो लोग यह कहते हैं कि जनता अश्लीलता और प्रेम-लीलाओं से रहित चित्रों का स्वागत नहीं कर सकती, उन्हें 'जागृति और 'झनक झनक पायल बाजे' जैसे चित्र देखने चाहिये। कई निर्माताओं ने

नये-नये प्रकार की फिल्में बनाकर अनेक सफल प्रयोग किये हैं। यदि सिनेमा के निर्माताओं ने जनता के हित और उनकी इच्छाओं का ध्यान रखा तो सिनेमा का भविष्य उज्ज्वल बन सकता है। फिर यह वास्तव में मानव के लिये वरदान बन जावेगा।

५. श्रमदान

रूपरेखा—

१. श्रम का महत्व।
२. श्रमदान की परिभाषा।
३. श्रमदान की प्रगति।
४. विविध मनोवृत्तियाँ।
५. अनिवार्यता।

प्रत्येक मनुष्य को संसार में हर छोटे-बड़े कार्य के लिए कुछ न कुछ श्रम करना ही पड़ता है। आज के संघर्षमय वैज्ञानिक युग में ही नहीं वरन् जब से मानव-सृष्टि का प्रारम्भ हुआ है तभी से उसने श्रम करना सीखा है किन्तु सब मनुष्य एक-सा श्रम नहीं करते। कोई केवल अपने लिए ही श्रम करता है, कोई दूसरे के लिए भी करता है, कोई अपने कार्यों का बहुत कुछ भार भी दूसरों पर डाल देता है। कुछ लोग कम से कम परिश्रम करके अधिक से अधिक धनोपार्जन कर सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं जबकि दूसरे अधिक से अधिक परिश्रम करके भी भर पेट खाना नहीं खा पाते हैं। इसका एकमात्र कारण यही है कि समाज का एक वर्ग निठल्ला बैठा रहता है जिससे उसका कार्य-भार भी दूसरे पर आ जाता है।

हमने आज तक समाज के कार्यों का विभाजन इस प्रकार कर रखा था कि उच्च वर्ग का कहा जाने वाला व्यक्ति निम्न वर्ग के कामों को करने में अपनी हेयता समझता है। अतः इस विभाजन ने दृष्टिकोण को भी वैसा ही बना दिया था। मनुष्य का मूल्य उसके मनुष्योचित गुणों से नहीं वरन् उसके पेशे से आँका जाता था। अब देश की स्वाधीनता तथा जागृति ने इस दृष्टिकोण में कुछ परिवर्तन किया है जिसका श्रेय आचार्य विनोबा भावे को है।

आचार्य विनोबा भावे ने अपने भू-दान आन्दोलन के सिलसिले में 'श्रमदान' का प्रचार किया था। उनके सामने यह प्रश्न आया कि जिनके पास न धन है और न भूमि, वे किस वस्तु का दान करें ? सन्त विनोबा ने ऐसे ही अकिंचनों के लिए श्रमदान प्रणाली का आदेश दिया था, पर आज इसका रूप बदल गया है। धनिक और भूमि के स्वामी भी श्रमदान करते हैं। श्रमदान शब्द का अर्थ है निजी शारीरिक शक्ति को निःस्वार्थ भाव से दूसरों के लिये लगाना। श्रम और दान दोनों शब्दों से भारतीय जनता बहुत पहिले से परिचित है। श्रम के बिना तो कभी किसी का काम ही नहीं चला और दान की महिमा से तो हमारे धार्मिक ग्रन्थ भरे पड़े हैं। अन्न, वस्त्र, भूमि, जल, विद्या आदि दानों के बड़े-बड़े फल बताये गये हैं। गीता में तो औरों को दान किये बिना सम्पत्ति का उपभोग करने वाला व्यक्ति चोर बताया गया है।

आज श्रमदान व्यक्तिगत दान की वस्तु न रहकर सामूहिक कार्य बन गया है। शिक्षित-अशिक्षित, ग्रामीण-नागरिक सभी श्रमदान के द्वारा देश के निर्माण-कार्यों में योग दे रहे हैं। अब तो श्रमदान से पंचवर्षीय योजना की सफलता में भी आशा की जा रही है। ग्रामोन्नति का तो इसे आधार ही मान लिया गया है। जब लोगों ने जनता को इच्छापूर्वक श्रमदान करके सरलता से बड़े-बड़े कार्य पूरा करते देखा तो इसके प्रति उनकी श्रद्धा बढ़ गई। गाँवों की सफाई, साधारण नहरें खोदना और छोटे-मोटे पुल बनाना तो श्रमदान के लिए साधारण बात हो गई है। इस प्रकार श्रमदान की कल्याणमयी योजना का प्रचार जनता में स्वयं ही हो गया है।

सन् १९५३ के जनवरी मास में श्रमदान सप्ताह का आयोजन किया गया था, जिसमें सरकार ने राज्य के अधिकारियों और कर्मचारियों के लिए एक घंटा प्रतिदिन श्रमदान करना आवश्यक कर दिया था। इस सप्ताह की सफलता देखकर इसे प्रति वर्ष मनाया जाता है। श्रमदान का प्रचार करने की दृष्टि से यह सप्ताह विद्यालयों में भी चालू किया गया और बाद में इसे छात्रों के पाठ्यक्रम में मिला दिया गया। आचार्य विनोबा एवं उनके कार्यकर्ता भू-दान माँगने जहाँ-जहाँ गये, वहीं उन्होंने श्रमदान का पवित्र सन्देश पहुँचाया और ग्रामीण जनता को इसकी उपयोगिता बताई। फलस्वरूप पंचायतों ने गाँव-गाँव

में श्रमदान का आयोजन करके छोटे-छोटे ऐसे आवश्यक कार्य किये, जिनके बिना जनता बहुत दुःखी थी और उनके लिए सरकार का ही मुँह जोह रही थी। श्रमदान के द्वारा अपना उपकार होता देखकर ग्रामीण जनता ने जिस उत्साह से इसे अपनाया, उसे देखकर कार्यकर्ताओं का साहस और भी बढ़ गया। श्रमदान ऐसी तपस्या है, जिसका मीठा फल तुरन्त मिल जाता है। श्रमदान की इस विशेषता पर यदि ग्रामीण जनता मुग्ध हो उठी तो इसमें अचम्भा ही क्या है?

जनता के हित का ध्यान रखना सरकार का कर्तव्य है और स्वतन्त्र देश में तो सरकार का यह कर्तव्य और अधिक बढ़ जाता है। हमारी सरकार भी जनता को सुखी और समृद्ध बनाने में कुछ कोरकसर नहीं रख रही, किन्तु उसके पास इतना धन नहीं है जो एक साथ जनता के कल्याण के सभी काम पूरे कर सके। हमारे देश की स्वतन्त्रता बहुत पुरानी नहीं है। विदेशियों ने इसका वैभव लूटकर इसे जिस अकिंचन और असहाय अवस्था में छोड़ा था, यह किसी से छिपा नहीं है। इधर स्वतन्त्र शासन को बढ़ी हुई कीमतों का भी सामना करना पड़ा है। देश में धन-शक्ति से भी बड़ी एक और शक्ति होती है, जन-शक्ति। जन-शक्ति के आधार पर ही संसार में बड़े-बड़े परिवर्तन हुए हैं। जो कार्य अनन्त धन-राशि व्यय करके भी नहीं किया जा सकता, वह जन-शक्ति की सहानुभूति मात्र से पूरा हो सकता है। इसी शक्ति का अनुभव करके आचार्य विनोबा भावे ने श्रमदान का आन्दोलन किया और देश के नेताओं ने पूरा सहयोग देकर इसका प्रचार किया।

फल, आशा और कल्पना के अनुरूप ही हुआ। जहाँ किसी देशभक्त ने कार्य प्रारम्भ किया, वहाँ जनता के सहस्रों हाथ लग पड़े और बात की बात में काम समाप्त कर डाला। इस प्रकार जनता के कल्याण और सुख के कार्य ही नहीं हो रहे, अपितु बहुत सी सरकारी पूँजी भी बच रही है, जिसका व्यय अन्य आवश्यक कार्यों में किया जा रहा है। नगरों की गन्दी नालियाँ और गन्दे मुहल्ले श्रमदान की सहायता से बिल्कुल बदल गये हैं। जो प्रदेश प्रति वर्ष बाढ़ के कारण जल में डूबकर तबाह हो जाते थे, उनमें मीलों लम्बे बाँध गिनती के दिनों में बना दिये गये। जिन पहाड़ी अथवा देहाती प्रदेशों में यातायात के

लिए पक्की सड़कें नहीं थीं, वहाँ पचासों मील लम्बी सड़कों का निर्माण हुआ है। चट्टानों को समतल बनाया गया है, गड्ढे और खार भरे गये हैं, बंजर भूमि उपजाऊ बना दी गई है। इस प्रकार जनता ने अपनी इच्छा से करोड़ों रुपये का कार्य किया है।

श्रमदान के प्रति आज भी लोगों में भिन्न-भिन्न प्रकार के दृष्टिकोण हैं। कुछ लोग इसे ग्रामोन्नति और राष्ट्र-निर्माण का अचूक अस्त्र ही नहीं मानव की सर्वाङ्गीण उन्नति का साधन भी समझते हैं। श्रमदान के द्वारा धनिकों, शिक्षितों और अधिकारियों में श्रम के प्रति हीन भावना ही दूर नहीं होती है, अपितु मानसिक शुद्धि भी होती है। श्रमदान से मनुष्य में त्याग, तपस्या, उदारता और परोपकार की भावनाओं का जन्म होता है। इनके साथ-साथ कुछ लोग ऐसे भी हैं जो आरम्भ से ही इसे नेताओं की सनक समझते आये हैं और आज इसकी पूर्ण सफलता देखकर भी इसे सनक समझ रहे हैं। उनके विचार से यह सरकारी अधिकारियों और पढ़े-लिखे सभ्य पुरुषों का काम नहीं है, इसके लिए मजदूर ही क्या कम हैं? कुछ लोग इसे फैशन और दिखावे की वस्तु समझते हैं और श्रमदान के प्रति हृदय में तनिक भी श्रद्धा न रखते हुए फावड़ा हाथ में लेकर फोटो खिंचवाने में गौरव समझते हैं। ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है जो श्रमदान को मनोरंजन, पदोन्नति और जनप्रिय होकर चुनाव जीतने का साधन समझते हैं। ऐसे लोग कार्य आरम्भ तो कर देते हैं, पर यह नहीं देखते कि वह पूरा भी हुआ है या नहीं। इस प्रकार के लोगों द्वारा प्रारम्भ किए गए अधूरे पड़े कार्य उनके प्रति जनता में घृणा और अपमान की भावना भरते हैं। इतना होने पर भी अधिक संख्या उन्हीं लोगों की है जो श्रमदान की वास्तविकता समझते हैं और उसे जन-कल्याण का अचूक साधन मानते हैं।

कोई भी व्यक्ति वास्तविकता से सदा के लिये मुख नहीं मोड़ सकता। श्रमदान की लहर जिस तीव्रता और सफलता से गाँवों और नगरों में फैल रही है, उससे यह आशा ही नहीं, दृढ़ विश्वास भी होता है, कि प्रत्येक व्यक्ति को इसका अनुभवी और प्रशंसक बनना ही पड़ेगा। विचारकों का कथन है कि वह समय शीघ्र ही आने वाला है, जब प्रत्येक व्यक्ति को अपना काम स्वयं ही

करना पड़ेगा और अपनी समस्याएँ स्वयं ही हल करनी पड़ेंगी। श्रमदान उसी की भूमिका बाँध रहा है और प्रत्येक व्यक्ति को उसके लिए तैयार कर रहा है। जब श्रमदान सभी के लिये अनिवार्य हो जावेगा अथवा लोग स्वेच्छा से इसे आवश्यक समझ लेंगे तो जनता अपनी समस्याओं के लिये सरकार का आसरा करना छोड़ देगी।

६. भूदान

रूपरेखा---

१. **भूमि का विषम बँटवारा।**
२. **विनोबा और भूदान-यज्ञ।**
३. **सब का सहयोग।**
४. **भू-दान की प्रगति।**
५. **भू-दान में निहित विभिन्न उद्देश्य।**

"ईश्वर नें मानव को उत्पन्न करने से बहुत पहले भूमि बना दी थी। इतना ही नहीं मानव का निर्माण तब हुआ जब भूमि उसके रहने योग्य बन गई तथा उसके उपभोग की सभी वस्तुएँ पृथ्वी पर उत्पन्न हो गईं।" ऐसा हमारे शास्त्रकारों का मत है। इसमें पूरी बात सत्य हो या नहीं, किन्तु इसमें कोई मतभेद नहीं कि मानव की लगभग सभी आवश्यकताएँ भूमि ही पूरी करती है। सूर्य, चन्द्रमा, मेघ और वायु के समान भूमि भी प्राकृतिक रचना है, इसका निर्माण भी सभी मनुष्यों के प्रयोग के लिये हुआ है। किन्तु आज स्वार्थी मानव ने अपने आपको साम्राज्यवाद की भूलभुलैयों में भटकाकर अनेक झमेले खड़े कर लिये हैं। सारी मानव-जाति से छीनकर मुठ्ठी भर लोगों ने भूमि पर अधिकार कर लिया है। कोई इतनी भूमि का स्वामी है कि जीवन में उसका एक भी चक्कर पैदल नहीं कर सकता और किसी के पास रहने के लिए भी चार हाथ ठौर नहीं है। भूमि के इस बँटवारे में एक विचित्र विषमता यह भी है कि जिन्हें भूमि की आवश्यकता है, जो श्रम का पसीना बहाकर उससे सोना उत्पन्न कर सकते हैं, वे भूमिहीन हैं; और जो महलों से कभी बाहर नहीं निकलते, जिन्होंने कभी हल या फावड़ा नहीं छुआ, वे भूमि के मालिक हैं। इसके

गड़बड़ यह होती है कि बेचारे भूमिहीन दरिद्रों को पेट की आग से विवश होकर भूमिपतियों के यहाँ सस्ती मजदूरी पर काम करना पड़ता है, जिससे भूमिहीन जीवन भर पिसता रहता है और भू-स्वामी पराये श्रम से जीवन-भर मस्ती करता है। दूसरी आर्थिक हानि यह भी होती है कि स्वयं देख-भाल न करने के कारण मजदूरों की खेती में जो पैदावार होती है, उसी खेत में हाथ से काम करने वाला किसान उससे पाँच गुनी फसल सरलता से उगा सकता है। स्वतन्त्र भारत में जमींदारी प्रथा मिटाकर तथा अन्य आवश्यक कानून बनाकर इस ओर बहुत कुछ किया गया है, पर समस्या बहुत कम सुलझ पाई है।

तुलसीदास जी के शब्दों में मक्खन और सन्त में इतना ही अन्तर है कि मक्खन अपने ताप (गर्मी) से द्रवित (पिघलता) होता है और सन्त दूसरे के ताप (दुःख) से द्रवित होता (दयालु हो जाता) है। इस भूमि सम्बन्धी विषमता को देखकर गांधीवादी जीवन-दर्शन को व्यावहारिक रूप देने वाले सन्त विनोबा भावे का हृदय दया से भर गया। उन्होंने भूमि के इस बँटवारे पर विचार किया और भूमिहीनों के लिए भूमि माँगने के हित जीवन अर्पण कर दिया। सन्त विनोबा ने इस भूदान-यज्ञ को प्रारम्भ करने से पहले दरिद्रों और भूमिहीनों के साथ ही धनिकों और भूमिपतियों के हित पर भी पूरा विचार कर लिया है। उन्हें यह स्पष्ट झलक गया कि भूमि और धन की यह असमानता दरिद्र गरीबों के हृदय में विद्रोह की ऐसी ज्वाला भड़कावेगी, जिसे न धर्म के ठेकेदारों का ईश्वर रोक सकेगा, न सैनिकों की संगीनें बुझा सकेंगी और न राजनीतिज्ञों का मस्तिष्क शान्त कर सकेगा। इससे बुद्धिमता इसी में है कि सब जाता देखकर थोड़ा दान करके शेष बचा लो। आचार्य विनोबा ने अप्रेल सन् १९५१ में भूमिहीनों के लिए पाँच करोड़ एकड़ भूमि दान में लेने का संकल्प किया। वे अपना यह संकल्प अप्रेल सन् १९५८ में पूरा कर चुके हैं।

सन्त विनोबा को अपने इस पवित्र यज्ञ में सभी लोगों का सहयोग मिला है। कुछ ऐसे लोगों ने भी भूमि-दान किया है, जिनके पास केवल एक एकड़ भूमि ही थी। बहुत से ऐसे कठोर स्वभाव वाले जमींदारों से भी दान में भूमि मिली जिनसे एक पाई मिलने की आशा नहीं थी। इस पुनीत यज्ञ को पूरा करने के लिए अगणित लोगों ने जीवन-दान दिया है। उनके सहयोगियों में

कांग्रेस, प्रजासमाजवादी तथा अन्य सामाजिक कार्यकर्त्ता भी हैं। प्रसिद्ध समाजवादी नेता अशोक मेहता और जयप्रकाश नारायण भी जीवन-दान देने वालों में हैं। इसके लिये प्रत्येक जिले में भूदान-समितियों का संगठन हुआ है और विनोबा जी के समान ही अगणित कार्यकर्ता भूमि-दान माँगते घूम रहे हैं। इसमें धनिकों ने भी सहयोग दिया है। उनके धन से भूदान-यज्ञ में काम करने वाले स्वयंसेवकों का गुजारा चलता है।

आचार्य विनोबा ने सबसे पहले तेलंगाना प्रदेश के नलगौड़ा जिले के लिए पैदल यात्रा की और एक गाँव के भूमिहीन किसानों के लिए अस्सी एकड़ भूमि माँगी। लोगों को उनकी यह याचना विचित्र सी लगी, भला भूमि जैसी स्थायी और अमूल्य सम्पत्ति कौन दान कर देगा? इतने में ही एक जमींदार ने आकर सौ एकड़ भूमि सादर भेंट की। इस घटना से विनोबा को यह विश्वास हो गया कि आज भी दान करने वालों की कमी नहीं है। तब से वे प्रत्येक प्रान्त के गाँवों में पैदल घूमकर भूमि-दान का प्रचार कर रहे हैं। भूमि-दान के साथ ही साथ उन्होंने श्रम-दान, गृह-दान, सम्पत्ति-दान और जीवन-दान की भी परम्परा चलाई है। सन्त विनोबा ने भूमि के स्वामियों से कहा है कि मुझे भी तुम अपनी छठी सन्तान समझ लो और इस प्रकार सम्पूर्ण भारत की तीस करोड़ एकड़ कृषि-योग्य भूमि में से मेरे हिस्से की पाँच करोड़ एकड़ मुझे दे दो। इस प्रकार प्राप्त की गई पाँच करोड़ एकड़ भूमि से भूमिहीनों को सहारा मिल जावेगा। विनोबा का दान माँगने का यह ढङ्ग कितना नवीन और प्रभावशाली है कि इसमें योग देना लोगों ने अपना कर्तव्य समझ लिया है। विनोबा का सन्देश अपने आप गाँव-गाँव में पहुँच रहा है और लोग उसे सुनने को विवश हो गए हैं। एक लंगोटीधारी ने अपनी आत्म-शक्ति और लगन से देश ही नहीं विदेशों के लोगों को भी इस पर विचार करने के लिये मजबूर कर दिया है। सुना है इंगलैंड के लोगों ने भी उनके आन्दोलन की सहायतार्थ धन एकत्र करके भेजा था। उनका यह संकल्प कि प्रत्येक परिवार के पास कम से कम दस एकड़ भूमि अवश्य हो जावे, पूर्ण होता प्रतीत होता है।

विनोबा ने इस आन्दोलन में कुछ व्यावहारिक त्रुटियाँ भी हैं। कुछ यश और कीर्त्ति के लोलुपों ने ऐसी भूमि दान में दी है जिसमें कभी कुछ उत्पन्न नहीं

हुआ और न होने की कल्पना की जाती है। बहुत से ऐसे लोग भी उनके साथ जीवन-दान करके लग गये हैं, जिनके गुजारे का कोई साधन नहीं था और इस प्रकार वे सम्मान पाने के साथ-साथ पेट की चिन्ताओं से मुक्ति पा गए हैं। यह सब होते हुए भी इसमें विनोबा की जो लगन और कल्याण-कामना है, उससे इंकार नहीं किया जा सकता।

भूमिहीनों को भूमि दिलाने के अतिरिक्त विनोबा के इस आन्दोलन का आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक पहलू भी है। भूमि पाकर दरिद्र सन्तोष का अनुभव करेंगे और उनके सर्वहारी विद्रोह की सम्भावना नष्ट हो जावेगी। भूमि-दान के लिए घूमने वाले कार्यकर्त्ता जन-जीवन को समीप से देखेंगे। जो लोग दान में भूमि देंगे, उनका हृदय बदल जावेगा और स्वार्थ के स्थान पर उनमें परोपकार की भावना उत्पन्न होगी। इस प्रकार इस दुबले, पतले, रोगी सन्त का चलाया यह यज्ञ जनता के हित का सन्देश लेकर आया है।

७. मतदान (चुनाव)

रूपरेखा—

१. **प्रजातन्त्र की व्यवस्था और मतदान।**
२. **मत-पत्र का महत्व।**
३. **निर्वाचन की विधि।**
४. **प्रचार से मत-पत्र का दुरुपयोग।**
५. **जनता का कर्तव्य।**

मतदान प्रजातन्त्र का आधार है। मत प्रजा की सबसे बड़ी शक्ति है। प्रजा अपने मत के द्वारा जिसे चाहती है, अपना प्रतिनिधि चुनती है। पैत्रिक सम्पत्ति के रूप में चलने वाली राज्यतन्त्र व्यवस्था में शासक का पुत्र या निकटतम सम्बन्धी ही शासन संभालता था। कुछ धार्मिक प्रवृत्ति के राजाओं को छोड़कर शेष सभी विषयी, स्वार्थी और ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले होते थे। उन्हें इस बात की चिन्ता नहीं रहती थी कि अपने में अमुक गुणों का समावेश न करने पर हमें राज्य नहीं मिलेगा। वे लोग राज्य को उत्तराधिकार के रूप में पाने के कारण निश्चिन्त रहते थे। वे जनता के सुख-

दुःखों से बेखबर होकर अपने महलों में हजारों औरतों के साथ आनन्द करते थे। प्रजातन्त्र व्यवस्था में प्रत्येक प्रतिनिधि एक निश्चित समय के लिए चुना जाता है। यदि उस समय में वह जनता की सेवा नहीं करता, अपने व्यक्तिगत स्वार्थ में लगा रहता है तो विश्वासघाती होने के कारण जनता अगले चुनाव में उसे अपना मत नहीं देती। इस प्रकार एक निश्चित समय के बाद फिर चुनाव होने के कारण प्रत्येक प्रतिनिधि इस बात का यथाशक्ति प्रयत्न करता है कि वह जनता का विश्वासपात्र बना रहे और एक नेता के रूप में उसकी प्रतिष्ठा को धक्का न लगे। मतदान के द्वारा एक प्रकार से प्रजा ही शासन करती है। उसके मतपत्र-रूपी छोटे से कागज में ऐसा जादू होता है कि जिसे चाहे शासन की कुर्सी पर बैठा दे और जिसे चाहे जमानत जब्त कराकर कहीं मुँह दिखाने का भी न रहने दे।

मतपत्र के महत्व को सभी स्वीकार करते हैं। इसी के द्वारा प्रजातन्त्र और राजतन्त्र में भेद किया जा सकता है। मतपत्र साधारण से साधारण व्यक्ति को भी बादशाह बना देता है। जो लोग कभी किसी से कुछ भी नहीं माँगते, कोठियों में रहते और कारों में चलते हैं, वे भी झोंपड़ियों में जाकर वोट माँगते हुए नहीं शरमाते। वोट प्राप्त करने के लिए चुनाव में उम्मीदवार के रूप में खड़े होने वाले बड़े-बड़े नेता तरह-तरह के आश्वासन देते हैं और लम्बे-चौड़े वायदे करते हैं। वोट माँगते समय बड़े-बड़े लोग देहात की धूल फाँकते फिरते हैं। मतपत्र ने विद्वान-मूर्ख, पहलवान-कमजोर, धनी-निर्धन सब को समान शक्ति प्रदान कर रखी है। मतपत्र के रूप में सभी के अधिकार समान होते हैं, किसी के मतपत्र में कोई विशेषता नहीं रहती।

मतदान अर्थात् चुनाव की तिथियाँ निश्चित हो जाती हैं। उसी निश्चित समय में सारे देश में चुनाव हो जाता है। जो लोग उम्मीदवार के रूप में राज्य-सभा या लोकसभा के लिए खड़े होना चाहते हैं, वे एक निश्चित तिथि तक अपना प्रार्थना-पत्र चुनाव-अधिकारी के पास पहुँचा देते हैं। प्रत्येक उम्मीदवार को जमानत के रूप में एक निश्चित धन-राशि सरकारी खजाने में जमा करनी पड़ती है। यदि किसी उम्मीदवार को कुछ नियत संख्या में या उससे अधिक वोट मिलते हैं तब तो उसकी जमानत लौटा दी जाती है अन्यथा जब्त

कर ली जाती है । उम्मीदवारों के नाम वापस लेने की भी एक तिथि निश्चित
होती है । कुछ उम्मीदवारों को भिन्न-भिन्न पार्टियाँ खड़ी करती हैं और कुछ
स्वतन्त्र रूप से खड़े होते हैं । पार्टियाँ प्रायः एक क्षेत्र से एक स्थान के लिये
एक ही उम्मीदवार खड़ा करती हैं ।

जो व्यक्ति मत दे सकता है, वह उम्मीदवार के रूप में खड़ा भी हो सकता
है । चुनाव के पहले सभी मतदाताओं की सूची प्रकाशित हो जाती है । जिनका
नाम उस सूची में नहीं होता, वे मतदान नहीं कर सकते । जो लोग मत देने
के अधिकारी हों और उनका नाम सूची में न हो तो वे चुनाव-आफिस में
प्रार्थना-पत्र देकर अपना नाम मतदाता-सूची में लिखा सकते हैं । चुनाव से
पहले प्रत्येक व्यक्ति या पार्टी को अपना प्रचार करने का अधिकार है । प्रत्येक
पार्टी अथवा स्वतन्त्र उम्मीदवार अपना एक घोषणा-पत्र प्रकाशित करता है,
जिसमें उसके द्वारा किये जाने वाले सुधारों का आश्वासन होता है । लोग
रात-दिन एक कर देते हैं और चैन की नींद छोड़कर देहातों की खाक छानते
फिरते हैं । प्रचार के इन दिनों में सभी पार्टियों के बड़े-बड़े नेता अपने उम्मीद-
वारों का समर्थन करने आते हैं । वे लोग अपनी पार्टी के द्वारा की गई सेवाओं
के नाम पर पार्टी के लिये वोट माँगते हैं । यह प्रचार वोट पड़ने के एक दिन
पहले विल्कुल बन्द हो जाता है ।

कुछ गाँवों के लिये या नगर के मुहल्लों के लिये एक मतदान-स्थल
(पोलिंग स्टेशन) बना दिया जाता है । वहाँ पर सभी उम्मीदवारों के लिये
एक मतदान-पात्र (वैलट बॉक्स) रखा रहता है । प्रत्येक मत-पत्र पर सब
उम्मीदवारों के नाम और चुनाव-चिन्ह होते हैं । जिसे मत देना होता है,
उसके नाम के सामने खाली स्थान में × चिन्ह बनाकर उसे मतदान-पात्र में
डाल देते हैं । चुनाव-चिन्ह इसलिये होता है कि विना पढ़ा-लिखा भी पहचान
सके । पार्टियों वाले या स्वतन्त्र उम्मीदवार अपने-अपने समर्थकों (एजेण्ट) को
एक पर्चा दे देते हैं, जिसमें मतदाता का नाम, पता और मतदाता-सूची (वोटर
लिस्ट) का नम्बर लिखा रहता है । मत देने वाला व्यक्ति उस पर्ची को मत-
दान-स्थल के अन्दर जाकर एक बाबू को देता है । वह बाबू सूची में उसका
नाम आदि मिलाता है और ठीक होने पर आगे जाने देता है । दूसरा बाबू उसे

मत-पत्र (वोट) का कागज देता है। यहीं मतदाता की उँगली पर एक पक्का काला निशान लगा दिया जाता है, जिससे कोई व्यक्ति दो बार वोट न दे। पहला वोट राज्य-सभा का मिलता है। उसे डालकर लौटने पर लोक-सभा का वोट दिया जाता है। मतदान समाप्त होने पर मतदान-पात्र (बैलट बॉक्स) पुलिस के पहरे में चुनाव-कार्यालय में ले जाया जाता है। वहाँ एक-दो दिन बाद सभी उम्मीदवारों के एजेण्टों के सामने वोट गिने जाते हैं। जिसके वोट सबसे अधिक होते हैं, वही उस क्षेत्र से जीता हुआ माना जाता है।

यदि जनता चाहे तो मतपत्र का ठीक उपयोग करके योग्य प्रतिनिधि चुन सकती है, जो उसकी बात आगे के अधिकारियों तक पहुँचावे, किन्तु ऐसा बहुत कम हो पाता है। हमारे देश की जनता अधिकतर अशिक्षित है। वह चुनाव और मतपत्र का महत्व नहीं समझती। फिर चुनाव के दिनों में उम्मीदवारों के लिए इतने आकर्षक ढङ्ग से प्रचार किया जाता है, इतनी प्रशंसा के पुल बाँधे जाते हैं कि बेचारे मतदाता को योग्य प्रतिनिधि निश्चित करना कठिन हो जाता है। उस समय तो सभी नम्रता की मूर्ति और गुणों की खान मालूम पड़ते हैं। बहुत से लोग जाति और सम्प्रदाय के आधार पर वोट माँगते हैं और अपनी जाति या सम्प्रदाय की संख्या अधिक होने पर सफल भी हो जाते हैं। चुनाव में बहुत से ऐसे लोग भी उम्मीदवार के रूप में आते हैं जिनके बारे में पहले कुछ नहीं मालूम रहता। पार्टीबन्दी में भी यही दशा है। दूसरा उम्मीदवार चाहे कितना ही योग्य क्यों न हो, एक पार्टी वाले लोग अपनी पार्टी के उम्मीदवार को वोट देते हैं। इस प्रकार जाति, सम्प्रदाय और पार्टी के कारण मतदाता ठीक प्रतिनिधि का चुनाव नहीं कर पाता, जिससे वह प्रजातन्त्र का लाभ नहीं उठा पाता। वास्तव में मतदान व्यक्ति के गुणों के आधार पर होना चाहिए।

बहुत से लोग अपने मत का महत्व न समझकर चुनाव में मतदान करने नहीं जाते और यदि जाते हैं तो किसी उम्मीदवार पर अहसान करने की दृष्टि से या इस मुसीबत से छुटकारा पाने की दृष्टि से। वे कभी-कभी इतना उकता जाते हैं कि चाहते हैं किसी उम्मीदवार को वोट देना और दे आते हैं दूसरे को। बहुत से लोग सोचते हैं कि अब की बार इन्हें वोट देकर देख लें। यह

ठीक नहीं निकले तो अगली बार इन्हें वोट नहीं देंगे। यह बहुत बड़ी भूल है। यदि इसी प्रकार करते रहे तो सच्चे प्रतिनिधि का चुनाव कभी नहीं हो सकता। जनता को किसी के बहकावे में न आकर अपनी समझ से योग्य प्रतिनिधि को वोट देना चाहिये, नहीं तो मतदान से कोई लाभ न होगा।

८. देशाटन

रूपरेखा—

१. मानव में ज्ञान प्राप्त करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति।
२. देशाटन की परिभाषा और उद्देश्य।
३. देशाटन के लाभ।
४. वर्तमान युग में देशाटन की सुविधाएँ।
५. अनिवार्यता।

मनुष्य सत्-चित्-आनन्द स्वरूप ईश्वर का अंश है, अतः वह अधिक दिन जीना चाहता है, ज्ञान-प्राप्ति का प्रयत्न करता है और आनन्द खोजता है। प्रत्येक वस्तु, स्थान और व्यक्ति के विषय में जानकारी प्राप्त करने की स्वाभाविक इच्छा प्रत्येक में होती है। इस ज्ञान-प्राप्ति के अनेक साधन हैं। पुस्तकें पढ़कर, योग्य-अनुभवी पुरुषों से सुनकर या सिनेमा के पर्दे पर देखकर भी लोग जानकारी प्राप्त करते हैं। किन्तु अपनी ज्ञान-वृद्धि करने का सबसे अच्छा साधन देश-विदेश का भ्रमण करना है। यही कारण है कि आदिकाल से आज तक देशाटन मनुष्य को प्रिय रहा है। जितने भी विद्वान् और विचारक हुए हैं उन्होंने अपनी ज्ञान-पिपासा शान्त करने के लिए भ्रमण अवश्य किया है। आज तो ज्ञान-प्राप्ति के बहुत से सरल, सस्ते और सुलभ साधन निकल आए हैं, किन्तु प्राचीन काल में तो देशाटन ही एकमात्र साधन था। कालिदास और वाणभट्ट की रचनाओं में हम जो विभिन्न स्थानों का प्राकृतिक वर्णन और वहाँ के निवासियों का रहन-सहन पढ़ते हैं, वह सब पर्यटन की ही देन है। चीन से आने वाले फाहियान, ह्वेनसाँग और इत्सिंग आदि यात्रियों द्वारा भारत की सभ्यता विदेश में ही नहीं पहुँचाई गई, अपितु उनके सच्चे वर्णनों से यहाँ के प्राचीन इतिहास पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। इतिहास इस बात का साक्षी

है कि मनुष्य अपनी ज्ञान-वृद्धि और मनोरंजन के लिए आदिकाल से देशाटन करता आया है। बहुत से लोगों ने तो अपने प्राणों को संकट में डालकर उत्तरी ध्रुव, दक्षिणी ध्रुव एवं दुर्गम पर्वत-मालाओं का भ्रमण किया है।

'देशाटन' शब्द देश और अटन दो शब्दों से मिलकर बना है, जिसका अर्थ देश-विदेश में घूमना है। किन्तु यदि हम किसी स्थान पर कार्यवश जाकर लौट आते हैं या महीना दो महीना अपने ही काम में व्यस्त रहते हुए निवास कर लेते हैं तो यह देशाटन नहीं कहला सकता। जब केवल किसी स्थान को देखने का उद्देश्य लेकर निकलेंगे, वहाँ की प्राकृतिक शोभा देखेंगे, वहाँ के लोगों से मिलकर उनका रहन-सहन मालूम करेंगे, वहाँ की सभ्यता और संस्कृति का अध्ययन करेंगे, तभी हमारी कोई यात्रा देशाटन कहला सकती है। जो लोग तीर्थयात्रा, भिक्षाटन या खाने-कमाने के लिये देश-विदेश में घूमते हैं, उनका भ्रमण भी देशाटन की परिभाषा में आ सकता है। यद्यपि उनका लक्ष्य देशाटन का नहीं रहता, किन्तु वे इतने अधिक लोगों के सम्पर्क में आते हैं कि उन्हें देशाटन के सभी लाभ मिल जाते हैं। प्राचीन काल में लोग आज की भाँति पर्यटन को ही व्यवसाय बनाकर काम निकालते थे, वे तीर्थयात्रा, व्यापार आदि के बहाने ही सब जगह घूमा करते थे।

देशाटन में अपने मनोरंजन के अतिरिक्त और भी कई उद्देश्य निहित रहते हैं। जो व्यक्ति अपने जीवन में इधर-उधर चल-फिर कर कुछ नहीं देखता, वह कूप-मंडूक बना रहता है। उर्दू के एक कवि ने कहा है :—

सैर कर दुनियाँ की गाफिल जिन्दगानी फिर कहाँ,
जिन्दगी भी गर रही तो नौजवानी फिर कहाँ।

नौजवानी की उमंग में दुनिया देखने की धुन के ही कारण मानव उस समय भी दूर देश के साथ सम्पर्क रख सका, वहाँ की संस्कृति का अध्ययन कर सका, जबकि न यातायात के साधन थे और न समाचार आने के सस्ते और शीघ्र उपाय।

देशाटन में जाने कौन-सा जादू है कि हफ्तों भूखे-प्यासे रहकर भी थकान से चूर शरीर के सहारे यात्रा करने में भी एक विचित्र आनन्द आता है जबकि

घर पर उसी दशा में शीघ्र ही मनुष्य हतोत्साह होकर जीवन से उदासीन हो जाता है। सम्भवतः इसका कारण है उस भूख-प्यास के बदले में कुछ जानने, कुछ पाने की सम्भाव्य आशा।

देशाटन से विश्व-बन्धुत्व की भावना भी उत्पन्न होती है। जब हम देखते हैं कि विदेश के लोगों में हमारी ही तरह धर्म, दया, उपकार, प्रेम आदि पवित्र भाव हैं, केवल भाषा और दूरी ने हमारे और इनके बीच एक दीवार खड़ी कर रखी है, तो हम उनके प्रति भाईचारे के भावों से भर जाते हैं। घर बैठे राजनीतिक दलबन्दियों की गन्ध से भरे समाचारों द्वारा जो हम उनके प्रति एक बुरी और हीन भावना बना लेते हैं, वह धीरे-धीरे लुप्त हो जाती है। यही कारण है कि पर्यटक लोग सारे विश्व को अपना परिवार समझते हैं, वे जाति, धर्म और देश के संकुचित दृष्टिकोण से बहुत ऊँचे उठ जाते हैं।

देश-विदेश में घूमने से मनुष्य का अनुभव बढ़ता है और उसमें आत्म-विश्वास की भावना उत्पन्न हो जाती है। घर में रहने वाले अपने संरक्षकों के इतने आधीन होते हैं कि वे उनके प्रभाव से अलग कोई भी काम करने की कल्पना नहीं कर सकते। कोई संकट आ पड़ने पर ऐसे व्यक्ति रोते, झींकते और भाग्य को कोसते रहते हैं, जबकि साहसी घुमक्कड़ कोई न कोई मार्ग निकाल ही लेता है। बहुत से लोगों से मिलने-जुलने एवं बातचीत करने से बहुत-सी भाषाओं का ज्ञान हो जाता है, जो उन्नति करने में बड़ा सहायक होता है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन जी केवल भ्रमण के ही सहारे बाईस भाषाओं के पूर्ण विद्वान् हो गये हैं। भाँति-भाँति के रहन-सहन और रीति-रिवाजों को देखकर भी ज्ञान बढ़ता है।

देशाटन से हमारे उदासीन जीवन में एक प्रकार की स्फूर्ति रहती है। दूसरे देशों के लोगों से हम बहुत-सी ऐसी बातें सीखते हैं, जिनकी हम में कमी होती है। देशाटन द्वारा हम बहुत से ऐसे विचित्र स्थान भी देखते हैं, जिनके विषय में सुनकर हम कभी भी विश्वास नहीं कर सकते।

देशाटन विश्व-शान्ति का एक सरल साधन है। यदि सभी देशों की सरकारें अपने देश के लोगों को विदेशों में जाने की सुविधाएँ दें, मानव को मानव से मिलने दें, सुख-दुःख की बातें करने दें, तो महायुद्धों का भय सदा के लिये

नष्ट हो सकता है। हृदय से हृदय मिलने पर मनुष्य मनुष्य का शत्रु कभी नहीं हो सकता। जब सारे संसार के निवासी शान्ति और प्रेम के पुजारी बन जावेंगे तो थोड़े से स्वार्थी लोग युद्ध की ज्वाला नहीं भड़का सकते।

आज देशाटन करना बड़ा सरल है। सभी प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त हैं। सवारियों में बैठकर इस प्रकार चलते हैं, मानो अपने घर पर आराम कर रहे हों। मार्ग में खाने-पीने तक का कोई कष्ट या किसी प्रकार की असुविधा नहीं होती, न समय बहुत लगता है और न लुटेरों का भय रहता है। प्राचीन काल में भ्रमण करना बहुत कठिन था। उस समय यात्रा केवल पैदल ही की जाती थी। कुछ लोग थोड़ी दूर के लिए ऊँट, घोड़े आदि का प्रबन्ध भी कर लेते थे। मार्ग में इतने कष्ट उठाने पड़ते थे तथा चोर-डाकुओं का इतना अधिक भय रहता था कि घर वालों को यात्री के लौटकर आने की आशा नहीं रहती थी। प्रायः वे ही लोग यात्रा पर निकलते थे, जिन्हें अपने जीवन से कोई मोह नहीं रह जाता था। इसके अतिरिक्त एक असुविधा यह थी कि प्राचीन काल में समुद्र के पार जाने वाले लोगों को जाति से निकाल दिया जाता था।

जीवन को सरस बनाने और अपना ज्ञान बढ़ाने के लिए देशाटन सभी को करना चाहिए। बहुत से लोग देशाटन से अपना गिरता स्वास्थ्य भी ठीक कर लेते हैं। प्रत्येक देश की सरकार को चाहिए कि वह लोगों को देशाटन की अधिक से अधिक सुविधाएँ दे। यदि सरकार इस ओर ध्यान नहीं देती तो हमें देशाटन को अपने जीवन का एक पवित्र कार्य समझकर अवश्य करना चाहिए।

६. अछूतोद्धार

रूपरेखा—

१. हिन्दू धर्म की जाति-व्यवस्था।
२. अछूतों के प्रति दुर्व्यवहार।
३. महापुरुषों के प्रयत्न एवं सरकारी सुविधाएँ।
४. अछूतोद्धार से लाभ।
५. अछूतोद्धार के कार्यक्रम।

हिन्दू-धर्म में जितनी अधिक जातियाँ और उप-जातियाँ हैं उतनी संसार के किसी भाग में, किसी धर्म में ढूँढ सकना दुर्लभ है। पर सबसे अधिक आश्चर्यजनक और लज्जास्पद बात तो यह है कि हमने कुछ जातियों के कार्यों को, उनके धन्धों को निम्न मान कर उन्हें अन्य जातियों से बिलकुल अलग कर दिया है। वे अस्पृश्य या अछूत कहलाती हैं। वास्तव में जिस समय भारत में आर्यों ने कार्य की सुविधानुसार चार वर्ग—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—बनाये उस समय इनके मूल में ऊँच-नीच की कोई भावना न थी। जिसका जैसा स्वभाव, जिसमें जितनी शक्ति होती थी वह वैसा ही कार्य करता था अतः उसी के अनुसार उसका वर्ग निश्चित होता था। धीरे-धीरे कर्म के स्थान पर जन्म से जातियाँ मानी जाने लगीं। जो ब्राह्मण के घर उत्पन्न हुआ, वह ब्राह्मण कहलाया, चाहे वह कितना भी दुराचारी और मूर्ख क्यों न हो? इसी प्रकार अत्यन्त सदाचारी एवं विद्वान् होने पर एक व्यक्ति शूद्र के यहाँ जन्म लेने मात्र से शूद्र कहलाने लगा। बढ़ते-बढ़ते इन्हीं चार से आज इतनी जातियाँ बन गईं। धीरे-धीरे इनमें ऊँच-नीच की भावना और परस्पर सेवक-स्वामी का सम्बन्ध भी उत्पन्न हो गया।

वैसे तो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के अतिरिक्त सभी जातियाँ हीन भावना की दृष्टि से देखी जाती थीं, उन्हें अपना दास समझा जाता था, पर सबसे बुरी दशा थी वेचारे अछूतों की। उनके छू लेने मात्र से कोई भी ऊँची जाति वाला व्यक्ति अपवित्र हो जाता था। वह दुवारा शुद्ध होने के लिए कपड़ों समेत स्नान करता था। कुछ स्थानों पर अछूतों के लिये उन सड़कों पर चलने की मनाही थी, जिन पर होकर ऊँची जाति वाले लोग निकला करते थे। अछूतों को कुँओं पर नहीं चढ़ने दिया जाता था। उनके कुएँ अलग थे और अधिकतर उनके घर भी गाँव से दूर बने रहते थे। अछूत लोग देव-मन्दिरों में दर्शन करने नहीं जा सकते थे। उनके लिये यह नियम था कि वे मन्दिर का कलश देखकर ही सन्तोष करलें क्योंकि मन्दिर की मूर्ति और कलश दोनों की प्राण-प्रतिष्ठा समान रीति से होती है, इसलिये दोनों के दर्शन का फल समान ही है। उनसे बहलाने के लिये कहा जाता था—"तुम्हें

तो धर्म ने बड़ी सुविधाएं दे रखी हैं। जो फल हम लोगों को मन्दिर के अन्दर जाने से मिलता है, वह तुम्हें दूर से कलश देखकर ही मिल जाता है।"

जो अधिक धर्मात्मा होते थे, वे तो अछूतों के देखने में भी पाप समझते थे। इसलिये या तो दिन में बाहर निकलते ही बहुत कम थे और यदि भूल से किसी नीच को देख भी लेते थे तो उसका प्रायश्चित करते थे। कुछ समय अछूतों के लिये यह नियम बना दिया गया था कि वे अपने सिर की पगड़ी में किसी पक्षी विशेष का पंख बाँधकर निकलें, जिससे लोग उन्हें पहचान कर छूने से बच जावें। अछूतों के पढ़ने की भी कोई व्यवस्था नहीं थी। यहाँ तक नियम बनाये गये कि यदि अछूत अथवा शूद्र के कान में वेद का मन्त्र पड़ जावे तो उसमें सीसा पिघलाकर भर देना चाहिए। इन पुरानी असुविधाओं के अतिरिक्त लोगों ने कुछ सामाजिक अधिकार भी छीन रखे थे, जैसे कोई अछूत अपनी चौपाल पर चारपाई पर नहीं बैठ सकता, सवारी पर चढ़कर गाँव में से नहीं निकल सकता, गाँव में होकर बारात नहीं चढ़ा सकता।

इस प्रकार अछूतों के बहुत से सामाजिक अधिकार छीनकर उन्हें तंग किया जाता था। भूमि न होने से बेचारे ऊँची जाति वालों के यहाँ नौकरी करने के लिये विवश थे। उन्हें जीवन भर गरीबी, गन्दगी और मूर्खता में ही रहना पड़ता था। धीरे-धीरे अछूतों में ऊँची जाति वालों के प्रति द्वेष की भावना उत्पन्न हो गई, किन्तु बेचारे धर्म और समाज दोनों के नियमों को कैसे तोड़ सकते थे? दूसरे धर्म वाले लोगों, ईसाई, मुसलमानों आदि, ने अछूतों के रोष और उच्च वर्ण वालों के दुर्व्यवहार का पता लगाकर इससे लाभ उठाया। ईसाई एवं मुसलमानों में सबका खाना-पीना एक है, कोई किसी से छूत नहीं मानता। फल यह हुआ कि बहुत बड़ी संख्या में हिन्दू अछूत मुसलमान और ईसाई होने लगे। जिन अछूतों को हिन्दू होने पर लोग दूर-दूर करते थे, उन्हीं को धर्म बदल लेने पर पास बैठाना पड़ा।

इस धर्म-परिवर्तन से भी अछूतों की दशा में कोई सुधार नहीं हुआ। उनकी दरिद्रता और अशिक्षा ज्यौं की त्यों रही। यह देखकर सबसे पहले स्वामी दयानन्द ने अछूतों से छूआछूत न मानने और उन्हें बराबर का दर्जा देने पर बल दिया। उन्होंनें अछूतों के पढ़ने का भी समर्थन किया। स्वामीजी ने कर्म के

अनुसार जाति-व्यवस्था मानने पर बड़ा जोर दिया। स्वामी विवेकानन्द का प्रयत्न भी इस ओर सराहनीय है। परन्तु अछूतों के उद्धार के लिये सबसे अधिक काम महात्मा गांधी ने किया। उन्होंने इन लोगों का नाम 'अछूत' की बजाय 'हरिजन' रखा। सभी हरिजन बस्तियों में स्वयं जाकर सफाई आदि का उपदेश दिया। अछूतों के अन्दर से हीन भावना निकालने के लिये महात्मा गांधी प्रायः हरिजन बस्तियों में ही ठहरते थे। उन्होंने अछूतों की उन्नति के लिये 'हरिजन-सेवक-संघ' नाम की एक विशाल संस्था की स्थापना की, जो अब भी बड़ी लगन से काम कर रही है। गांधी जी ने 'हरिजन सेवक' नामक पत्र भी निकाला जो अब तक निकल रहा है। गांधी जी के प्रयत्न से अछूतों में शिक्षा और सफाई का भी प्रचार हुआ। उनके कहने से बहुत से अछूतों ने शराब न पीने की प्रतिज्ञाएँ भी की थीं।

गांधी जी के ही प्रयत्नों से कांग्रेस सरकार ने भी अछूतों को बहुत-सी सुविधाएँ दीं। उनके लिये चुनाव और नौकरियों में स्थान निश्चित कर दिये गये हैं। व्यवसाय के लिये उन्हें दान या कम ब्याज पर रुपया दिया जा रहा है। अछूतों के बच्चों से विद्यालयों में फीस नहीं ली जाती, अपितु पुस्तक आदि के व्यय के लिये छात्रवृत्ति दी जाती है। सरकार ने कानून बनाकर छूआछूत मिटा दी है। जो छूआछूत का व्यवहार करेगा, वह दण्ड का भागी बनेगा। लगभग सभी मन्दिर अब अछूतों के लिये खुल गये हैं।

अछूतोद्धार से बहुत से लाभ हुए हैं। समाज का एक बहुत बड़ा अङ्ग दरिद्रता, गन्दगी और अविद्या की कीचड़ में अब तक पड़ा सड़ रहा था, अब उसके उन्नति करने से समाज का भी भला हुआ है। अब कोई भी विधर्मी समाज में बराबरी की सुविधाओं के नाम पर अछूतों को नहीं बहका सकता। यदि अछूतों के साथ पहले से सहानुभूति और प्रेम का व्यवहार होता तो डा० भीमराव अम्बेदकर जैसा विद्वान् व्यक्ति हिन्दू धर्म का शत्रु क्यों बन जाता। जब से अछूतों के साथ अच्छा व्यवहार किया गया है वे अन्य जाति के लोगों से अत्यन्त प्रेम का बरतावा करने लगे हैं और उनके लिये सब कुछ करने को तैयार रहते हैं। स्वातन्त्र्य-आन्दोलन में भी अछूतों ने बड़ा योग दिया है।

ईश्वर ने सभी मनुष्यों को समान बनाया है, प्रकृति भी अछूतों के साथ

कोई भेद-भाव नहीं करती, फिर और लोगों को ही उन्हें दूर-दूर करने का क्या अधिकार है ? जो वायु एक वेदपाठी ब्राह्मण के घर आती है, क्या वह इससे पहले और बाद में एक भंगी या चमार के घर नहीं जाती। अछूतों का उद्धार करने के लिये सबसे बड़ी आवश्यकता तो उनके साथ प्रेम और समानता के बरतावे की है। जब तक जनता के हृदय में कोई बात नहीं समा जाती, तब तक सरकार एक नहीं, सौ कानून बनाकर भी कुछ नहीं कर सकती। सभी स्थानों पर अछूतों को उनकी योग्यता की दृष्टि से स्थान मिलना चाहिये। अछूत वास्तव में हिन्दू जाति पर एक कलंक हैं। प्रत्येक उच्च वर्ण वाले का कर्तव्य है कि वह इनके प्रति व्याप्त समाज की भेद-भरी भावना को दूर कर राष्ट्र की उन्नति में सहारा दे।

१०. समाचार-पत्र

रूपरेखा—

१. मनुष्यों में ज्ञान की पिपासा।
२. समाचार-पत्रों का इतिहास।
३. आवश्यकता और महत्व।
४. सदुपयोग-दुरुपयोग।
५. जनता के प्रतिनिधि और स्वतन्त्रता के प्रहरी।

दूसरों के विषय में जानने की मानव मात्र में स्वाभाविक इच्छा होती है। मनुष्य अपने सीमित साधनों के सहारे सदा से इसे शान्त करता आया है। जब समाचार आने-जाने के साधन बहुत कम थे, तब लोग कबूतरों द्वारा आवश्यक समाचार भेजा करते थे। साधु, भिखारी, व्यापारी, नट-कंजर आदि उस समय एक स्थान के समाचार दूसरे स्थान पर पहुँचा देने के बड़े सरल साधन थे। इन्हीं के द्वारा लोग दूसरे देशों के मुख्य समाचारों को जान पाते थे। जैसे-जैसे सभ्यता का विकास हुआ, विज्ञान ने उन्नति की, वैसे ही वैसे मनुष्य अपनी सभी आवश्यकताओं और इच्छाओं की पूर्ति कर सका। आज के युग में समय और दूरी की कोई बाधा नहीं रह गई है, दुनिया बहुत छोटी मालूम देने लगी

है। रेडियो, टेलीफोन, वायरलैस आदि ऐसे साधन खोज लिये गये हैं, जिनसे संसार भर के समाचार मिनटों में जाने जा सकते हैं। ऊपर बताये हुए साधन कीमती होने से मामूली आदमी के मतलब के नहीं हैं, समाचार-पत्र ही एक ऐसा सस्ता और सुलभ साधन है, जिसका सभी प्रयोग कर सकते हैं।

समाचार-पत्रों का जन्म इटली के वेनिस प्रान्त में सोलहवीं शताब्दी में हुआ था। अन्य देशों ने वेनिस का ही अनुकरण किया। भारतवर्ष में समाचार-पत्र चालू करने का श्रेय अँग्रेजों को है। उन्होंने यहाँ सबसे पहले 'इण्डिया गजट' नामक अँग्रेजी का समाचार-पत्र निकाला। सबसे पहला हिन्दी पत्र 'समाचार दर्पण' था जिसे ईसाई पादरियों ने अपने धर्म का प्रचार करने के लिये निकाला था। इसके कुछ दिन बाद भारतीयों ने भी अपने स्वतन्त्र पत्र निकाले। समाचार-पत्रों की उन्नति में छपाई और कागज बनाने की कला का विशेष हाथ है। इनके अभाव में समाचार-पत्रों की उन्नति नहीं हो सकती थी। डाक की सुविधा एवं यातायात के तीव्रगामी साधनों पर भी समाचार-पत्रों की सफलता बहुत कुछ निर्भर है।

आजकल तो भारतवर्ष में समाचार-पत्रों की भरमार है। हिन्दी, अँग्रेजी, गुजराती, बँगला, मराठी, पंजाबी, उर्दू अनेक भाषाओं में बहुत से पत्र निकलते हैं। समय के भेद से समाचार-पत्रों के दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक और वार्षिक अनेक भेद हैं। सच्चे अर्थों में तो समाचार-पत्र दैनिक-पत्र को ही कहा जा सकता है। शेष तो नाममात्र के हैं, वैसे उनमें कहानियाँ, लेख आदि भरे रहते हैं। विषय की दृष्टि से भी समाचार-पत्रों के धार्मिक, जातीय, व्यापारिक, फिल्मी, पारिवारिक, साहित्यिक और आलोचनात्मक अनेक भेद हैं। प्रत्येक संस्था या पार्टी अपने प्रचार के लिये कोई न कोई पत्र निकालती है। अब तो सरकार ने भी 'पंचायती राज्य', 'त्रिपथगा', 'आजकल', 'प्रसारिका', 'आयोजन' आदि कई पत्र निकाले हैं। हिन्दी के दैनिक पत्रों में 'हिन्दुस्तान', 'नवभारत टाइम्स', 'आज', 'आर्यावर्त', 'जागरण', 'प्रताप', 'राष्ट्रदूत' एवं साप्ताहिक में 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' और 'धर्मयुग' अधिक प्रचलित हैं।

आज संसार के समाचारों को जानना मपुष्य के दैनिक भोजन का ही एक अंश है। संसार के किसी भी कोने में कोई घटना हो, विश्व का प्रत्येक

सभ्य नागरिक उसे जानने को बेचैन हो उठेगा। यह भूख समाचार-पत्र ही मिटा सकते हैं। समाचार-पत्रों के अभाव में आजकल हम लोग एक प्रकार के अन्धकार में पड़े-पड़े कूप-मंडूक बन जावेंगे। आज प्रजातन्त्र के युग में तो समाचार-पत्रों का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। जनता की बात सरकार तक पहुँचाने का समाचार-पत्र ही एकमात्र सस्ता और सुलभ साधन है। समाचार-पत्रों द्वारा ही अपनी बात विश्व के लोगों तक पहुँचाकर उनकी सहानुभूति प्राप्त की जा सकती है।

समाचार-पत्रों से अनेक लाभ हैं। ये किसी भी घटना को पूरे विवरण के साथ प्रकाशित करते हैं, जिससे सब को उसके विषय में ज्ञात हो जाता है। घटनाओं के अतिरिक्त इनमें और भी बहुत सी महत्वपूर्ण सूचनाएँ निकलती रहती हैं, जिनका सब लोगों तक पहुँचना अन्य प्रकार से बहुत कठिन है। समाचार-पत्रों का व्यापार से भी बहुत सम्बन्ध है। मुख्य-मुख्य स्थानों के भिन्न-भिन्न वस्तुओं के भाव इनमें निकला करते हैं। विज्ञापन की दृष्टि से तो समाचार-पत्र व्यापार की जान हैं। आज का व्यापार बहुत कुछ विज्ञापन पर निर्भर है। कोई भी समाचार-पत्र उठा कर देखिए, उसमें दस-बीस विज्ञापन होना तो साधारण बात है। वस्तुओं के क्रय-विक्रय एवं नीलाम सम्बन्धी विज्ञापनों के अतिरिक्त नौकरी और विवाह सम्बन्धी विज्ञापन भी समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ करते हैं। परीक्षार्थियों का परीक्षा-फल प्रकाशित करके समाचार-पत्र कितनी सुविधा कर देते हैं।

संसार के भिन्न-भिन्न देशों में होने वाली प्रगति और वहाँ के लोगों में हमारे प्रति उत्पन्न हुई भावनाओं को जानने का साधन समाचार-पत्र ही हैं। सरकार और जनता में समाचार-पत्रों के ही सहारे सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है। जनता को जो असुविधा होती है, वह समाचार-पत्रों द्वारा ही देश के कर्णधारों तक पहुँचाई जाती है और सरकार को यदि कोई बात स्पष्ट करनी होती है या नीति-परिवर्तन करना होता है, तो उसकी सूचना समाचार-पत्रों में ही निकलती है।

इनके साथ-साथ समाचार-पत्रों से कुछ हानियाँ भी हैं। आज स्वतन्त्र विचार के एवं ईमानदार समाचार-पत्र बहुत कम हैं। प्रायः सभी पत्र किसी न

किसी पार्टी से सम्बन्धित हैं और खुले या छिपे रूप में उस पार्टी का प्रचार करते हैं । ऐसे समाचार-पत्र कभी-कभी समाचारों को तोड़-मरोड़ कर अथवा झूठे समाचार प्रकाशित करके जनता को गलत रास्ते पर ले जाते हैं । बहुत से विज्ञापन भी ऐसे झूठे और लुभावने होते हैं कि उनमें पाठक का पैसा व्यर्थ ही जाता है । गन्दे विज्ञापनों एवं अश्लील चित्रों से नवयुवकों का चरित्र भ्रष्ट होता है ।

फिर भी लाभों की अपेक्षा समाचार-पत्रों से हानियाँ नहीं के बराबर हैं । ये हानियाँ भी ऐसी हैं, जिनमें सुधार किया जा सकता है । वास्तव में इसका उत्तरदायित्व सम्पादकों पर है । उनका पद बड़े महत्व का है । वे अगर ईमानदारी से काम करें तो जनता का बहुत बड़ा हित कर सकते हैं । जो समाचार-पत्र गलत समाचार छापकर जनता को बहकाते हैं या किसी के विरुद्ध भड़काते हैं, उन पर सरकार मुकदमा चलाकर जुर्माना भी करती है । अनेक बार तो सम्पादकों को जेल जाना पड़ा है ।

आज प्रजातन्त्र के युग में समाचार-पत्रों की बड़ी आवश्यकता है । जनता के सच्चे प्रतिनिधि ये ही हैं । इनके द्वारा कोई बात सर्वत्र पहुँचाई जा सकती है । बड़े-बड़े नेता और तानाशाह सम्राट भी समाचार-पत्रों की इस शक्ति के आगे झुकते हैं । आज के समाचार-पत्र केवल समाचार या कहानियाँ ही नहीं छापते, विश्व की प्रत्येक समस्या का हल भी सामने रखते हैं । प्रत्येक घटना के विषय में भविष्यवाणी करते हैं । जनता के प्रतिनिधि के रूप में किसी कार्य की आलोचना करना एवं विरोध करना भी उनका काम हो गया है । समाचार-पत्र एक प्रकार से स्वतन्त्रता के प्रहरी बने हुए हैं । जहाँ किसी प्रकार की स्वतन्त्रता पर कोई आँच आई कि इन्होंने वह बात सारी दुनिया में फूंक दी । इससे अत्याचार करने वाला डरता है और कमजोर सताये हुए को बल मिलता है । वह समझता है कि विश्व भर की सहानुभूति मेरे साथ है । वास्तव में आज की सभ्यता के साथ समाचार-पत्र इतने घुल-मिल गये हैं कि इनके अभाव में कोई भी स्वतन्त्र राष्ट्र जीवित रहने की कल्पना नहीं कर सकता ।

११. चरित्र-बल

रूपरेखा—

१. चरित्र की महत्ता।
२. चरित्र की परिभाषा।
३. चरित्र-निर्माण में बाधाएँ तथा उन पर विजय।
४. कुछ उदाहरण।
५. एक दिव्य गुण।

चरित्र मनुष्य की सबसे बड़ी सम्पत्ति है। हमारे शास्त्रकारों ने कहा है—"अक्षीणो वित्तत: क्षीणो वृत्ततस्तु हतोहत:" अर्थात् जिस मनुष्य का धन नष्ट हो गया है उसका कुछ नहीं बिगड़ा, किन्तु जिसके चरित्र का नाश हो गया वह कहीं का भी नहीं रहा। चरित्र में इतनी शक्ति है कि एक विशाल सेना भी चरित्रवान् के सामने घुटने टेक देगी। चरित्रवान् व्यक्ति में असीम साहस और आत्म-विश्वास आ जाता है जिससे वह कठिन से कठिन कार्य करने में भी नहीं हिचकता। चरित्रवान् व्यक्ति को सभी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं और हृदय से आदर करते हैं।

चरित्र ऐसा गुण है, जिसके बिना कोई भी दूसरा गुण मनुष्य का भला नहीं कर सकता। यदि कोई मनुष्य महान् विद्वान्, बहुत बड़ा धनी और अत्यन्त बलवान् है, किन्तु उसमें यदि चरित्र का बल नहीं है तो उसके सभी गुण व्यर्थ हैं। वेदों ने भी "आचारहीनं न पुनन्ति वेदा:" कहकर चरित्र को ही प्रधानता दी है। मनुष्य की शोभा चरित्र में ही है। जिस व्यक्ति में चरित्र का गुण नहीं उसे पशु से भी हीन समझना चाहिए। चरित्रहीन व्यक्ति अपने राष्ट्र एवं जाति के लिए कलंक के समान होते हैं। हमारा भारत देश सदा चरित्र का उपासक रहा है। यहाँ जो सम्मान चरित्रवान् लंगोटीधारियों का हुआ, वह चरित्रहीन सम्राटों का भी नहीं।

'चरित्र' शब्द की परिभाषा बड़ी व्यापक है। इसके अन्दर लगभग सभी ऐसे गुण आ जाते हैं जो एक सभ्य व्यक्ति में होने चाहिये। विनय, उदारता, लालच

में न पड़ना, धैर्य, सत्य-भाषण, कर्तव्य-पालन और अनेक बातें चरित्र में सम्मिलित हैं। ये गुण मनुष्य में स्वाभाविक होते हैं। कोई बुरी संगति में पड़-कर इन्हें नष्ट कर देता है और कोई सत्संगति के अभ्यास से इनकी उन्नति कर लेता है। चरित्र का धर्म या सम्प्रदाय से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। किसी भी धर्म का अनुयायी न होने पर भी कोई व्यक्ति चरित्र का पालन कर सकता है और धर्म का ठेकेदार बनकर तिलक-छापा लगाये, जटा बढ़ाये, कपड़े रंगे, रात-दिन माला फेरते हुए भी चरित्रहीन बन सकता है। चरित्र का सम्बन्ध मुख्य रूप से विचारों की शुद्धता और आचरण की पवित्रता से है। जिस व्यक्ति के विचार बुरे होंगे, वह न तो सदाचारी हो सकता है और न चरित्र-वान्। संकट के अवसर पर ही चरित्र की वास्तविक परीक्षा होती है। जिस प्रकार सोना अग्नि में तपकर चमकता है, उसी प्रकार विपत्तियों में चरित्र की उज्ज्वलता झलकती है। चरित्रवान् व्यक्ति कभी परिस्थितियों की आड़ लेकर अपनी दुर्बलता नहीं छिपाता। वह विपत्तियों की आँधियों में भी चट्टान के समान अडिग रहता है। चरित्रवान् व्यक्ति अपनी लगन का पक्का होता है, संसार की कोई भी बाधा उसे अपने मार्ग से नहीं हटा सकती। उसमें स्वार्थ, बदला लेने की भावना और बिना कारण दूसरे को हानि पहुँचाने जैसे नीच विचार एक क्षण भी नहीं ठहर सकते। चरित्रवान् व्यक्ति में एक ऐसा आकर्षण आ जाता है कि लोग उसकी ओर अपने आप खिंचने लगते हैं। बुरे लोग उसके सामने जाने में भी संकोच करते हैं। जो सामने पहुँच जाते हैं उनका हृदय बदल जाता है।

आज संसार में कुछ ऐसे नित नूतन परिवर्तन हो रहे हैं कि कल की सभ्यता आज की हँसने की वस्तु बन जाती है। परिस्थितियों की जटिलता से सताया हुआ मनुष्य फूंक-फूंककर पग बढ़ाता है किन्तु दुर्बलता के कारण कभी-कभी फिसल भी जाता है यद्यपि संकोच और भय उसे गिरने से बचाते रहते हैं। चरित्र के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा लोभ के रूप में आती है। जब किसी से अनुचित काम कराना होता है तो लोग उसे धन या स्त्री का लोभ देते हैं। साधारण व्यक्ति लोभ के सामने अवश्य झुक जाता है। जब एक क्लर्क अपने दफ्तर के सभी लोगों को रिश्वत लेते देखता है, तो उसे भी उसमें कोई बुराई नहीं जान

पड़ती । चरित्र-पालन की दूसरी वड़ी वाधा है मोह । वहुत से लोग अपने ऊपर कष्ट आने पर नहीं घवराते, पर अपने वाल-बच्चों को मुसीवत में पड़ा देखकर घवड़ा जाते हैं । जब किसी को आश्वासन दिया जाता है कि अमुक काम करने पर तुम्हारे पुत्र को थानेदारी के लिए चुन लिया जावेगा, तो वहुत कम पिता ऐसे हैं जो अपने आपको बुराई से वचा सकें । जो लोग मेल-मुलाकात और सम्वन्धी की दुहाई देकर अनुचित काम कराते हैं, उसमें भी मोह ही कारण है ।

संसार में जो भी कार्य हुए हैं सव चरित्रवानों के ही द्वारा सम्पन्न हुए हैं । चरित्रहीन व्यक्ति तो स्वार्थ और ममता में इतना फँस जाता है कि उसे अपने अतिरिक्त कुछ सूझता ही नहीं । दूसरे की भलाई के लिये कष्ट उठाना वह मूर्खता समझने लगता है । चरित्र के वल पर ही भीष्म पितामह ने वृद्धावस्था में भी वड़े-वड़े वीरों के छक्के छुड़ा दिये । राम ने चरित्र के वल पर ही विना किसी साधन के रावण जैसे शक्तिशाली को समूल नष्ट कर दिया । चरित्र ने ही शिव को महादेव और हनुमान को महावीर वना दिया । दूसरों का कष्ट दूर करने के लिये विष-पान करने का साहस आज कितने लोगों में है ?

शक्ति चरित्र में है, मानव में नहीं । वड़े-वड़े सुधारक, नेता, वैज्ञानिक, योगी एवं कलाकार चरित्र के वल पर ही कुछ कर सकने में समर्थ हुए हैं । चरित्र के सहारे ही अकेले स्वामी दयानन्द ने तमाम भारत के पाखंडियों को दहलाकर वैदिक धर्म का डंका वजाया । चरित्र के वल पर ही महात्मा बुद्ध भयंकर डाकू अंगुलिमाल के स्थान पर अकेले चले गये, जहाँ जाने में पूरी सेना भी घवराती थी । विशेषता यह कि उस जैसे हिंसक व्यक्ति को अपने साथ वौद्ध श्रमण के रूप में लेकर लौटे । महात्मा गांधी ने चरित्र के वल पर ही विना एक वूँद रक्त वहाये अँग्रेजों के दृढ़ साम्राज्य को भारत से उखाड़ फेंका । तिलक ने चरित्र के वल पर ही "स्वतन्त्रता हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है" की आवाज उठाई थी । महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी और रानी लक्ष्मीवाई के जीवन की सफलता का रहस्य भी चरित्र-वल ही है ।

हमारे देश में नारियों की पूजा इसलिए होती है कि उन्होंने संसार के तुच्छ

सुखों को ठुकरा कर चरित्र की रक्षा के लिए अग्नि में जल जाना उचित समझा। आज सीता और सावित्री का नाम आदर से इसीलिए लिया जाता है कि वे हजारों बाधाएँ आने पर भी चरित्र की रक्षा करती रहीं। यदि भारत की नारी भी शारीरिक सुख के लिये अपना सब कुछ सौंपने को तैयार रहती तो उसे 'देवी' कहकर कौन पुकारता ?

चरित्र एक दिव्य गुण है। भारत इसके लिए सदा से प्रसिद्ध रहा है। इसलिये चरित्र की रक्षा करके देश का गौरव बढ़ाना प्रत्येक भारतवासी का कर्तव्य है। देश में जब तक चरित्र-बल की वृद्धि नहीं होगी तब तक इसकी उन्नति नहीं हो सकती। लगभग आठ सौ वर्ष की गुलामी में विदेश के लोगों के सम्पर्क से आज भारतवासियों का चरित्र वैसा नहीं रह गया। पाश्चात्य सभ्यता की बाढ़ में तो चरित्र तिनके के समान बह गया है। लोगों का विश्वास केवल खाने-पीने और मौज-मजा करने में ही रह गया है। जो भारत अपने चरित्र-बल के कारण सारे संसार का गुरू बना हुआ था वही चरित्र को खोकर आज इस हीन दशा में है। ऋषियों की सन्तान को अपने अतीत की ओर देखकर अपनी चरित्ररूपी सम्पत्ति एक बार पुनः प्राप्त कर लेनी चाहिए। बिना इस दिव्य गुण को धारण किये न हमें सम्मान मिल सकता है, न आत्म-सन्तोष।

१२. समय का सदुपयोग

रूपरेखा—

१. **समय का महत्व और जीवन की अल्पता।**
२. **सदुपयोग से लाभ और दुरुपयोग से हानियाँ।**
३. **सदुपयोग दुरुपयोग का स्पष्टीकरण।**
४. **समय की बचत में आधुनिक सुविधाएँ।**
५. **विद्यार्थी-जीवन में समय का मूल्य।**

संसार की वस्तुओं में समय ही ऐसा है जो किसी भी मूल्य पर नहीं लौटाया जा सकता। गया हुआ धन-वैभव फिर मिल सकता है, खोये हुए

स्वास्थ्य को दुबारा प्राप्त किया जा सकता है, किसी का नष्ट हुआ विश्वास या सख्य-सम्बन्ध फिर लौटाया जा सकता है, पर संसार के समस्त धन के बदले भी समय का छोटे से छोटा अंश भी नहीं लौटाया जा सकता। महाकवि तुलसीदास ने इन्हीं विचारों को इस प्रकार लिखा है—

का वर्षा जब कृषी सुखाने, समय चूकि पुनि का पछिताने।

समय की इस विशेषता के साथ दूसरी बात यह भी है कि हमारे जीवन की अवधि बहुत कम है। इस दृष्टि से समय का महत्व बहुत बढ़ जाता है। कहने को हम अपनी अवस्था पचास-साठ साल की कह सकते हैं; किन्तु विचार करने पर ऐसा समय बहुत कम बचता है जिसमें कुछ कार्य किया जा सके। जीवन भर का लगभग तिहाई समय तो सोने में ही व्यतीत हो जाता है। शेष समय में से भी स्नान-भोजन आदि आवश्यक कार्य बहुत-सा समय ले लेते हैं। फिर हर्ष एवं शोक के अवसरों को भी कुछ समय देना ही होता है। इस प्रकार एक सीमित मात्रा में बचे समय का भी हम सदुपयोग न करें तो हमसे बड़ा मूर्ख कौन होगा ?

समय का सदुपयोग करने वाले व्यक्ति को कभी पश्चाताप नहीं होता कि मैंने अपना समय व्यर्थ खो दिया। ऐसे व्यक्ति का कोई कार्य सफल न हो तब भी वह यह सोचकर सन्तोष कर लेता है कि मैंने अपनी सामर्थ्य भर तो कर लिया, इससे अधिक मैं कर ही क्या सकता था। जो लोग अपना समय अच्छे कार्यों में लगाते हैं, उन्हें सभी आदर की दृष्टि से देखते हैं। मानव-जीवन बड़े सौभाग्य से मिलता है। जो इस जीवन का ठीक उपयोग नहीं करता, वह मानो ईश्वर के दिए वरदान को ठुकराता है। उन्नति के शिखर पर वे ही लोग पहुँच सके हैं, जिन्होंने अपने समय का मूल्य पहिचाना है। जो लोग समय का ठीक मूल्य समझकर उसे अच्छे कामों में लगाते हैं, समय उन्हें पुरस्कार देता है, सफलता उनके चरणों में लोटती है। किसी भी नेता, विद्वान् या महात्मा से मिलिये, वह यही कहेगा—"मेरे पास समय नहीं है, इसीलिये मैं क्षमा चाहता हूँ।" दूसरी ओर मूर्ख और निठल्ले लोगों को देखिये जो समय न कटने की शिकायत करते हुए ऐसी व्यर्थ सामग्री की खोज में रहते हैं, जिससे समय बीत सके। वे इस ओर ध्यान नहीं देते कि क्षण-क्षण बीतता हुआ समय

उन्हें मृत्यु की ओर ठेलकर ले जा रहा है। जो लोग आलस्य आदि दुर्व्यसनों में पड़कर अपना समय व्यर्थ बिताते हैं, बाद में जीवन भर पश्चाताप के अतिरिक्त उनके पल्ले कुछ नहीं रहता। इसी ओर संकेत करते हुए महात्मा कवीरदास ने कहा है—

काल्हि करै सो आजु करि, आजु करै सो अब्ब,
पल में परलै होयगी, बहुरि करेगा कब्ब ?

समय का दुरुपयोग हम में बहुत से अवगुण पैदा कर देता है। यह ऐसा रोग है जो बढ़ता ही जाता है। जिन कारणों से हम समम का दुरुपयोग करते हैं, वे कारण आगे चलकर इतने प्रबल हो जाते हैं कि हमारा सारा समय उन्हीं की भेंट चढ़ जाता है।

कौन से कार्य से समय का सदुपयोग हुआ और कौन से कार्य से दुरुपयोग, यह भी एक विवादास्पद विषय है। कुछ लोग बेकार बैठना ही समय का दुरुपयोग समझते हैं, ताश खेलना, वातचीत करना वे समय की सार्थकता समझते हैं। प्रायः देखा जाता है कि जिसे जो रुचिकर होता है वह उसी में समय का सदुपयोग मानता है, उसे शेष सब काम व्यर्थ और समय नष्ट करने वाले प्रतीत होते हैं। वास्तव में ऐसी वात नहीं है। जो समय हम किसी उद्देश्य की पूर्ति में लगावें, जिस समय में कोई कार्य आवश्यक समझकर करें, वही समय का ठीक उपयोग है। समय का दुरुपयोग उसे कहा जावेगा, जिसमें हम कोई काम केवल समय काटने के लिये करेंगे या विना उद्देश्य के करेंगे। काम करने वालों के पास कहीं समय की अधिकता होती है जो वे समय काटने का सहारा ढूँढें ? उनके पास तो इतने अधिक काम रहते हैं कि समय ही कम पड़ जाता है।

यह तर्क किया जा सकता है कि जुआरी का उद्देश्य जुआ खेलना, शरावी का शराव पीना और चोर का चोरी करना होता है। वे इसे आवश्यक कार्य समझकर करते हैं, समय काटने के लिए नहीं। तो क्या यह उनके समय का सदुपयोग कहलावेगा ? इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि सदुपयोग में लगा हुआ सत् अव्यय ही इस ओर संकेत करता है कि जो समय अच्छे कामों

में लगाया जाता है, जिस समय में हम कुछ उचित कर्म करते हैं, कुछ निर्माण-कार्य करते हैं, वही समय का सदुपयोग होता है। इस दृष्टि से ताश खेलना, गप्पें हाँकना, घंटों वाजार में घूमना, सव समय का दुरुपयोग करने वाले कार्यों में आते हैं।

इस विषय में एक वात और भी है। कुछ कार्य ऐसे हैं जो कभी-कभी करने पर समय के सदुपयोग में और सदा करने पर दुरुपयोग में आते हैं। जैसे मनोरंजन या ज्ञान-वृद्धि के लिए कोई अच्छा सिनेमा देख लेना समय का सदुपयोग है, पर रोज सिनेमा-घर के चक्कर लगाना समय को व्यर्थ नष्ट करना है। यदि कोई सम्वन्धी आवे अथवा घनिष्ट मित्र मिले तो शिष्टाचार के नाते उससे घंटा आधा घंटा वात कर लेना समय का दुरुपयोग नहीं है। हाँ, जब हम वातें करने के लिए मित्र और सम्वन्धियों को ढूँढ़ने लगेंगे, तभी समय का दुरुपयोग होगा। यही वात खेल, मेला, तमाशे आदि के विषय में कही जा सकती है।

आजकल विज्ञान की कृपा से लोगों के पास समय की वचत दिखाई देने लगी है। पहले एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने में जहाँ महीनों लगते थे, वहाँ दो एक दिन ही पर्याप्त होते हैं। पहले दाड़ी वनवाने के लिए दो घंटा नाई की प्रतीक्षा करनी पड़ती थी और आधा घण्टा समय उसे हजामत बनाने में लगता था। अब अपने हाथ से चार पाँच मिनट में ही वाल वनाये जा सकते हैं। वाल वनाने की विजली की मशीन (इलेक्ट्रिक शेवर) से तो एक मिनट भी नहीं लगता। किन्तु जहाँ हमारे कार्य विज्ञान ने थोड़े समय में निबटाकर कुछ समय वचाया है, वहाँ आज की वढ़ती हुई आवश्यकताओं और चढ़ते हुए मूल्यों ने हमें लगातार काम करने पर विवश कर दिया है। हमारे लिए उचित यह है कि विज्ञान की सहायता से वचाये गए समय को अध्ययन, ईश्वराराधन, चिन्तन, परोपकार जैसे महत्वपूर्ण कामों में लगावें। हमने आधा घण्टे का मार्ग पाँच मिनट में पूरा कर लिया और घर आकर दो घण्टा सोते रहे, इससे क्या लाभ?

वैसे तो जीवन के अन्तिम क्षण तक समय का सदुपयोग करना चाहिए, पर विद्यार्थी जीवन में इस ओर ध्यान देने की विशेष आवश्यकता है। यह

समय जीवन की तैयारी का होता है, व्यक्ति के निर्माण का होता है। इस समय एक बूंद की चूक आगे चलकर घड़े से भी पूरी नहीं की जा सकती। उन विद्यार्थियों को क्या कहा जावे जो घंटों बाल काढ़ने, टाई बाँधने और जूते पर पालिश करने में नष्ट कर देते हैं। उनमें इतनी सूझ नहीं कि इन कामों के लिए तो सारा जीवन पड़ा है, विद्या का अभ्यास तो हमें एक निश्चित समय तक ही करना है। इस विषय में भतृहरि ने बड़ी सुन्दर बात कही है:— "काव्य शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्, व्यसनेनचमूर्खाणाम् विद्याकलहेनवा", अर्थात् बुद्धिमानों का समय काव्य-शास्त्र के अध्ययन में बीतता है और मूर्खों का व्यसन, निद्रा और कलह में।

१३. परोपकार

रूपरेखा—

१. परोपकार की उत्पत्ति।
२. परिभाषा।
३. सामाजिक उन्नति और विश्व-बन्धुत्व।
४. कुछ उदाहरण।
५. मानव मात्र का कर्त्तव्य।

परोपकार मानव-हृदय में निवास करने वाली एक शाश्वत कोमल भावना है। इसका उदय तभी हो जाता है, जब बालक साधारण बातों से परिचित हो जाता है। इसकी उत्पत्ति दया तथा प्रेम के संयोग से होती है। यह भावना विशाल हृदय एवं व्यापक दृष्टिकोण वाले लोगों में ही उत्पन्न होती है। परोपकारी व्यक्ति तेरे-मेरे की गिनती छोड़कर सभी का दुःख अपना दुःख समझकर उसे दूर करने का प्रयत्न करता है। परोपकार को किसी पर अहसान न समझना चाहिये, यह तो मनुष्य का कर्त्तव्य है। हमारे धन, हमारी विद्या और हमारी शक्ति से दूसरों को लाभ नहीं पहुँचा तो उनका होना व्यर्थ ही है। भतृहरि ने इसी आधार पर सज्जन और दुर्जन का कितना सुन्दर चित्र अंकित किया है :—

विद्या विवादाय धनंमदाय बलं परेषां परिपीडनाय
खलस्य, साधोर्विपरीतमेतज् ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय।

अर्थात् दुष्ट की विद्या विवाद करने के लिये, धन घमण्ड के लिये और बल दूसरों को पीड़ा पहुँचाने के लिये होता है। इसके विपरीत सज्जन लोग अपनी विद्या का उपयोग दूसरों के ज्ञान में, धन का दान में और बल का रक्षा में करते हैं।

परोपकार का निर्माण पर एवं उपकार नामक दो शब्दों के योग से हुआ है, जिसका तात्पर्य अपने से भिन्न लोगों की भलाई करना है। जो लोग परोपकार करते समय अपने-पराये का विचार करते हैं, वे वास्तव में संसार को धोखा देते हैं। प्रसिद्धि या वदले की भावना से किसी के साथ जो भलाई की जाती है, वह भी परोपकार की सीमा से वाहर है। जो लोग कुआँ, मन्दिर, धर्मशाला आदि बनवाकर उन पर अपने नाम का पत्थर लगाते हैं, वे इन कामों को परोपकार के लिये नहीं, स्वार्थ के लिये करते हैं। जो लोग किसी नेता को प्रसन्न करके पचास काम वनाने के विचार से उनकी प्रिय संस्था को दान देते हैं, वह परोपकार नहीं है। हाँ, इसे परोपकार के वस्त्रों में छिपा व्यापार कह सकते हैं। वहुत से लोग दान, पुण्य आदि करते समय अपनी जाति, पार्टी, सम्बन्ध या सम्प्रदाय तक ही सीमित रहते हैं; उनके विचार संकुचित हैं। परोपकार की पवित्र भावना का उदय वास्तव में उनमें नहीं हुआ है।

हमारे देश में सदा से परोपकार की भावना रही है। भूखे को भोजन, प्यासे को जल, दरिद्र को धन और डरे हुए को अभय देने में यहाँ के लोगों ने सदा गौरव समझा है। अगणित धर्मशालाएँ, अनगिनती कुएँ, असंख्य प्याऊ और मुफ्त भोजन बाँटने की हमारे देश में प्राचीन काल से प्रचलित परम्परा है।

आज समय के साथ यहाँ की भावनाओं में परिवर्तन हो रहे हैं। परोपकार का स्थान स्वार्थ लेता जा रहा है, धर्म और पुण्य के स्थान पर लोगों का ध्यान पैसे पर केन्द्रित हो गया है। तभी धर्मशालाओं का स्थान होटल, मन्दिरों का सिनेमा-घर, पाठशालाओं का महँगे स्कूल और प्याऊ का रेस्टोरेन्ट ले रहे हैं।

यदि इसी का नाम सभ्यता है तो इससे पशु-पक्षी और जंगली लोग कहीं अच्छे हैं। पहले समय का वैद्य परोपकार की दृष्टि से चिकित्सा करता था और रोगी स्वस्थ हो जाने पर उसे भेंट में यथाशक्ति कुछ दे देता था। एक आज का डाक्टर है जो फीस और दवा के दाम पहले रखवा लेता है, चाहे उसके बाहर आते ही रोगी दम तोड़ दे। कितना अन्तर है दोनों में; एक में परोपकार की भावना थी, दूसरे में स्वार्थपूर्ण दूकानदारी का भाव है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है, समाज में बिना घुले-मिले, बिना समाज से सम्पर्क बढ़ाये उसका काम नहीं चल सकता। सामाजिकता का लाभ केवल इतना ही नहीं कि हम तौल कर सौदा दें और गिन कर पैसे ले लें। जब तक हम आपत्ति के समय बिना बदला चाहे दूसरे की सहायता का भाव मन में नहीं लावेंगे, तब तक हम समाज में रहने का लाभ नहीं उठा सकते। जब लोग एक दूसरे के प्रति परोपकार की भावना रखेंगे तो शत्रुता और द्वेष का प्रश्न ही नहीं उठता। वैर तो वहाँ होता है, जहाँ कोई दूसरे को अकारण हानि पहुँचाने की चेष्टा करता है।

परोपकार के कारण मनुष्य का अन्तःकरण पवित्र होता है और आत्मा का प्रकाश झलकने लगता है। परोपकार से मन को शान्ति मिलती है, वह हजारों रुपये लगाकर भी नहीं प्राप्त हो सकती। परोपकारी व्यक्ति धीरे-धीरे सारे विश्व को अपना परिवार समझने लगता है, उसका कोई शत्रु नहीं रह जाता। परोपकारी व्यक्ति में सहन-शक्ति भी बढ़ जाती है। वह छोटे-मोटे दोष यूँ ही क्षमा कर देता है। किसी के हृदय को प्रभावित करने का, उसे सदा के लिए अपना बनाने का एकमात्र उपाय उपकार है। उपकार के बिना सच्ची सामाजिकता और विश्व-बन्धुत्व स्वप्न ही रहेंगे।

भारतवर्ष धर्म-प्राण देश रहा है। इस देश के निवासियों ने भोग की अपेक्षा त्याग को अधिक महत्व दिया है। परोपकार उनका प्रिय गुण रहा है। बहुतों ने तो इसके लिये जीवन तक का बलिदान कर दिया था। दधीचि से सब देवों की भलाई के नाम पर रीढ़ की हड्डी माँगी गई तो उन्होंने इसे सहर्ष स्वीकार करके शरीर का त्याग कर दिया। उसी से इन्द्र ने वज्र का निर्माण करके वृत्र

नाम के राक्षस को मारा। दधीचि ने समाज के कल्याण के सम्मुख अपने स्वार्थ को कोई स्थान नहीं दिया। महात्मा बुद्ध, शंकराचार्य, स्वामी दयानन्द और महात्मा गांधी ने अपना सारा जीवन ही परोपकार में लगा दिया। भगवान् बुद्ध ने जब देखा कि लोग हिंसा और विकृत यज्ञों के चक्कर में भाँति-भाँति के दुःख भोग रहे हैं, तो उन्होंने अपने सुख का त्याग करके उन्हें मार्ग दिखाना ही उचित समझा। इसी प्रकार बौद्ध महन्तों के चरित्र बिगड़ने पर जब वे देश को रसातल में ले जाने लगे तो अकेले शंकर ने पैदल घूमकर बौद्ध धर्म की जड़ ही काट दी। स्वामी दयानन्द ने भी भाँति-भाँति के प्रलोभन ठुकराकर लोगों को सच्चा मार्ग दिखाने का उपकार जीवन भर किया। महात्मा गांधी को जीवन भर बड़े-बड़े कष्ट उठाने पड़े, अन्त में एक हत्यारे की गोली का शिकार होना पड़ा, किन्तु वे सारे देश को स्वतन्त्र बनाने का उपकार कर ही गये। इन लोगों के मार्ग में पग-पग पर बाधाएँ आईं, किन्तु इन्हें इनके मार्ग से नहीं डिगा सकीं।

जब सरिताएँ दूसरों को जल देती हैं, वृक्ष फल लुटाते हैं और गायें अमृत के समान दूध की धारा बहाती हैं तो फिर मनुष्य ही क्यों पीछे रहे? सबसे अधिक शक्तिशाली होने के नाते उसे तो सबसे आगे रहना चाहिये। इस देश में परोपकार के लिये प्राण देने में ही गौरव का अनुभव किया जाता रहा है, दूसरों को ठगकर आनन्द उड़ाने में नहीं। जटायु ने अपरिचित होते हुए भी सीता की सहायता करना अपना कर्तव्य समझा और परोपकार के नाते प्राण रहते रावण को आगे नहीं बढ़ने दिया। बहुत से राजपूतों एवं मुगल बादशाहों ने तो पुराने वैर-भाव भुलाकर भी समय पर लोगों को सहायता दी।

आज हमारे समाज और देश की जो अवनति होती जा रही है, इसका कारण परोपकार की भावना का न रहना ही है। आज समाज को एक-दो नहीं, हजारों-लाखों उपकार-कर्त्ताओं की आवश्यकता है। सभी सुधार की आवश्यकता अनुभव करते हैं, सभी दुर्दशा से दुःखी हैं, पर स्वार्थ का मोह छोड़कर उपकार की भावना को लेकर आगे आने वाला कोई नहीं है। हमारा सब का कर्तव्य है कि अपने मन में परोपकार की भावना को स्थान दें। तभी

हम गांधी, दयानन्द और दधीचि जैसे परोपकारी महात्माओं की उत्पत्ति का वातावरण बना सकेंगे।

१४. विद्यालय का उत्सव

रूपरेखा—

१. उत्सवों की प्राचीन परम्परा।
२. उत्सव की तैयारियाँ।
३. कार्यक्रम।
४. छात्रों पर प्रभाव।
५. उत्सव की सफलता।

मानव-जीवन में उत्सवों की परम्परा उतनी ही पुरानी है, जितनी कि मानव की सभ्यता। उत्सवों से मनोरंजन के साथ-साथ जीवन में एक प्रकार का प्रवाह-सा, एक नवीनता-सी आ जाती है। प्रतिदिन के घिसे-पटे कार्यक्रम से उदास मन परिवर्तन चाहने लगता है। आज के व्यस्त जीवन में उत्सव ही ऐसे साधन रह गए हैं, जब लोग हिल-मिलकर बैठ सकें।

हमारे विद्यालय में धार्मिक, राष्ट्रीय, सामाजिक सभी प्रकार के उत्सव समय-समय पर मनाये जाते हैं, पर इस समय मैं विद्यालय के वार्षिकोत्सव की चर्चा करने जा रहा हूँ। यह उत्सव प्रति वर्ष २० दिसम्बर को मनाया जाता है। वैसे तो हमारे यहाँ के सभी उत्सव देखने योग्य हैं, किन्तु वार्षिकोत्सव को सफल बनाने के लिए तो कुछ भी नहीं उठा रखा जाता। हमारे विद्यालय का वार्षिकोत्सव इतना सफल और प्रभावशाली रहता है कि नगर के लोग इसकी प्रतीक्षा में रहते हैं।

सदा की भाँति इस वर्ष भी उत्सव की तैयारी एक सप्ताह पूर्व होने लगी। रंगीन एवं आकर्षक निमन्त्रण छपवाकर नगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों, छात्रों के अभिभावकों तथा विद्यालय के प्राचीन छात्रों को भेज दिये गये। राष्ट्रीय गीत गाने वाले, अन्त्याक्षरी तथा वाद-विवाद प्रतियोगिता में भाग लेने वाले छात्रों ने अभ्यास करना आरम्भ कर दिया। कला-अध्यापक की आज्ञानुसार छात्रों ने कला

प्रदर्शिनी के लिए अपनी सुन्दर-सुन्दर वस्तुएँ बनानी आरम्भ कर दीं। दो दिन पहले से तो उत्सव की तैयारियाँ बड़े जोरों से होने लगीं। तमाम दीवारों पर सफेदी होने लगी, टूटी हुई किवाड़ों और खिड़कियों की मरम्मत आरम्भ हुई और रौस आदि को ठीक किया जाने लगा। उत्सव से एक दिन पहले ही तमाम विद्यालय सुन्दर रंगीन झंडियों तथा रिबनों से सजा दिया गया। एक ओर खेल के मैदान में विशाल मंच बनाया गया, जिसके सजाने में कोई बात उठा नहीं रखी गई थी। स्थान-स्थान पर टँगे आदर्श वाक्य एवं महापुरुषों के चित्र उसकी शोभा में चार चाँद लगा रहे थे। सभापति का मंच प्राचीन ढङ्ग से कालीन और मसनद से सजाया गया था। उसके पीछे और इधर-उधर रखे गमले बगीचे का भ्रम उत्पन्न कर रहे थे। पण्डाल में छात्रों के बैठने के लिए दरी और प्रतिनिधियों के बैठने के लिए कुर्सियों का प्रबन्ध था। विद्यालय की वार्षिक रिपोर्ट एवं सभापति का भाषण पहले ही हजारों की संख्या में छपवा लिये गये थे। सभी छात्रों को उस दिन साफ कपड़े पहनकर आने, एक-दूसरे के साथ नम्र व्यवहार करने एवं अनुशासन में रहने की चेतावनी दे दी गई थी।

उत्सव के कार्यक्रम में पहला स्थान प्रभात फेरी का था। इसमें केवल नगर में रहने वाले छात्र एवं अध्यापक ही सम्मिलित हो सकते थे। प्रभात फेरी छः बजे प्रारम्भ होकर साढ़े सात बजे समाप्त हुई। ठण्ड अधिक होने पर भी छात्रों के उत्साह में कोई कमी नहीं थी। प्रभाव फेरी के समय छात्र ऐसे नारे लगाते जा रहे थे, जिससे लोगों में शिक्षा का प्रचार हो। वे इसी आशय का एक गीत भी सामूहिक रूप में गाते थे, जो हमारे विद्यालयों के ही एक अध्यापक का लिखा हुआ था।

उत्सव की वास्तविक कार्यवाही नौ बजे आरम्भ हुई। अवकाश होने पर भी प्रत्येक छात्र को उपस्थित रहना अनिवार्य था। छात्रों एवं अतिथियों के बैठ जाने पर कुछ अध्यापकों को छात्रों पर नियन्त्रण रखने और कुछ को आने वाले अथितियों का स्वागत करने के लिए नियुक्त कर दिया गया। आर्यसमाजी संस्था होने के कारण उत्सव का प्रारम्भ हवन से हुआ। सभापति वाले मंच पर हवनकुण्ड रखकर हवन करते हुए लोग बड़े अच्छे लग रहे थे। हवन

समाप्त होने पर हवनकुण्ड एवं अन्य चीजें हटादी गईं। इसके बाद सभापति का चुनाव हुआ। यद्यपि सभापति का निश्चय पहले ही हो चुका था, फिर भी नियम का पालन तो करना ही था। सभापति के स्थान पर हमारे नगर के एक प्रसिद्ध सेठ विराजमान थे, जो पहले विद्यालय के छात्र रह चुके थे एवं अपनी दानशीलता के लिये बड़े प्रसिद्ध थे। विद्यालय के अधिकारियों को उनसे हॉल के निर्माण के लिये पर्याप्त धन की आशा थी।

मंच पर माइक पहले ही रखा हुआ था। आजकल इसके अभाव में किसी भी उत्सव की पूर्णता की कल्पना नहीं की जा सकती। दो सुरीले कण्ठ वाले बालकों ने मधुर स्वर में राष्ट्रीय गीत गाया। जितनी देर तक गीत गाया गया, लोग खड़े रहे। इसके बाद प्रिंसिपल महोदय ने वार्षिक रिपोर्ट पढ़ते हुए वर्ष भर के आय-व्यय का ब्यौरा तथा परीक्षा-फलों का निर्देश किया। उन्होने यह भी बताया कि हमारा विद्यालय आज से ४५ वर्ष पूर्व संस्कृत पाठशाला के रूप में एक कमरे में चालू हुआ था जो अब उन्नति करते-करते एक सम्पन्न इन्टर कालिज बन गया है। जहाँ आज चौदह सौ विद्यार्थी साठ अध्यापकों से शिक्षा ग्रहण करते हैं, वहाँ आरम्भ में एक अध्यापक और सात छात्र थे। प्रधानाचार्य जी ने विद्यालय की अन्य आवश्यकताओं को बताते हुए हॉल-निर्माण पर विशेष जोर दिया और बताया कि इसके अभाव में विद्यालय के बहुत से कार्य अधूरे रह जाते हैं।

वार्षिक विवरण समाप्त होने के बाद कुछ छात्रों ने दो एकांकी नाटक तथा एक ग्राम गीत प्रस्तुत किया। ये सब चीजें हमारे विद्यालय के अध्यापकों द्वारा ही लिखी गई थीं। अन्त्याक्षरी और वाद-विवाद प्रतियोगिता पहले ही हो चुकी थी। अब तो केवल विजयी छात्रों को सभापति द्वारा पुरस्कार वितरण करना शेष था। इन छात्रों के साथ-साथ खेल में विजयी होने वाले एवं परीक्षा में उच्च स्थान प्राप्त करने वाले छात्रों को भी पुरस्कार दिया गया। सभापति जी प्रसन्नतापूर्वक इनाम दे रहे थे और लड़कों का अभिवादन स्वीकार कर रहे थे। अन्त में सभापति जी का भाषण हुआ, जिसमें उन्होंने छात्रों को देश का भावी नागरिक बताते हुए परिश्रम से अध्ययन करने एवं अनुशासन में रहने पर जोर दिया। सभापति जी ने हॉल के लिये आधा व्यय देने का भी

वचन दिया। बच्चों को मिठाई के लिये पाँच सौ रुपया देकर सेठ जी ने मानो प्रसन्नता की गंगा बहा दी। इसके बाद अतिथियों को कला-प्रदर्शिनी दिखाई गई तथा जलपान कराया गया। बाद में छात्रों ने भी चार-चार लड्डू और दो दिन की छुट्टी प्राप्त की।

रात को उसी पण्डाल में कवि-सम्मेलन का आयोजन किया गया था। स्थानीय एवं समीप के लोगों के अतिरिक्त बाहर के कवि भी उसमें भाग लेने पधारे थे। कवि-सम्मेलन का समय तो सात बजे ही था, पर वह ८ से पहले आरम्भ नहीं हो सका। कवि-सम्मेलन में इतना आनन्द आया कि लोग डेढ़ बजे तक मन्त्र-मुग्ध से बैठे रहे।

उत्सव का छात्रों पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। उनके मन एक अलौकिक प्रसन्नता से भर गये, उनके मुख आनन्द से दमकने लगे। आँख फोड़ने वाली पाठ्य-पुस्तकों और जांनलेवा रिटिन वर्क को भूलकर वे आनन्द के सागर में गोते लगाने लगे। उनके अन्दर ऐसी स्फूर्ति और उमङ्ग छा गई कि वे खिले हुए फूल से प्रसन्न दिखाई देने लगे। मिठाई के नाम से तो छात्रों के पाँव ही भूमि पर नहीं पड़ रहे थे। उत्सव से अध्यापकों को भी प्रसन्नता हुई। इस बहाने उन्हें कम से कम एक सप्ताह तो चैन मिल ही गया और फिर कार्य का परिवर्तन हो जाने से भी मन का भार उतर जाता है।

उत्सव प्रति वर्ष की भाँति इस वर्ष भी सफल रहा था। सभी अतिथि उत्सव की सफलता की चर्चा करते हुए लौट रहे थे। हमारे विद्यालय के उत्सव की सफलता छात्रों और अध्यापकों के सहयोग में निहित है। प्रिंसिपल साहब भी इसके लिये कम धन्यवाद के पात्र नहीं हैं। वे जब तक सब काम स्वयं नहीं देख लेते उन्हें सन्तोष नहीं होता। उत्सवों का प्रबन्ध करने के लिए तो वे विशेषज्ञ समझे जाते हैं। बहुत से लोग उनसे इस विषय में सलाह लेने आया करते हैं।

१५. भारतीय त्यौहार

रूपरेखा——

१. त्यौहार और संस्कृति।

२. मुख्य त्यौहारों का परिचय ।
३. त्यौहारों के लाभ ।
४. भारतीय त्यौहारों की विशेषताएँ ।
५. सुधार की आवश्यकता ।

त्यौहारों का सम्बन्ध मानव मात्र से है। विश्व का न कोई ऐसा देश मिलेगा और न कोई ऐसी जाति, जिसमें त्यौहार न मनाये जाते हों। सभ्य जातियों की तो बात ही क्या, असभ्य और जंगली जातियाँ भी त्यौहार मनाती हैं। यह बात दूसरी है कि उनके त्यौहारों का रूप इतना सुधरा हुआ नहीं होता। त्यौहारों में एक प्रकार से संस्कृति का इतिहास छिपा रहता है। जिस जाति की सभ्यता जितनी ही प्राचीन और समृद्ध होगी उसमें उतने ही अधिक और अच्छे त्यौहार मनाये जाते होंगे।

प्रत्येक त्यौहार किसी न किसी स्मृति में मनाया जाता है। कुछ त्यौहार विजय-पर्व के रूप में मनाये जाते हैं, कुछ महापुरुषों की स्मृति के रूप में और कुछ किसी विशेष प्रसन्नता के कारण। त्यौहार मनाने से प्राचीन घटनाओं की स्मृति अपने आप जागृत हो जाती है। इस प्रकार त्यौहार प्राचीन सभ्यता के खण्डहर ही नहीं, उसके स्मारक एवं प्रहरी भी हैं। कुछ लोग त्यौहारों को पेटू लोगों द्वारा चलाया हुआ खाने का बहाना बताते हैं, पर यह बात बिल्कुल कल्पना पर आधारित है।

भारत तो एक प्रकार से त्यौहारों का ही देश है। यहाँ शायद ही कोई मास ऐसा होगा, जिसमें दो-चार त्यौहार न पड़ जाते हों। भारत की सभ्यता भी तो विश्व में लगभग सबसे पुरानी है। यदि यहाँ रहने वाली सभी जातियों के पर्वों की गणना करें तो कोई भी दिन बिना त्यौहार के नहीं बीतेगा। नीचे कुछ त्यौहारों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है :—

(क) **रक्षाबन्धन**—यह मुख्य रूप से ब्राह्मणों का त्यौहार है। प्राचीन काल में इसी दिन पुराने छात्रों का पाठ समाप्त और नयों का प्रारम्भ किया जाता था। इस दिन ब्राह्मण किसी नदी के किनारे एकत्र होकर वर्ष भर के कृत्यों पर विचार करते थे। इसी दिन ब्राह्मणों द्वारा इन्द्र के हाथ में रक्षासूत्र

बाँधे जाने के कारण इसका नाम रक्षाबन्धन पड़ गया है। आज ब्राह्मणों में उसी प्रथा का बिगड़ा रूप पाया जाता है।

(ख) **विजयादशमी**—यह त्यौहार क्षत्रियों का है। इस दिन क्षत्रिय लोग अपनी सेना का बल आँकते थे, अस्त्र-शस्त्रों की सफाई करते थे और इसी दिन को शत्रु पर चढ़ाई करने के लिए निश्चित करते थे। न जाने कैसे इसका सम्बन्ध रावण के वध से जोड़ दिया गया है। रावण तो इसके बहुत दिन बाद मारा गया था।

(ग) **दीपावली**—यह त्यौहार मुख्य रूप से वैश्यों का है। इस दिन वे वर्ष भर के व्यापार का हिसाब जोड़कर हानि-लाभ का अनुमान करते थे और आगामी वर्ष के लिए नीति निश्चित करते थे। अब इस त्यौहार को सभी लोग मनाते हैं। घरों की सफाई, लक्ष्मी-पूजा और दीप जलाना इसका कार्यक्रम रह गया है। बहुत से लोग भाग्य आजमाने को इस दिन जुआ भी खेलते हैं।

(घ) **होली**—यह त्यौहार चारों वर्ण मिलकर मनाते हैं। यह वास्तव में नई फसल की प्रसन्नता में मनाया जाता है। इस दिन सब लोग ऊँच-नीच और वैर-भाव भूलकर गले मिलते हैं। आजकल होली जलाने की जो प्रथा प्रचलित है, यह प्राचीन काल के सामूहिक यज्ञ का विकृत रूप है। प्रह्लाद की बुआ होलिका का सम्बन्ध भी इससे जोड़ दिया गया है। कुछ लोग इस दिन शराब पीकर गाली बकने में ही पुण्य समझते हैं।

(ङ) **रामनवमी**—यह त्यौहार चैत्र के शुक्ल पक्ष में भगवान् राम के जन्म की स्मृति में मनाया जाता है।

(च) **कृष्णाष्टमी**—यह पर्व भादों बदी में भगवान् कृष्ण के जन्म की स्मृति में मनाया जाता है।

उपर्युक्त सभी पर्व हिन्दुओं के हैं। नीचे मुसलमानों और ईसाइयों के कुछ त्यौहार दिये जाते हैं :—

(१) **ईद**—यह दो प्रकार की होती है। एक ईदुलजुहा, और दूसरी ईदुलफितर। इनका सम्बन्ध मुहम्मद साहब के मक्का से मदीना पहुँचने एवं कुर्बानी देने से है। ईदुलफितर से एक मास पहले मुसलमान रोजा भी रखते हैं।

(२) **मुहर्रम**—यह त्यौहार यजीद द्वारा मुहम्मद साहब के धेवते इमाम

हुसैन के कत्ल किये जाने की स्मृति में मनाया जाता है। इसमें एक कागज का पुतला निकाला जाता है, जिसे ताजिया कहते हैं।

(३) **क्रिसमस डे**—यह ईसाइयों का त्यौहार है। इस दिन से दिन का घटना बन्द हो जाता है। इसीलिए इसे बड़ा दिन भी कहते हैं। इङ्गलैंड ठंडा देश है, वहाँ इसे ग्रीष्म का दूत समझा जाता है।

उक्त त्यौहारों का परिचय केवल इन जातियों के भारत में बस जाने के कारण दे दिया गया है, वैसे इन त्यौहारों का न तो उद्गम ही भारतीय है और न इनके मनाने की परम्परा अन्य भारतीय त्यौहारों के समान है। जैन, बौद्ध और सिक्ख लोग भी अपने आदि-आचार्यों के जन्म-दिवस को महावीर जयन्ती, बुद्ध जयन्ती और गुरु नानक जन्म-दिवस के रूप में मनाते हैं। स्वतन्त्रता मिलने के बाद से १५ अगस्त और २६ जनवरी की गणना भी त्यौहारों में ही होने लगी है। वास्तव में ये दोनों राष्ट्रीय त्यौहार हैं और इन्हें भी होली-दिवाली के समान लोकप्रियता मिलनी चाहिए। महात्मा गांधी का जन्म-दिवस भी राष्ट्र के उद्धारकर्त्ता होने के नाते राष्ट्रीय त्यौहार के ही रूप में मनाया जाता है।

त्यौहार मनाने से अनेक लाभ हैं। इनके द्वारा मनुष्य के यन्त्रवत् जीवन में कुछ परिवर्तन आ जाता है। जो लोग गरीब हैं, प्रतिदिन बढ़िया भोजन और अच्छे कपड़े नहीं पहन सकते, वे इसी बहाने इनका आनन्द ले लेते हैं। काम से छुटकारा पाकर इसी बहाने से एक दूसरे से मिलते और चैन की साँस लेते हैं। यदि ये त्यौहार न हों तो बेचारे गरीब आदमी तो काम की चक्की में बुरी तरह पिस जावें। त्यौहारों के ही द्वारा हम अपनी सांस्कृतिक घटनाएँ याद रख सकते हैं। बहुत से त्यौहार महापुरुषों की स्मृति में मनाये जाते हैं, जिनसे हमें उनके आदर्श पर चलने की प्रेरणा मिलती है। त्यौहार हमें प्रसन्नता और नवजीवन का सन्देश देकर सुखमय जीवन की ओर संकेत करते हैं। मरुस्थल के समान नीरस जीवन में भी ये त्यौहार जलधारा और हरियाली का काम करते हैं। त्यौहारों पर सभी प्रसन्न होने की चेष्टा करते हैं।

अन्य देशों के त्यौहारों की अपेक्षा भारतीय त्यौहारों में विशेषताएँ हैं।

भारतीय त्यौहार वास्तव में यहाँ के ऋषि-मुनियों के चिन्तन का फल हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये शोक से सम्बन्ध न रखकर केवल हर्ष से ही सम्बन्धित हैं। मुसलमानों के मुहर्रम की भाँति हमारे यहाँ कोई भी त्यौहार शोक के रूप में नहीं मनाया जाता। भारतीय त्यौहारों में राम, कृष्ण जैसे महापुरुषों की भी जन्म-तिथि ही मनाई जाती है, जिन्हें भगवान् का अवतार माना जाता है। यही ठीक भी है; शोक अपने-अपने क्या कम हैं, जो सामूहिक रूप में शोक मनाने का आयोजन किया जावे ?

भारत के चारों मुख्य त्यौहार रक्षाबन्धन, विजयादशमी, दीपावली और होली पूर्ण वैज्ञानिक हैं। ये क्रमशः ज्ञान, बल, धन और एकता की प्राप्ति के सामूहिक प्रयत्न बतलाते हैं। ऐसी कौन-सी जाति होगी, जिसे इनमें से एक की भी आवश्यकता न पड़े। ये चारों त्यौहार प्रत्येक सभ्य जाति में किसी न किसी रूप में अवश्य मनाये जाते होंगे। इसी प्रकार त्यौहारों के कार्यक्रम एवं भोजन-व्यवस्था निश्चित करते समय भी मौसम का पूरा ध्यान रखा गया है। श्रावणी पर खीर खाने की प्रथा है, जो पित्त को शान्त करती है। यही बात होली पर डाले जाने वाले टेसू के फूलों से बने रंग के विषय में है। उसके घोल से ऐसी अनेक त्वचा सम्बन्धी बीमारियाँ नहीं होतीं जिनके होने की सम्भावना ऋतु-परिवर्तन के कारण रहती है।

आज हमारे त्यौहारों का रूप इतना बिगड़ गया है कि वे वास्तविकता से बहुत दूर चले आये हैं। उनके साथ अनेक दन्त-कथाएँ जोड़कर इतना गलत रूप दे दिया गया है कि उनसे किसी उद्देश्य की पूर्ति के स्थान में उल्टी हानि होती है। आवश्यकता इस बात की है कि इनमें घुसी हुई बुराइयों को निकाल-कर वास्तविकता की खोज की जावे। इसके बिना त्यौहारों से कोई लाभ नहीं है। खाना पकाना और समय व्यर्थ करना ही इनका फल निकलता है।

१६. यात्रा का वर्णन

रूपरेखा—

१. यात्रा का उद्देश्य।
२. तैयारियाँ।

३. मार्ग के कष्ट एवं दृश्य ।
४. कोई स्मरणीय घटना ।
५. जीवन पर प्रभाव ।

यात्रा करने में मुझे क्या, सभी को आनन्द आता है । यात्रा में मुझे न भूख लगती है न प्यास, खड़े-खड़े भीड़ में चलना भी मुझे नहीं अखरता । मेरा ध्यान तो मार्ग में पड़ने वाले दृश्यों और साथी मुसाफिरों पर रहता है । मुझे तेज सवारी में बैठकर ही यात्रा करने में आनन्द आता है । बैलगाड़ी से तो मैं पैदल चलना अधिक पसन्द करता हूँ, क्योंकि उसमें मुझे चक्कर और उल्टी आने लगती है ।

वार्षिक परीक्षाएँ समाप्त हो जाने से कोई काम नहीं रह गया था, अतः कहीं यात्रा पर जाने की बड़ी उत्कट इच्छा हो रही थी । सौभाग्य से तभी सोमवार की पूर्णिमा को ग्रहण पड़ा । पंडितों ने उसी तिथि पर हरिद्वार में अर्द्धकुम्भी होने की घोषणा भी कर दी । माताजी अधिक धर्म-परायण होने के कारण ऐसे अवसरों को कभी नहीं छोड़तीं, इसलिए यह सूचना मैंने उन्हें विस्तारपूर्वक सुनाई । वे तुरन्त चलने को प्रस्तुत हो गईं और पड़ौस की दो-एक सहेलियों से सलाह करने गईं । निश्चय हो जाने पर पिताजी से आज्ञा ली गई । वे तो ऑफिस की छुट्टी न होने से जा नहीं सकते थे, सारा उत्तर-दायित्व मुझे ही सौंपा गया ।

अभी ग्रहण की पूरनमासी के पन्द्रह दिन थे, हमें वहाँ चार-पाँच दिन पहले ही पहुँच जाना था । यात्रा की तैयारियाँ होने लगीं । ऐसे स्थानों पर प्रायः बीमारियों के फैलने का डर रहता है । उन दिनों हैजे का डर था । अतः प्रत्येक यात्री के लिए उसका टीका लगवाना आवश्यक कर दिया गया । हम लोगों ने भी सबसे पहले इसी काम को कर डाला । इसके बाद खाने की पर्याप्त सामग्री बाँधी गई, क्योंकि वहाँ एक तो भीड़ के कारण चीज़ें अच्छी नहीं मिलतीं, दूसरे बहुत महँगी होती हैं । ओढ़ने-बिछाने का पूरा बिस्तर भी ठीक किया गया, क्योंकि वहाँ दिन में गर्मी और रात में काफी ठंड पड़ती सुनी जाती है । सभी आवश्यक सामान चलने की तिथि से एक दिन पहले ही बाँधकर ठीक से रख दिये गये । मेले की भीड़ में अक्सर गिरहकट चलते हैं, इसलिए

रुपया रखने का भी प्रबन्ध कर लिया गया। यह निश्चय हुआ कि रुपयों को कई जगह पर रखा जाए, जिससे जेब कटने पर एक ही जगह का पैसा जाये।

दशमी को प्रातःकाल हम चार व्यक्ति घर से ताँगे द्वारा चले। एक मैं, एक मेरी माताजी और दो उनकी वृद्धा पड़ोसिनें। गाड़ी स्टेशन से आठ बजे के लगभग छूटती थी, पर हमने पहले ही वहाँ पहुँच जाना उचित समझा। ताँगे का मार्ग बड़ी कठिनाई से कटा, क्योंकि सड़क में जगह-जगह गड्ढे पड़ गये थे। इस पर भी मुसीबत यह कि घोड़ा कहीं-कहीं अड़ जाता था। माताजी मुझ पर नाराज हो रही थीं कि ऐसा ताँगा क्यों लाया? पर मेरा इसमें क्या दोष था? न तो मैं सभी ताँगों के घोड़ों से परिचित हूँ और न घोड़े के माथे पर कुछ लिखा रहता है। कुछ भी हो, उसने हमें ठीक समय पर स्टेशन पहुँचा दिया।

स्टेशन पर बड़ी भीड़ थी। मुसाफिरखाना भरा हुआ था। यात्रियों में हरिद्वार जाने वालों की संख्या ही अधिक थी। टिकट की खिड़की के सामने बहुत बड़ी लाइन लगी हुई थी। पान, सिगरेट, फल आदि बेचने वाले तरह-तरह की आवाजों में शोर मचाकर लोगों का ध्यान अपनी ओर खींच रहे थे। कुत्ते और छूटी हुई गायें इधर-उधर घूम रही थीं। शंटिंग करता हुआ माल-गाड़ी का एन्जिन अलग हल्ला मचा रहा था। इतनी लम्बी लाइन में घंटों खड़े रहने की कल्पना से ही मुझे पसीना छूट गया। तभी मुझे एक उपाय सूझा। महिला खिड़की पर भीड़ नहीं थी। मैंने माताजी से जल्दी टिकट लेने की प्रार्थना की। टिकट मिल जाने के बाद कुलियों द्वारा सामान उठवाकर प्लेट-फार्म पर पहुँचे। वहाँ की भीड़ देखकर तो गाड़ी में स्थान मिलने की आशा बिल्कुल नहीं रही। पर हमारा एक कुली बड़ा साहसी था, उसने आशा दिलाई कि स्थान किसी न किसी प्रकार मिलेगा ही।

घन्टी बजी और लोग चौकन्ने हो गये। सिगनल गिरते ही तमाम प्लेट-फार्म की हलचल बढ़ गई। थोड़ी देर बाद जब भीमकाय कनैडियन एन्जिन चीत्कार करता हुआ आया तो प्लेटफार्म की भीड़ इस प्रकार उत्तेजित हो गई मानो सागर में ज्वार आ गया हो। गाड़ी में पहले से ही काफी मुसाफिर

बैठे थे, इधर स्टेशन पर भी इतनी सवारियाँ थीं कि उनसे बिल्कुल खाली गाड़ी
भर सकती थी। उतरने वाले सँभल भी न पाये थे कि चढ़ने वालों ने
खिड़की में होकर बेतहाशा सामान फेंकना और कूदना आरम्भ कर दिया।
उतरने वालों की अपेक्षा चढ़ने वालों की संख्या बहुत अधिक थी। सौभाग्य से
हमारे सामने एक ऐसा डिब्बा आकर खड़ा हुआ, जिसमें बहुत कम लोग बैठे
थे। मैंने जल्दी से घुसकर इतना स्थान घेर लिया कि हम सब आराम से बैठ
सकें। हमारा सामान ऊपर रखा भी नहीं गया कि डिब्बे में इतनी भीड़ घुस
आई कि उन्हें खड़े होने को भी स्थान नहीं था। लोग एक दूसरे को बुरी तरह
धकेल रहे थे। हमें बैठने का पर्याप्त स्थान मिल गया था, इसलिए हम तो
उनकी परेशानी का अनुमान ही कर सकते हैं।

गर्मी के मारे परेशान हो रहे थे, जब गाड़ी चली तब कुछ हवा आई।
खिड़की के पास बैठने के कारण मुझे इधर-उधर के खेत देखने की सुविधा थी।
अधिकांश खेत खाली पड़े थे। कुछ में ईख और तरबूज-खरबूजों की बेलें
लहलहा रही थीं। गाड़ी में से दूर के पेड़ और गाँव दौड़ते से ज्ञात हो रहे थे।
नीचे काम करते आदमी बच्चों के समान छोटे लग रहे थे। मार्ग में कई सामान
बेचने वाले और नीलाम करने वाले आये। मुझे सबसे अच्छा एक दाँत
उखाड़ने वाला लगा जो बिना दर्द के उँगली से दाँत उखाड़ता था। हमें
मुरादाबाद गाड़ी बदलने में भी काफी परेशानी रही। मुझे तो आगे खड़े-खड़े
ही जाना पड़ा। हम संध्या होते-होते हरिद्वार पहुँच गये थे।

मार्ग में अनेक विचित्र लोग मिले। उनके भिन्न-भिन्न प्रकार के वस्त्रों
को देखकर तथा समझ में न आने वाली बोली को सुनकर काफी मनोरंजन
रहा। मार्ग में एक मुसाफिर की जेब कट गई। बेचारे का टिकट भी उसी में
था। विवशता के कारण उसकी हिलकी भर आई। एक बार टिकट देखने वाला
भी हमारे डिब्बे में आया। वह बड़े तेज स्वभाव का था। उसने सभी बे-टिकट
साधुओं को नीचे उतार दिया तथा अन्य लोगों से जुरमाना लेकर टिकट बना
दिया। एक आदमी ने उसे रिश्वत देनी चाही तो वह बुरी तरह भड़क गया और
उसे जेल भिजवाने पर तैयार हो गया। एक घटना जो मुरादाबाद जंकशन पर
घटी, मुझे कभी नहीं भूल सकती। पुलिस वाले दो सुन्दर युवती महिलाओं को

पकड़े लिये जा रहे थे। वे वेशभूषा से सभ्य और पढ़ी-लिखी लग रही थीं। पूछने पर ज्ञात हुआ कि इन्होंने एक मुसाफिर के डेढ़ हजार रुपए के नोट चुराकर कपड़ों में छिपा लिये थे। वह फाटक से बाहर निकल गई थीं, परन्तु पुलिस के सिपाही को इनकी आपसी बातचीत से कुछ सन्देह हो गया तो उसने उन्हें रोक लिया। तभी उक्त मुसाफिर की रिपोर्ट मिली। तलाशी होने पर उनके पास रुपये के अलावा एक रिवाल्वर भी निकला। मेरे दिमाग में यह बात कई दिन तक चक्कर काटती रही। हमारे देश का कितना पतन हो गया है कि महिलाएँ भी ऐसे अपराध करने लगी हैं।

यात्राओं में कष्ट तो होता ही है और हमें भी थोड़ा बहुत हुआ ही, किन्तु यात्राएँ जीवन का आवश्यक अङ्ग हैं। इनसे अनुभव बढ़ता और साहस का उदय होता है। बिना यात्रा किए घर पड़ा-पड़ा मनुष्य निकम्मा और कूप-मंडूक बन जाता है। यात्रा करने से सहानुभूति, परोपकार और भाई-चारे की शिक्षा भी मिलती है। कभी-कभी यात्राओं में ऐसे लोग भी मिल जाते हैं, जिनकी मित्रता जीवन भर चलती है और कभी-कभी बड़ी लाभदायक सिद्ध होती है। किसी के धोखे में आये कि चक्कर में पड़े। हरिद्वार की यात्रा तो मुझे सदा स्मरण रहेगी। उसका आनन्द निराला था।

१७. पुस्तकालय

रूपरेखा—

१. पुस्तकालय का उद्देश्य।
२. सुविधा और लाभ।
३. पुस्तकालयों के भेद।
४. एक पवित्र परम्परा।
५. देश का उत्थान।

मनुष्य में ज्ञान-पिपासा आदिकाल से पाई जाती है। इस प्यास को बुझाने के अनेक साधनों में पुस्तकें पढ़ना भी एक है। पुस्तकों में विद्वानों के पवित्र और कल्याणकारी विचार भरे रहते हैं। ऐसी पुस्तकें पढ़ने में जो समय बीतता है,

वह बड़ा उत्तम माना गया है। वैसे तो पुस्तकों का संग्रह करना और उन्हें
सुरक्षित रखना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है किन्तु इस उद्देश्य की पूर्ति पुस्तका-
लय ही कर सकते हैं। पुस्तकालयों की प्रथा बहुत प्राचीन मालूम होती है।
पुराने समय में न तो कागज बनाने के कारखाने थे और न छपाई की कला
का आविष्कार हुआ था, इसलिये पुस्तकें पेड़ के पत्तों, छाल या पशुओं के चमड़े
पर हाथ से लिखी जाती थीं। ऐसी पुस्तकें बहुत कम संख्या में होती थीं, अत-
एव इनका रखना प्रत्येक व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं था। राजा-महाराजा या
धनी सेठ ही पुस्तकों का संग्रह कर पाते थे। ऐसी बहुमूल्य वस्तु संग्रह करके
उसकी रक्षा कौन नहीं करेगा? अतएव पुस्तकालय रखने की भावना उसमें
इसी प्रकार आई होगी।

आज कागज और छपाई की सुविधा होने पर भी पुस्तकालयों का महत्व
उतना ही है वरन् उससे भी अधिक है। अब उनके उद्देश्य में संग्रह और सुरक्षा
के साथ-साथ जन-साधारण की सुविधा प्रमुख है। आज के बढ़ते हुए व्यय और
चढ़ती हुई कीमतों के समय में हर आदमी सभी पुस्तकें खरीद कर नहीं पढ़
सकता। एक बार-दो बार पढ़ने के बाद पुस्तक का उपयोग भी उसके लिए
विशेष नहीं रहता। ऐसी अवस्था में लोग पुस्तकालयों से ही पुस्तकें लाकर
पढ़ते हैं। पुस्तकालयों का आरम्भ चाहे किसी भावना से हुआ हो, आज वे
जन-जन तक ज्ञान का प्रकाश पहुँचाने का पवित्र कार्य कर रहे हैं।

पुस्तकालय से जन-साधारण को ही नहीं, बड़े-बड़े धनी और विद्वानों को भी
लाभ पहुँचता है। इतनी शक्ति बहुत कम लोगों में है कि साहित्य की सभी
पुस्तकें मोल लेकर पढ़ सकें। यदि खरीद भी लेंगे तो उनकी व्यवस्था करने के
लिए नौकर और रखने के लिए जो स्थान बनाना पड़ेगा, वह पुस्तकालय से
भिन्न नहीं होगा। पुस्तकालयों की सहायता से हम थोड़े से मूल्य में अधिक से
अधिक ज्ञान संचय कर सकते हैं। पुस्तकों का वास्तविक उपयोग भी पुस्तकालय
में ही हो पाता है, घर पर तो वे कैदी के समान बन्द पड़ी रहती हैं। किसी
भी पुस्तक की सार्थकता इसी में है कि उसे अधिक से अधिक लोग पढ़ें। निजी
पुस्तक दूसरों को तो क्या परिचितों को भी देने में लोग हिचकिचाते हैं, क्योंकि
उसके खराब होने और कभी-कभी वापस न मिलने की सम्भावना बनी रहती

है । पुस्तकालयों में इस प्रकार की कोई बात नहीं होती, वहाँ तो पुस्तकें रखी ही दूसरों के उपयोग के लिये जाती हैं ।

लोग कुछ रुपया तो जमानत के रूप में जमा करते हैं, जो अन्त में उन्हें मिल जाता है या खोई हुई पुस्तकों का मूल्य उसी में से काट लिया जाता है और कुछ मासिक चन्दा देकर आवश्यकता भर पुस्तकें पढ़ते हैं । पुस्तकालयों में सभी विषय की पुस्तकों की सूची रहती है, जिसे देखकर अपनी पसन्द की पुस्तक चुनी जा सकती है । पुस्तकालय की पुस्तकें एक निश्चित अवधि तक लौटा देनी पड़ती हैं । अधिक रोकने पर दण्ड देना पड़ता है । इस प्रकार एक पुस्तक बहुत से लोगों में काम आ जाती है और पढ़ने वाले थोड़े के पैसे में बहुत सी पुस्तकें पढ़ लेते हैं । परिवार के लिए इससे सस्ता और स्वस्थ मनोरंजन दूसरा नहीं होता । पुस्तकालयों में प्रायः वाचनालय भी होते हैं, जहाँ अनेक पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ने की सबको सुविधा होती है । काम से बचे समय में वहाँ जाकर बिना किसी व्यय के उन्हें पढ़ा जा सकता है । पुस्तकालयों के होते हुए कोई यह अनुभव नहीं कर सकता कि मैं पुस्तकों के अभाव में पढ़ नहीं पा रहा हूँ । वहाँ बहुत सी ऐसी पुरानी और आवश्यक पुस्तकें भी होती हैं, जो बाजार में किसी मूल्य पर नहीं मिल सकतीं ।

पुस्तकालयों के कई भेद होते हैं । बहुत से पुस्तकालय किसी संस्था विशेष के होते हैं और बहुत से सार्वजनिक । विशेष संस्थाओं के पुस्तकालय उन्हीं से सम्बन्धित व्यक्तियों को पुस्तकें पढ़ने को देते हैं; जैसे, विद्यालयों के पुस्तकालयों से केवल विद्यार्थी या अध्यापक ही लाभ उठा सकते हैं । वहाँ पुस्तकें भी प्रायः इसी प्रकार की रखी जाती हैं, जो सम्बन्धित लोगों के अधिक से अधिक काम आ सकें । सार्वजनिक पुस्तकालय ऐसे पुस्तकालयों की अपेक्षा अधिक बड़े होते हैं । उनमें प्रायः सभी विषयों की पुस्तकें रखी जाती हैं । कुछ पुस्तकालय ऐसे भी होते हैं, जिनमें पुस्तकें घर पढ़ने को नहीं दी जातीं, जो चाहे वहीं बैठकर पढ़ सकता है और आवश्यक बातें नोट कर सकता है । ऐसे पुस्तकालयों में आते और जाते समय तलाशी ली जाती है । इनमें पुस्तकें न देने और तलाशी लेने की व्यवस्था इसलिए रखी जाती है कि बहुत से ओछी प्रवृत्ति के लोग

पुस्तकों में से पन्ने फाड़ लेते हैं या पुस्तक बाजार में मिलती न देखकर खोने का बहाना करते हुए मूल्य जमा कर देते हैं।

हमारे देश की अपेक्षा विदेशों में पुस्तकालय अधिक सम्पन्न और सुविधा-पूर्ण हैं। वहाँ के पुस्तकें देने वाले पुस्तकों का हिसाब ही नहीं रखते, पढ़ने वालों की रुचि के अनुसार पुस्तकें चुनने में सहायता भी करते हैं। बहुत से पुस्तकालयों में ऐसी व्यवस्था भी होती है कि मोटर द्वारा देहात में घर बैठे पुस्तकें लेने-देने का काम चलता रहता है। इससे नगर के दूर रहने वालों का समय व्यर्थ नहीं जाता। विदेशों के पुस्तकालय पाठक की माँग पर अपने यहाँ न मिलने वाली पुस्तक मँगाकर देते हैं। कुछ पुस्तकालय ऐसे भी हैं जो दूर-दूर विदेशों में रहने वालों को भी मुफ्त पुस्तकें पढ़ने को भेजते हैं। विदेश के लोगों में हमारी अपेक्षा इस ओर अधिक रुचि है। वे अपना समय व्यर्थ नहीं जाने देते।

सार्वजनिक पुस्तकालयों का होना अत्यन्त आवश्यक है, बिना इनके काम नहीं चल सकता, फिर भी प्रत्येक घर में एक छोटा सा निजी पुस्तकालय अवश्य होना चाहिए। जिस विषय में हमें अधिक काम पड़ता हो, जिसमें हमें अधिक रुचि हो, उसकी आवश्यक एवं प्रसिद्ध पुस्तकें हमें अपने पास रखनी चाहिए। अच्छा हो कि एक छोटा सा कमरा पुस्तकें रखने और पढ़ने के लिये ही नियत कर दिया जावे। विदेशों में यह परम्परा बहुत ज्यादा है। वहाँ किसी भी परिवार की शालीनता, विद्वत्ता और सम्पन्नता का अनुमान उसका पुस्तकालय देखकर ही लगाया जाता है।

पुस्तकालयों का चलन एक पवित्र परम्परा है। प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह पुस्तकालयों को शक्ति भर पुस्तकें या धन दान देकर उन्हें सम्पन्न बनावे। घर में बेकार पड़ी पुस्तकों का उपयोग यही है कि उन्हें पुस्तकालयों में पहुँचवा दिया जावे। इसके साथ पुस्तकालयों से लाभ उठाना भी प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। पढ़ने वालों की उदासीनता से पुस्तकालय का उद्देश्य पूरा नहीं हो पावेगा। हमारे देश की जनता गरीब और अपढ़ है। यहाँ की सरकार को तो लोगों में पुस्तक पढ़ने की रुचि और पुस्तकें देने की सुविधा पर बहुत अधिक ध्यान देना चाहिए।

देश का उत्थान बिना ज्ञान के असम्भव है। मूर्ख जनता पर थोड़े से लोग शासन करके अपना उल्लू सीधा करते रहते हैं। लोगों तक ज्ञान का प्रकाश पहुँचाने के लिए पुस्तकालयों की अत्यन्त आवश्यकता है। इनके अभाव में कोई भी देश उन्नति नहीं कर सकता, उसकी स्वतन्त्रता स्थायी नहीं रह सकती। इनके बिना लोगों के सूखे हृदयों में ज्ञान की सरिता कौन बहावेगा।

१८. गाँव का जीवन

रूपरेखा—

१. गाँवों का प्राचीन सभ्यता से सम्बन्ध।
२. गाँव का सरल और प्राकृतिक जीवन।
३. सुविधाएँ एवं असुविधाएँ।
४. वर्तमान दशा का कारण।
५. सरकार का सहयोग।

K. P.

भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। यहाँ की अधिकांश जनता गाँवों में ही रहती है। ये ही सारे भारतवासियों के अन्नदाता हैं। इन्हीं को भारत का सच्चा नागरिक कहा जा सकता है। बाहर से अधनंगे, कुरूप और असभ्य होते हुए भी ये लोग हृदय के सीधे, सच्चे और पवित्र हैं। भारतवर्ष की सभ्यता का सच्चा रूप ऊँची इमारतों, चौड़ी सड़कों और दौड़ती हुई कारों में ही नहीं है, उसका दर्शन तो गाँव के शान्त वातावरण में ही हो सकेगा। हमारे नगर चाहे कहीं पहुँच गये हों, किन्तु गाँवों में अब भी पुरानी परम्पराएँ सुरक्षित हैं। जहाँ नगरों में एक गिलास पानी के चार पैसे देने पड़ते हैं, वहाँ अब भी बहुत से गाँवों में पानी माँगने वाले की सेवा में दूध, दही या मट्ठा उपस्थित किया जाता है। जिन गाँवों में शहर की विषैली हवा पहुँच गई है, उनकी बात छोड़िये, शेष गाँवों के लोग अब भी सीधे, सच्चे, ईमानदार और अतिथि-सत्कार करने वाले हैं। वहाँ होटल और सरायें नहीं हैं, प्रत्येक व्यक्ति घर आये अतिथि का सत्कार करना अपना कर्त्तव्य समझता है। वे लोग पुरानी सभ्यता की रक्षा किये हुए हैं और नई सभ्यता में लोगों के बह जाने से दुःखी हैं।

गाँवों का प्रकृति से सीधा और निकट का सम्बन्ध होता है। चारों ओर लहलहाते हुए खेत, कलरव करते हुए पक्षी और चरते हुए पशु किसका मन नहीं मोह लेते ? वहाँ के निवासी दिन भर कठोर परिश्रम करके सादा भोजन और वस्त्रों में गुजारा करते हैं। सूर्य की किरणें, वायु, जल आदि प्रकृति की देन उन्हें शुद्ध और पर्याप्त रूप में प्राप्त है। गाँवों में नगरों के समान बनावट और धोखेबाजी नहीं होती।

गाँव का जीवन सरल, शान्त और सुन्दर होता है। सादगी का वहाँ सर्वत्र साम्राज्य रहता है। वे लोग बनावट और टीमटाम से बहुत दूर रहते हैं। वहाँ नगरों का सा कोलाहल, यातायात की भीड़ और धकापेल का नाम भी नहीं है। गाँव के लोग अपने अभावों में ही सन्तुष्ट हैं और परिश्रम को अधिक महत्व देते हैं। गाँव की स्त्रियाँ और बच्चे भी बेकार नहीं बैठते। उनकी आरोग्यता इसी में निहित रहती है। गाँवों में जाति-पाँति का भेद-भाव है अवश्य, पर व्यवहार में नगर के समान कटुता नहीं पाई जाती। सभी जाति के बड़े-बूढ़ों का लोग आदर करते हैं तथा सब की बहिन-बेटी को अपनी बहिन-बेटी के समान देखते हैं। वहाँ नगरों के समान प्रत्येक नारी को घूरने वाला मारकर बाहर निकाल दिया जाता है। जाति का बहिष्कार वहाँ का ऐसा दण्ड है, जिससे सब लोग वश में रहते हैं। किसी का दुराचार वहाँ न सहन किया जाता है और न क्षम्य ही माना जाता है।

गाँव में उन्नति करने, शान्तिपूर्ण जीवन बिताने और मानवीय शक्तियों का विकास करने के सभी साधन सुलभ हैं। नगर में जहाँ सभी चीजें पैसे देने पर अशुद्ध प्राप्त होती हैं, वहाँ गाँव में केवल भाई-चारे के नाते बढ़िया से बढ़िया चीजें मिल जाती हैं। बहुत लोग तो दूध-दही आदि मोल बेचना पाप समझते हैं। गाँव के लोग इतने स्वार्थी नहीं होते कि पड़ौसी के घर में रखे मुर्दे का भी विचार न करें। वहाँ तो सारा गाँव एक परिवार के समान होता है और सभी एक दूसरे के सुख-दुःख में हाथ बँटाते हैं। गाँव में अकिंचन और एकाकी औरतें भी अपना जीवन-निर्वाह सरलता से कर लेती हैं। जहाँ नगरों के लोग सदा स्वार्थ-साधन और धन कमाने में ही लगे रहते हैं, वहाँ गाँव के लोग परोपकार और सहानुभूति का भी पूरा ध्यान रखते हैं।

गाँव में जहाँ उपर्युक्त अच्छाइयाँ हैं, वहाँ बहुत सी बुराइयाँ भी हैं, जिनके कारण गाँवों का जीवन असुविधापूर्ण भी कम नहीं है। वहाँ सबसे बड़ा कष्ट यातायात के साधनों का है। रास्ते इतने खराब होते हैं कि बैलगाड़ी चलना भी कठिन हो जाता है। जब बरसात में चारों ओर के मार्गों में पानी भर जाता है तो कहीं भी जाना असम्भव हो जाता है। गाँव के लोग अपने घर का कूड़ा समीप ही इकट्ठा कर लेते है और गन्दा पानी स्वतन्त्र रूप से बहने देते हैं, जिससे बीमारियों के कीड़े पैदा हो जाते हैं।

गाँवों में शिक्षा का भी बहुत अभाव है। थोड़े ही गाँव ऐसे हैं, जहाँ प्रारम्भिक पाठशालाएँ हैं। अपढ़ होने के कारण जरा-जरा सी बातों पर मुकदमेबाज होती है। समाचार-पत्र, रेडियो और टेलीफोन आदि के अभाव में वहाँ के लोग संसार की घटनाओं से भी परिचित नहीं हो पाते। प्रकाश का कोई ठीक प्रबन्ध न होने से ही चारों ओर अँधेरा फैल जाता है, इसीलिये गाँवों में चोरी-डाके बहुत पड़ते हैं। चिकित्सा का कोई प्रबन्ध न होने के कारण छोटी-छोटी बीमारियों के लिये भी शहर भागना पड़ता है। परिणाम यह होता है कि बहुत से रोगी दवा न मिलने के कारण समय से पहले ही चल बसते हैं।

गाँव में बाजार भी प्रायः नहीं होते। कभी-कभी दूर-दूर गाँवों में पैठ लगती है, जहाँ से आवश्यकता की वस्तुएँ दूने दामों में ली जा सकती हैं अन्यथा नमक, मिर्च तक के लिये शहर भागना पड़ता है। कैसी विचित्र बात है कि भूमि होते हुए गाँव में शाक और फल पैदा नहीं किये जाते। गाँवों की आर्थिक दशा भी विशेष अच्छी नहीं है। महाजन लोग मनमाने सूद पर उन्हें रुपया उधार देकर उनका शोषण करते हैं। अच्छे बीज, उत्तम खाद और सिंचाई के अभाव में किसान अच्छी फसल भी नहीं उगा पाता। गाँव की अधिकांश खेती वर्षा की कृपा पर ही निर्भर करती है। यदि गाँव से ये सब कमियाँ दूर कर दी जावें तो वास्तव में गाँव स्वर्ग का आदर्श उपस्थित करने लगेंगे।

गाँवों की इस गिरी दशा का कारण बहुत कुछ विदेशी शासन था। वे लोग शहर में रहते थे, गाँवों का उन्हें कोई ध्यान नहीं था। उन्होंने गाँव से पैसा खींचकर शहरों में सुविधा के काम किये। कुछ गाँवों की दशा शहरों के समीप रहने से खराब हो गई है। गावों का सब दूध ऊँचे भावों पर शहर चला जाता

है और दूध के अभाव में किसानों के बच्चे सूखकर काँटा हो जाते हैं। गरीबी के कारण बेचारा शुद्ध देशी घी बेचकर अपने घर खाने के लिये वनस्पति घी ले जाता है, जो उसके शरीर को बीमारियों का घर बना देता है। आजकल की शिक्षा ने भी गाँव की दशा में कोई परिवर्तन नहीं होने दिया है। गाँव के अनेक बुद्धिमान व्यक्ति सफल व्यवसायी, कुशल चिकित्सक, प्रसिद्ध वकील, योग्य अध्यापक और प्रभावशाली अधिकारी के रूप में नगरों में ही रह रहे हैं, उन्हें गाँव में रहना अच्छा नहीं लगता। वे पढ़ते समय ही शहरी जीवन के इतने अभ्यासी बन जाते हैं कि गाँव छोड़कर वहीं रहने लगते हैं। इस प्रकार गाँवों का हृदय, उनका तत्व भाग निकलकर शहरों में आता रहता है।

अब हमारी सरकार गाँवों की ओर अधिक ध्यान दे रही है। गाँवों में चिकित्सा करने वाले वैद्य-डाक्टरों को सरकार खूब सहायता दे रही है। बहुत से स्कूल भी गाँवों में खोले जा रहे हैं। पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत अनेक गाँवों में बिजली के कुएँ बनाये गये हैं। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में भी गाँवों पर काफी खर्चा किया जावेगा। गाँवों को जाने वाले मुख्य-मुख्य रास्तों को पक्का बनाकर उन पर मोटर आदि सवारियों की व्यवस्था की जा रही है। समाज-कल्याण-विभाग के द्वारा भी गाँव के लोगों का जीवन उन्नत बनाने की चेष्टा की जा रही है। पंचायतों की देख-रेख में श्रमदान के रूप में भी गाँवों में बहुत कार्य हो रहा है। गाँव की पंचायतों ने बहुत जगह रास्तों को ठीक करने और उन पर रोशनी करने का प्रवन्ध किया है। गाँव के लोगों को उत्तम बीज देने के लिये सस्ते बीज-भंडार तथा कर्जा देने के लिये सहकारी समितियाँ खोली जा रही हैं। यदि सरकार का स्वप्न साकार हो गया तो भारत के गाँवों में पुनः स्वर्ग उतर आवेगा।

१६. पंचायत राज

रूपरेखा—

१. पंचायत प्रथा की प्राचीनता।

२. पंचायत राज की मूल भावना।

३. पंचायतों का संगठन और कार्य।
४. पंचायत राज के वरदान।
५. पंचायत राज का भविष्य।

भारत की अधिकांश जनता गाँवों में रहकर खेती द्वारा अपनी जीविका चलाती आई है। पहले गाँवों में इतना असन्तोष और वैमनस्य नहीं था, लोग जरा-जरा सी बातों के लिये अदालतों में रुपया फूँकने नहीं भागते थे। पहले बहुत से आपसी झगड़ों का फैसला गाँव या जाति की पंचायत करती थी। उसका निर्णय या दण्ड सब को मानना पड़ता था। पंचों को परमेश्वर माना जाता था और न्याय कानून का दास नहीं था। पंचों का निर्णय वास्तविकता के आधार पर होता था। पंचायत की शक्ति उस समय इतनी प्रबल थी कि कोई न कुपथ पर चलने का साहस करता था और न किसी को सताता था।

व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की हवा विदेशी शासन के पंखे से निकलकर ज्यों-ज्यों नगरों में होती हुई गाँवों में पहुँचने लगी, त्यों-त्यों पंचायत की शक्ति क्षीण होने लगी। एक दिन ऐसा आया कि गाँव की लगभग सभी कमाई वकीलों के घर जानी आरम्भ हो गई। स्वर्ग से सुन्दर गाँव शान्ति की साँस लेने को तरस गये।

महात्मा गांधी गाँवों के बड़े पक्षपाती थे। उनका कहना था—"भारत का सच्चा स्वरूप तो गाँवों में ही निवास करता है। यदि स्वतन्त्रता का उपभोग करना है तो उसे नीचे से आरम्भ करो। गाँवों को स्वतन्त्रता देने के रूप में शासन का विकेन्द्रीकरण किये बिना शासन सुदृढ़ नहीं हो सकता।" गांधीजी की इच्छा गाँवों को पुनः पहले के समान सुखी और हरे-भरे देखने की थी। कांग्रेस सरकार ने बापू की इसी इच्छा से प्रेरित होकर १५ अगस्त सन् १९४९ को ग्रामसभा तथा पंचायती अदालत की स्थापना की। इस प्रकार पंचायतों की पुरानी परम्परा पुनः नवीन रूप लेकर आई। पंचायत राज चलाने का उद्देश्य शासन का अधिक से अधिक भार जनता पर डालना था। जिस प्रकार नगर के लोग नगरपालिका और जिले के लोग जिलाबोर्ड के रूप में अपनी समस्याएँ स्वयं हल करते हैं, उसी प्रकार गाँव के लोग भी अपनी असुविधाएँ अपने आप दूर करें। इसी भावना को लेकर पंचायत राज की स्थापना हुई।

न्याय की व्यवस्था बड़ी खर्चीली, जटिल और दोषपूर्ण हो गई थी। उसमें सच्चे अपराधी को दण्ड नहीं मिल पाता था। जिसके पास धन या शक्ति होती थी, वही कानून को खरीद लेता था। गाँव वालों को अदालती न्याय बहुत महँगा पड़ता था, अतः एक बार पुनः इस कार्य को पंचायत राज को सौंपने का विचार हुआ, क्योंकि बिना पैसे के सच्चा न्याय पंचायत ही कर सकती थी।

पंचायतों का संगठन चुनाव के आधार पर होता है। प्रत्येक ग्राम में एक ग्रामसभा होती है। जो गाँव छोटे होते हैं, वे दूसरे बड़े गाँवों के साथ मिला दिये जाते हैं। ग्रामसभा ही ग्राम पंचायत का चुनाव करती है, जिसमें जन-संख्या के अनुसार ३० से ५१ सदस्य तक होते हैं। तीन से पाँच ग्रामसभाओं के बीच एक पंचायती अदालत बनाई जाती है। उसके सदस्य पंच और प्रधान, सरपंच कहलाता है। पंचायतों का चुनाव हर पाँच वर्ष बाद होता है।

लोगों के अपढ़ होने के कारण गाँव में आये दिन छोटे-मोटे झगड़े होते रहते हैं। इनका फैसला पंचायती अदालत करती है। जो मुकदमे उसके अधिकार से बाहर के होते हैं उन्हें अपनी सम्मति के साथ बड़ी अदालतों में भेज दिया जाता है। यहाँ किसानों को पैसा नहीं लुटाना पड़ता। पंचों को सारी बातें सही मालूम रहती ही हैं अतः वे उसी के आधार पर फैसला करते हैं। ये कार्य तो पंचायती अदालत के कार्य रहे। ग्राम-पंचायत के अधिकार में निम्नलिखित काम होते हैं :—

(क) शिक्षा—पंचायतें नये स्कूल खोलतीं और पुरानों का सुधार करती हैं। निर्धन छात्रों को सहायता देकर आगे बढ़ाना भी पंचायतों का काम है। ये पुस्तकालयों और वाचनालयों द्वारा भी जनता में ज्ञान का प्रचार करती हैं। जलसे आदि करके लोगों को शिक्षा के प्रति उत्साहित किया जाता है।

(ख) स्वास्थ्य—गाँव के लोगों का स्वास्थ्य सुधारने के लिये सफाई पर ध्यान देने के साथ-साथ पंचायतें चिकित्सालय खोलने और जनता में पेटेण्ट दवाएँ बाँटने का भी काम कर रही हैं। जगह-जगह मल्लशालाएँ तथा खेल की व्यवस्था से नौजवानों का स्वास्थ्य-सुधार किया जा रहा है।

(ग) विकास—गाँवों की उन्नति के लिये खाद का प्रबन्ध, सिञ्चाई की

योजना और बीज का प्रबन्ध किया जा रहा है। आने-जाने के लिए सड़कें भ
बनाई जा रही हैं। गाँवों में डाकखाने खुलवाकर डाक की सुविधा की जा रही
है। सरकार ने ग्राम-पंचायतों को सस्ते दामों पर रेडियो भी दिये हैं।

(घ) रक्षा—चोर-डकैतों आदि से ग्रामीणों की रक्षा के लिये पहरे की
व्यवस्था और रोशनी का प्रबन्ध किया गया है। गाँव में प्रान्तीय रक्षा दल के
शिक्षा-प्राप्त नवयुवक रहते हैं। श्रमदान के द्वारा ग्राम-पंचायतों ने और भी
बहुत से निर्माण-कार्य कराये हैं। नालियाँ खुदवाना, गलियों की सफाई कराना,
गड्ढों का पटवाना, ऊसर भूमि में पेड़ लगाना आदि श्रमदान के आधार पर
ही हुआ है।

पंचायतों को सरकार भी कुछ सहायता देती है। पंचायतों को अधिकार
है कि वे अपनी सुविधा के लिये उचित कर लगा सकती हैं। पंचायत का कर
इकट्ठा करने और सभी बातों का लेखा-जोखा रखने के लिये कुछ ग्राम-सभाओं
में मिलाकर एक मन्त्री रखा जाता है। पंचायतों में केवल यही वेतन-भोगी
होता है।

पंचायत राज ने गाँवों को अनेक वरदान दिये हैं। अपना शासन हाथ में आ
जाने से गाँव के लोग भी अपने को गौरवशाली अनुभव करने लगे हैं। अब
उन्हें छोटे-छोटे कामों के लिए न तो किसी का मुँह जोहना पड़ता है और न हर
बात के लिए प्रार्थना-पत्र देना पड़ता है। पहले कोई भी असुविधा महीनों या वर्षों
बाद दूर हो पाती थी, परन्तु अब उसे तुरन्त दूर किया जा सकता है। शिक्षा
आदि की कमी होने के कारण अभी उतना कार्य तो नहीं हो पाया है जितने
की आशा थी, फिर भी पंचायतों ने गाँवों में सहयोग, सद्भावना और एकता
को जन्म दिया है। जमींदारी समाप्त होने के बाद तो पंचायतों पर बहुत
बड़ा उत्तरदायित्व आ गया है। पंचायतें जाति-पाँति का भेद भी कम कर
रही हैं।

इसके साथ ही साथ पंचायत राज का एक काला पहलू भी है। प्रत्यक्ष
मतदान के कारण चुनाव ठीक से नहीं हो पाता। अशिक्षित होने के कारण
जनता सच्ची भावना को तो देखती नहीं, पद के लिये लड़ी मरती है। चुनाव
के बाद महीनों तक पिटीशन चलते रहते हैं। गाँव में भी शासन अधिकतर

उन्हीं के हाथ में रहता है, जिनमें शक्ति होती है, जो सम्पन्न होते हैं। कोर्ट में बैठे जज का कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता, पर गाँव में रहने वाले पंच के निर्णय से असन्तुष्ट लोग चाहे जब उनके हाथ-पैर तोड़ सकते हैं। इसलिये पंच भी शक्तिशाली के विरुद्ध निर्णय करने में घबड़ाते हैं। न्याय में कोई व्यय न होने के कारण लोग छोटी-छोटी बातें लेकर वहाँ पहुँच जाते हैं।

इन सब दोषों और असुविधाओं के होते हुए भी पंचायत राज का भविष्य उज्ज्वल है। ज्यों-ज्यों जनता शिक्षित और सम्पन्न होती जावेगी त्यों-त्यों वह पंचायत राज का उद्देश्य समझती जावेगी। एक दिन ऐसा अवश्य आयेगा, जब गाँव पंचायत राज की सफलता से खिल उठेंगे। तभी बापू का गाँव सम्बन्धी स्वप्न साकार हो सकेगा।

२०. मनोरंजन के साधन

रूपरेखा—

१. **मनोरंजन की आवश्यकता।**
२. **मनोरंजन से लाभ।**
३. **विविध साधन।**
४. **मनोरंजन की आड़ में व्यसन।**
५. **श्रेष्ठ मनोरंजन।**

कोई भी काम मन और शरीर दोनों के सहयोग के बिना नहीं होता। जब मन काम करना चाहता है और शरीर तैयार नहीं होता है तो लोग कहा करते हैं, "मेरा मन नहीं लग रहा या मेरी तबियत नहीं चाहती।" वास्तव में बात यह है कि कार्य करने से शरीर और मन दोनों थक जाते हैं। थकान कोई नई वस्तु नहीं है, शक्ति की कमी का ही नाम थकान है। जब तक हम किसी प्रकार मन और शरीर की थकान दूर नहीं कर लेते, दोनों की शक्ति की कमी पूरी नहीं कर लेते, तब तक अगला काम होना कठिन है। शरीर की थकान तो सोने और आराम करने से चली जाती है, पर मन की थकान दूर करने के लिये किसी ऐसे आयोजन की आवश्यकता होती है, जिसमें मन को आनन्द और

विश्राम मिले। इसी का नाम मनोरंजन है। मनोरंजन शब्द का अर्थ है मन को प्रसन्न करना। आज के युग में, जबकि हमारा जीवन अत्यन्त व्यस्त और संघर्षपूर्ण हो गया है, मनोरंजन की अत्यन्त आवश्यकता है। प्रत्येक अवस्था और योग्यता वाले व्यक्ति को मनोरंजन की आवश्यकता पड़ती है। अपनी शक्ति के अनुसार सब मनोरंजन के साधन जुटाते हैं। पशु भी कभी-कभी अपने मनोरंजन की व्यवस्था करते हैं। प्रायः कुत्तों को सुसी खेलते देखा होगा, यह उनका मनोरंजन ही है। बड़ी-बड़ी पशुशालाओं में गायों, भैंसों को दुहते समय मधुर बाजे बजाकर उनका मनोरंजन किया जाता है, जिससे वे अधिक दूध देती हैं। सदा से ही मनुष्य ने मनोरंजन की आवश्यकता अनुभव की है। मनोरंजन के साधनों में भेद हो, यह बात दूसरी है।

मनोरंजन के बहुत से लाभ हैं। मनोरंजन से मनुष्य की नष्ट हुई शक्ति पुनः लौट आती है और वह दूने उत्साह के साथ अपने काम में लग जाता है। जो लोग शरीर को तो आराम पहुँचाते हैं, पर मनोरंजन को बच्चों की चीज समझकर उससे दूर रहते हैं, वे शीघ्र ही किसी मानसिक रोग के शिकार हो जाते हैं और असमय में ही अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देते हैं। मनोरंजन से चित्त में प्रसन्नता और शरीर में उमंग आती है। इससे उदासी दूर भागती है और आलस्य पास नहीं फटकने पाता। मनोरंजन करने वाला व्यक्ति कभी एकाकीपन या जीवन की नीरसता का अनुभव नहीं करता। हाँ, मनोरंजन का चुनाव बहुत सोच-समझकर करना चाहिये। गलत ढंग के मनोरंजन से लाभ के स्थान में हानि भी हो सकती है।

(मनुष्य आदिकाल से ही मनोरंजन के साधनों की खोज करता आया है। प्राचीन काल में जबकि वैज्ञानिक आविष्कार और मशीनें नहीं थीं लोग कला और शारीरिक व्यायाम से मनोरंजन करते थे। मल्लयुद्ध करना, तीर चलाना, दौड़ना आदि उस समय के प्रमुख मनोरंजन थे। संगीत, नृत्य, जुआ या काव्य-साधना से वे लोग मनोरंजन करते थे, जो शारीरिक श्रम नहीं करना चाहते थे। हाथी, मेढ़ों और साँड़ों की लड़ाई से भी पर्याप्त मनोरंजन होता था। इसके बाद नाटकों से मनोरंजन करना आरम्भ हुआ। इसमें आँखें और कान दोनों इन्द्रियाँ रस लूटती थीं। बन्दर, भालू आदि के नाच से मनोरंजन करने की प्रथा

भी बहुत पुरानी है, जो अभी चल रही है। मुसलमानों के शासन-काल में मनोरंजन के साधनों में विलासिता आ गई और तीतर-बटेरों की लड़ाई तथा शतरंज, चौपड़ के खेल मनोरंजन के साधन बन गये। इस प्रकार प्राचीन मनोरंजन में हमारी सभ्यता का क्रमबद्ध इतिहास छिपा है।)

मनोरंजन के प्राचीन साधन अधिक खर्चीले तो नहीं थे, पर उनके लिये व्यक्ति में योग्यता अपेक्षित थी। जिसे गान-विद्या के मर्म का पता नहीं या जो काव्य-कला से अपरिचित है वह संगीत या साहित्य से क्या मनोरंजन कर सकता है? (आधुनिक काल में मनोरंजन के जिन साधनों का आविष्कार हुआ है, वे बड़े सरल हैं। सिनेमा देखने के लिये केवल वहाँ तक जाने और टिकट लेने भर की आवश्यकता है, फिर तो पर्दे पर जीती जागती कहानी और मधुर गीतों से आनन्द उठाना बड़ा सुगम है। यही बात रेडियो के सम्बन्ध में है। केवल सुई घुमाने से ही मनपसन्द कार्यक्रम सुनने को मिल जाता है)

मनोरंजन के वर्तमान साधनों में इन दोनों के अतिरिक्त पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं का भी महत्वपूर्ण स्थान है। सरल एवं मनोरंजक कहानियों, कविताओं और नाटकों द्वारा भी अच्छा मनोरंजन होता है। पर यह मनोरंजन पढ़े-लिखे लोग ही कर सकते हैं। घरेलू खेलों में ताश, बैडमिंटन आदि का स्थान भी महत्वपूर्ण है।

सरकस भी आजकल के मनोरंजन के साधनों में बड़ा लोकप्रिय है। जहाँ भी कोई अच्छा सरकस पहुँच जाता है, लोगों की भीड़ टूट पड़ती है। इसमें मनुष्यों के आश्चर्यजनक शारीरिक करतबों के साथ-साथ पशु-पक्षियों के खेल भी होते हैं। बहुत से लोग फुटबाल, हाकी, वॉलीबॉल आदि खेलकर या केवल देखकर मनोरंजन करते हैं। कभी-कभी अकाल या बाढ़ से सताये देशों की सहायता करने के लिये खेलों के मैच कराये जाते हैं। इनमें टिकटों से एकत्रित धन सहायतार्थ भेज दिया जाता है। जिन खेलों में सिनेमा के अभिनेता-अभिनेत्रियाँ भाग लेते हैं, वहाँ देखने वालों की बहुत भीड़ रहती है। इस प्रकार आधुनिक मनोरंजन में भी अपनी-अपनी रुचि और सुविधा का प्रश्न है।

कभी-कभी लोग मनोरंजन के नाम पर व्यसन भी पाल लेते हैं। यदि कोई मनोरंजन के नाम पर जुआ खेले, शराब पिये, दूसरों की चोरी करे तो इसे

मनोरंजन न कहकर व्यसन ही नाम दिया जावेगा। यदि व्यक्ति मन की थकान उतारने को कभी-कभी सिनेमा देख लेता है, तब तो यह उसका मनोरंजन है और यदि वह एक दिन में दो-दो बार सिनेमा देखता है तो यह मनोरंजन नहीं व्यसन है। मनोरंजन ऐसा होना चाहिये जिससे स्वयं को या दूसरों को किसी प्रकार की हानि न पहुँचे। इसमें जितना समय या पैसा खर्च हो मन की स्फूर्ति के रूप में उतना ही लाभ भी मिल जावे। बहुत से लोग यात्रा के द्वारा मनोरंजन करते हैं, किन्तु बारहों मास यात्रा में ही रहना मनोरंजन नहीं, एक आदत है। हास्य-विनोद का मनोरंजन भी वहीं तक ठीक रहता है, जहाँ तक इससे किसी का हृदय न दुखे और हँसने वाले का समय व्यर्थ न जावे। हर समय हँसते रहना मनोरंजन नहीं, असभ्यता है।

आज विज्ञान ने जहाँ मानव जीवन को संघर्षपूर्ण बनाया है, वहाँ मनोरंजन के भी अनेक साधन प्रस्तुत किये हैं। वैसे तो सभी साधनों से मनोरंजन किया जा सकता है, पर श्रेष्ठ मनोरंजन वही है, जिससे मन की थकान मिटने के साथ कुछ लाभ भी हो। खेलने या पुस्तक पढ़ने का मनोरंजन श्रेष्ठ कहा जा सकता है। खेलने से स्वास्थ्य ठीक होता है और पढ़ने से ज्ञान की वृद्धि होती है। सिनेमा भी एक सस्ता, सुलभ और सभ्य मनोरंजन है। इससे थोड़े ही समय में यथेष्ट मनोरंजन हो जाता है; परन्तु सब तरह के लोगों को एक ही खेल से मनोरंजन करना ठीक नहीं। जिस प्रकार रेडियो से बच्चों, बहिनों, देहाती भाइयों और फौजी लोगों के कार्यक्रम आते हैं, उसी प्रकार सिनेमा में भी श्रेणी-विभाग कर दिया जावे तो इसके समान उत्तम मनोरंजन का साधन कोई भी न रहे।

२१. स्वदेश प्रेम

रूपरेखा—

१. देश प्रेम की स्वाभाविकता।
२. देश प्रेम का महत्व।
३. कुछ उदाहरण।

४. विश्वासघात का बुरा परिणाम ।

५. देश के प्रति सबका कर्तव्य ।

मनुष्य जहाँ जन्म लेता है, जहाँ की धूल में खेल-खेलकर बड़ा होता है, वहाँ से उसे स्वाभाविक प्रेम हो जाता है। वहाँ के सभी लोग उसके जाने-पहचाने होते हैं। लगभग सभी उसके समान भाषा बोलते हैं और सभी का रहन-सहन एक-सा होता है। ऐसी दशा में वहाँ के लोगों से ममता होना स्वाभाविक है। मनुष्य चाहे कितने ही अच्छे स्थान पर रहने लगे, पर उसका मन अपनी जन्म-भूमि में पहुँचने को उत्सुक रहता है। संस्कृत के एक कवि ने तो जन्म-भूमि को स्वर्ग से भी अच्छा बतलाया है—"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।"

जन्म-भूमि या देश के प्रति जो प्रेम होता है वह किसी कारण या आकर्षण से नहीं होता, वह तो एक स्वाभाविक ममता है। यदि देश-प्रेम का पवित्र भाव न होता तो लोग मरुस्थलों, बर्फीले स्थानों, भयानक जंगलों और दुर्गम पहाड़ों में रहना क्यों पसन्द करते ? जिस प्रकार अपढ़, कुरूप और गुणहीन होने पर भी सब लोग माता का सम्मान करते हैं, इसी प्रकार मातृभूमि में भी अनेक असुविधाएँ होते हुए लोगों के प्रेम में कोई अन्तर नहीं आता। इन्हीं भावों को लेकर श्री रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है :—

> विषवत् रेखा का वासी जो जीता है नित हाँफ-हाँफ कर,
> रखता है अनुराग अलौकिक वह भी अपनी मातृभूमि पर।
> हिमवासी जो हिम में, तम में जी लेता है काँप-काँप कर,
> वह भी अपनी मातृभूमि पर कर देता है प्राण निछावर।

अपने देश से मनुष्यों को क्या पशु-पक्षियों तक को प्रेम होता है। वे भी अपना स्थान नहीं भूलते।

देश-प्रेम की भावना का सदा से आदर होता आया है। आत्मीयता की भावना ही बढ़ते-बढ़ते देश-प्रेम का रूप धारण कर लेती है। देश-प्रेम की भावना ही विश्व-प्रेम में बदल जाती है। देश की उन्नति और स्वतन्त्रता का आधार देश-प्रेम ही होता है। जिस देश के लोगों में अपने देश के प्रति प्रेम

नहीं होता, उसकी दशा सदा गिरी रहती है। बिना देश-प्रेम के कोई त्याग और बलिदान करने को तैयार नहीं होता, और बिना त्याग तथा बलिदान के आज के स्वार्थी युग में किसी देश का स्वतन्त्र रहना असम्भव-सा लगता है। देश-प्रेम के कारण ही लोग अपने स्वार्थ को ठुकराकर बड़ी-बड़ी हानियाँ सहन करते और भाँति-भाँति के कष्ट उठाते हैं। सभी लोग चाहे देश के लिये त्याग न कर सकें किन्तु देश के लिये त्याग करने वालों का आदर सभी करते हैं। देश-प्रेम में कुछ ऐसा जादू है कि लोग अपने आप मस्त हो जाते हैं, चाहे किन्हीं विवशताओं से उसको प्रकट न कर सकें। देश के लिए त्याग करने में, कष्ट झेलने में और मर मिटने में कुछ ऐसी आत्मिक शान्ति रहती है कि लोग हँसते-हँसते सब कुछ सहन करते हैं और अपना भाग्य धन्य समझते हैं।

देश-प्रेम का स्वतन्त्रता से गठबन्धन सा रहा है। स्वतन्त्रता छिन जाने पर या शत्रु का आक्रमण होने पर लोगों के देश-प्रेम की परीक्षा होती है। जब भारतवर्ष परतन्त्र था, तब कितने ही देश-प्रेमी वीर स्वतन्त्रता-संग्राम में लड़-कर अमर हो गए। मुगल-काल में महाराणा प्रताप और छत्रपति शिवाजी ने अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए जो कष्ट सहे, वे किसी से छिपे नहीं हैं। देश की स्वतन्त्रता को आक्रमणकारियों से बचाने के लिए चन्द्रगुप्त मौर्य, विक्रमादित्य, पंचनद नरेश पर्वतेश्वर और पृथ्वीराज के नाम भी विशेष उल्लेखनीय हैं। प्राचीन काल में देश-प्रेम की भावना कुछ संकुचित थी, लोग अपने छोटे से प्रान्त को ही देश समझकर पड़ोसियों से लड़ते रहते थे। सम्मिलित होकर उन्होंने शत्रु का सामना नहीं किया, इसीलिए देश परतन्त्र बन गया।

देश-प्रेम की वास्तविक भावना का जन्म और विस्तार अँग्रेजों के शासन-काल में हुआ। इनके अत्याचारों से दुःखी होकर लोग देश को स्वतन्त्र कराने के लिये विकल हो गये। सन् १८५७ का स्वतन्त्रता-संग्राम इसी का परिणाम था, जिसे विदेशी शासकों ने सैनिक विद्रोह या गदर का रूप दिया। यद्यपि ठीक नेतृत्व न होने, सिक्खों और गोरखों का सहयोग न मिलने एवं अन्य साधनों की कमी के कारण वह विद्रोह बुरी तरह कुचल दिया गया, किन्तु उसमें नानासाहब, तात्या टोपे, लक्ष्मीबाई, कुंवरसिंह आदि कई वीर और देश-भक्त प्रकाश में आये।

इस स्वतन्त्रता-संग्राम के कुछ दिनों बाद देश को स्वतन्त्र कराने वाले देश-प्रेमियों का आश्रय पाकर देश में पुनः आग भड़की, फिर उथल-पुथल हुई। उनमें दो विचारधाराओं के लोग थे, एक गरम दल वाले और दूसरे नरम दल वाले। गरम दल वाले क्रान्तिकारी कहलाते थे और मारकाट के जोर से देश को स्वतन्त्र कराना चाहते थे। सरदार भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, राम प्रसाद बिस्मिल, हरदयाल आदि अनेक क्रान्तिकारी लोगों ने अनेक काण्ड किये और फाँसी के तख्ते पर झूल गये। इस सम्बन्ध में वीर सावरकर और नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का नाम भी महत्वपूर्ण है। नेताजी ने तो जापान में जाकर आजाद हिन्द सेना का भी संगठन कर लिया था। किन्तु ये लोग शासकों को परेशान करने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कर सके।

नरम दल वालों में महात्मा गांधी की विचारधारा पलती थी। उन्होंने अहिंसा और सत्याग्रह के बल पर सारे देश में आन्दोलन चलाया और विदेशी लोगों को देश खाली करने पर विवश कर दिया। "स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" का नारा गर्म दल के नेता तिलक ने उठाया था, जिसका महात्मा गांधी ने "भारत छोड़ो" के रूप में समर्थन किया। गांधीजी को सरदार पटेल, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल, राजेन्द्रप्रसाद जैसे सहायक एवं कार्यकर्त्ता मिले थे, जिनके सहयोग से वे विना बूँद भर रक्त वहाये देश को स्वतन्त्र बनाने में सफल हुए।

संसार में सभी तरह के लोग होते हैं। देश-प्रेमियों के साथ कुछ ऐसे लोग भी हुए हैं, जिन्होंने अपने लोभ और सुख के लिए देश की स्वतन्त्रता दूसरों के हाथ वेच दी। सिकन्दर के आक्रमण के समय गान्धार-नरेश आम्भीक ने इसी नीच भावना का प्रदर्शन दिया था। पृथ्वीराज से व्यक्तिगत द्वेष के कारण देश को गुलाम बनाने वाले देशद्रोही जयचन्द के कुकृत्य का फल तो देश ने लगभग आठ सौ वर्ष भोगा है। प्रताप को जीवन भर विपत्तियों में फँसाने वाले मानसिंह का नाम भी उसी सूची में है। कुछ देशद्रोहियों के ही कारण १८५७ का स्वतन्त्रता-संग्राम विफल हो गया था और देश को दमन एवं अत्याचार का बुरा परिणाम देखना पड़ा। कहा जाता है कि लोगों को जमीन पर लिटाकर सड़क कूटने के रौलर चलवा दिए गए थे। इतने लोगों

को फाँसी लगाई गई थी कि उसके लिए तख्तों का प्रवन्ध न होने पर लोगों को पेड़ की डाल पर लटका कर मारा गया था। इस प्रकार जहाँ एक देश-प्रेमी सम्पूर्ण देशवासियों की सुख ग्रौर सुविधा बढ़ाता है, वहाँ एक देशद्रोही सब को दुःखी भी कर सकता है। देश-द्रोह सदा से महान् अपराध माना गया है। जनता ने ऐसे लोगों को कभी क्षमा नहीं किया। लोग देशद्रोहियों को सदा घृणा की दृष्टि से देखते ग्राये हैं। आज सभी सभ्य राष्ट्रों में देशद्रोह का दण्ड मृत्यु है।

जिस देश में हमने जन्म लिया है, जिसके ग्रन्न, जल ग्रौर वायु से हमारा पालन हुआ है, उसके प्रति प्रेम की भावना रखना हम सब का कर्तव्य है। जो देश के प्रति विश्वासघात करते हैं, वे कभी चैन से नहीं रह पाते, उनकी ग्रात्मा कभी शान्ति का ग्रनुभव नहीं कर पाती। देश की उन्नति में ही हमारी उन्नति है। यदि देश गिरी दशा में होगा तो न हम अधिक दिन सम्पन्न रह सकते हैं और न कहीं हमारा मान ही हो सकता है। जब भारत परतन्त्र था तो विदेशों में जाने वाले सभी धनीमानी लोगों का ग्रपमान ही होता था। इसलिए देश के प्रति सब को ममता की भावना रखनी चाहिए।

२२. मादक द्रव्य

रूपरेखा—

१. मादक वस्तुग्रों के सेवन का कारण।
२. सेवन से हानि।
३. कुछ मादक द्रव्य।
४. गलत तर्क।
५. सावधानी।

ईश्वर ने सभी प्रकार की वस्तुएँ ग्रौर मनुष्य बनाये हैं। जिस प्रकार कुछ मनुष्य ग्रच्छे ग्रौर कुछ बुरे होते हैं, उसी प्रकार कुछ वस्तुएँ लाभदायक ग्रौर कुछ हानिकारक होती हैं। अच्छे-बुरे का विचार करने के लिए ही ईश्वर ने मनुष्य को मस्तिष्क दिया है कि वह ग्रच्छी वस्तुओं को ग्रहण करे और बुरी

चीजों को छोड़ दे। अधिकतर लोग तो बुरी बातों और बुरी चीजों से दूर रहते हैं, पर ऐसे भी बहुत से लोग हैं जो वस्तु की बुराई समझते हुए भी उसका उपयोग करते हैं। कुछ लोग तो इनके इतने आदी हो चुके हैं कि इन्हें अच्छा समझने लगे हैं।

नशीली सभी वस्तुएँ हानिकर होती हैं, फिर भी उनके सेवन करने वालों की कमी नहीं है। बहुत से लोग तो आग्रह करके स्वागत के रूप में नशीली चीजें देते हैं। नशीली वस्तुओं को सभी बुरा बताते हैं, सभी धर्मों में इनका निषेध किया है, फिर क्या कारण है कि इतनी बड़ी संख्या में लोग इनके आदी बने हुए हैं? महात्मा टॉल्स्टाय का मत है कि लोग अपने आपको भूलने के लिए नशा करते हैं। जो लोग किसी मानसिक रोग के शिकार होते हैं, उन्हें अपने आपको भूलने में ही सुख मिलता है। असफल प्रेमी, समाज से निकाले हुए और अपराधी जीवन व्यतीत करने वाले इसी कारण नशे के आदी बन जाते हैं। कुछ लोग बुरी संगत में पड़कर देखादेखी नशा करना सीखते हैं और बाद में उन्हें आदत पड़ जाती है। प्रायः सभी मादक द्रव्यों में यह विशेषता है कि उनका सेवन एक बार आरम्भ करने पर फिर मात्रा बढ़ती ही जाती है, छूटना तो बहुत कठिन है। कुछ हल्के नशों से उत्तेजना मिलती है, जिससे काम करने में मन लग जाता है, इसीलिए लोग ऐसी आदत डाल लेते हैं। पुराने समय के वीर राजपूत केवल इसीलिए नशा करते थे कि लड़ाई के मैदान में प्राणों का मोह न जाग उठे।

नशीली वस्तुओं के सेवन करने वाले या उनका प्रचार करने वाले चाहे कितनी ही प्रशंसा करें, पर यह अटल सत्य है कि सभी नशीली चीजों में जहर होता है और वे जीवन के लिए हानिकर ही सिद्ध होती हैं। मादक द्रव्यों के सेवन का पहला प्रभाव पाचन-शक्ति पर पड़ता है। आँतें कमजोर हो जाती हैं और कब्ज रहने लगता है। नशा करने से आँखें कमजोर होती हैं, शरीर में सुस्ती आती है और काम करने की शक्ति धीरे-धीरे क्षीण होने लगती है। सभी नशे खर्चीले होते हैं। यह लत इतनी बुरी होती है कि लोग घर का सामान बेचकर नशा करते हैं। शराबी के घर में मुर्दा रखा हो और उसे कफन को दाम दिये जावें। यदि वह शराब की दूकान के सामने होकर निकलेगा तो

बिना पिये नहीं मान सकता। नशा करने से आत्मा का पतन हो जाता है और अनेक बुराइयाँ अपने आप आ जाती हैं। नशे में लोग कभी-कभी ऐसे काम कर डालते हैं जिन्हें वे होश में रहने पर कभी नहीं करते।

संसार में अनेक नशीली वस्तुएँ हैं, जिनके कुछ अच्छे उपयोग भी हैं। पर लोग उन्हें नशे के लिये इस्तेमाल करके अपना सर्वनाश करते हैं। नीचे कुछ मुख्य-मुख्य मादक पदार्थों का परिचय दिया जाता है।

(क) **शराब**—नशीली चीजों में सबसे अधिक घातक शराब है। यह एक प्रकार का पेय पदार्थ होता है। इसमें अलकोहल नाम का विष होता है जो नाड़ी और हृदय दोनों को उत्तेजित करके शिथिल बना देता है। इसका सेवन करने वाला पागलों की तरह बकता और नालियों में लोटता है। शराब पीने वालों का रक्त सूखने लगता है। हृदय की कमजोरी से भी कभी-कभी शराबी की मृत्यु हो जाती है। जो ठण्डे देश हैं वहाँ शराब का प्रचलन बहुत है। वहाँ यह अधिक हानि भी नहीं करती। इसका सेवन वासना को भी बहुत उभारता है। मुसलमानी शासन में इसका चलन बढ़ा और अब तो पश्चिमी सभ्यता में डूबे लोग इसे पीना शान और गौरव की बात समझते हैं।

(ख) **भाँग**—यह एक प्रकार की पत्ती होती है, जिसे घोंटकर पिया जाता है। इसकी पत्ती को जितना ही घोंटा जाता है, उतना ही अधिक नशा होता है। इसके पीने वाले की पाचन-शक्ति खराब हो जाती है। पूरब के लोगों में इसका विशेष चलन है। संस्कृत के विद्वान और साधु-महात्मा भी इसे पीने में बुराई नहीं समझते थे। हिन्दुओं के देवता, शिव, की यह प्रिय बूटी बताई जाती है। यह और नशों की अपेक्षा है भी कुछ कम खतरनाक, पर इससे मनुष्य उत्साहहीन और कायर हो जाता है।

(ग) **अफीम**—यह एक फल का रस होता है। इसका विष इतना भयानक होता है कि थोड़ी भी अधिकता से मृत्यु हो जाती है। इसके सेवन से नींद आने लगती है और विचार तथा स्मरण-शक्ति नष्ट हो जाती है। अफीम खाने वाले का मुँह ऐसा पीला और सूखा-सा हो जाता है, जिससे सहज में ही उसके अफ़ीमी होने का अनुमान किया जा सकता है। पहले चीन में इसका

बहुत चलन था। जब से यह आदत वहाँ के लोगों ने छोड़ी है तभी से चीन आश्चर्यजनक उन्नति कर गया है।

(घ) **तम्बाकू**—यह ऐसा नशा है, जिसका संसार में सबसे अधिक प्रचार है। यह एक पौधे की पत्ती होती है, जिसे लोग तीन प्रकार से इस्तेमाल करते हैं—धूम्रपान के रूप में, खाने के रूप में और सूँघने के रूप में। सबसे अधिक प्रचलन धूम्रपान का है। बीड़ी, सिगरेट, हुक्का, चुरुट, आदि इसके अनेक भेद हैं। इसमें निकोटीन नाम का विष होता है, जो पेट को हानि करता है। तम्बाकू खाने वाले के दाँत खराब हो जाते हैं और मुँह से बदबू आने लगती है। धूम्रपान करने से फेफड़ों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। खोज करने पर पता लगा है कि फेफड़े के कैन्सर वालों में ८५ प्रतिशत धूम्रपान करने वाले थे। इससे साँस की नली भी खराब हो जाती है, जिससे खाँसी और टी० बी० जैसे रोग हो जाते हैं। इसका इतना प्रचलन है कि बहुत कम लोग बच पाये हैं। इसके प्रचार के लिये लोग तरह-तरह के गाने और बजाने वालों की सहायता लेते हैं तथा प्रचार में पानी की तरह पैसा फूँकते हैं। बहुत से लोग इसमें गाँजा, सुलफा आदि मिलाकर पीते हैं, जिससे इसकी भयानकता अधिक बढ़ जाती है।

(ङ) **चाय**—इसे वास्तव में मीठा जहर कहना चाहिए। यह एक प्रकार की पत्ती होती है, जिसे उबालकर पिया जाता है। इसमें टैनिन नाम का विष होता है। इसकी पत्तियाँ जितनी अधिक देर उबाली जाती हैं, उतनी ही विष की मात्रा बढ़ती है। इसके पीने से थकावट दूर होती तथा शरीर में फुर्ती आती है, किन्तु यह धीरे-धीरे पाचन-क्रिया खराब करके शरीर को नष्ट कर देती है। इसका सभ्य-असभ्य सभी में चलन है। स्वागत में सभी जगह इसे उत्तम पेय के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

कुछ लोग नशों की श्रेष्ठता बताने के लिए भाँति-भाँति के तर्क सामने रखते हैं, पर वे सब गलत और धोखे में डालने वाले हैं। नशीली चीजों से जो मस्ती और उत्तेजना आती है, वह हमारी ही शक्ति होती है, पर बाद में थकावट और कमजोरी बहुत बढ़ जाती है। कुत्ते को हड्डी चबाते समय जो रक्त का स्वाद मिलता है, वह हड्डी का नहीं, उसके मुँह में हड्डी लगने से निकले

रक्त का होता है। यही दशा नशीली चीजों की है। नशे का पैसा दूध-घी खाने में लगाकर स्वास्थ्य सुधारा जा सकता है।

नशा करना बहुत बुरी आदत है। इससे सदा दूर रहना चाहिये। बच्चों को तो इसके पास भी नहीं झाँकना चाहिये। इसमें फँसकर बचना मुश्किल होता है। इनका परिणाम बहुत ही बुरा होता है। बुद्धिमत्ता इनसे घृणा करने और बचने में ही है।

२३. वन-महोत्सव

रूपरेखा—

१. वन और वृक्षों की वर्तमान दशा।
२. वन-महोत्सव का प्रारम्भ और प्रगति।
३. वनों की उपयोगिता।
४. सब का कर्तव्य।
५. भविष्य की आशाएँ।

वन किसी भी देश की प्राकृतिक सम्पत्ति हैं। वनों की अधिकता ऐसे ही देशों में होती है जहाँ काफी वर्षा होती हो। भारतवर्ष प्रकृति का क्रीड़ास्थल है। यहाँ वर्ष में सभी ऋतुएँ आती-जाती हैं और सभी प्रकार की वनस्पतियाँ एवं खनिज द्रव्य प्राप्त होते हैं। वृक्षों और वनों की सम्पत्ति से भारतवासी प्राचीन काल से अनेक लाभ उठाते आए हैं। भारत की सभ्यता में वनों का बड़ा सहयोग रहा है। प्राचीन काल में ऋषि, मुनि, साधु-महात्मा प्रायः वनों में ही आश्रम बनाकर रहते थे। विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए बने ब्रह्मचर्याश्रम भी वनों में ही होते थे, जहाँ विद्यार्थी गृहस्थ जीवन के आकर्षण से दूर रहकर पच्चीस वर्ष की अवस्था तक विद्या पढ़ते थे।

ज्यों-ज्यों देश की जनसंख्या बढ़ती गई, त्यों-त्यों खेती के लिए भूमि की आवश्यकता होने लगी। फलस्वरूप लोगों ने वनों को समाप्त कर खेती करना आरम्भ कर दिया। इधर लकड़ी के लिये भी बहुत से जंगल काट डाले गए। नगर के समीप के कुछ वनों को इसलिये भी कटवा दिया गया कि उनमें रहने

वाले हिंसक पशु मनुष्यों और पशुओं को हानि पहुँचाते थे । गाँवों एवं खेतों में
भी लोगों ने वृक्षों को लगाना कम कर दिया और काटने की ओर अधिक
ध्यान दिया । इसलिए धीरे-धीरे वनों एवं वृक्षों की न्यूनता हो गई । वृक्षों से
मिलने वाले फलों और लकड़ी का भी लोगों को कष्ट रहने लगा । इनकी कमी
से सबसे बड़ी हानि यह हुई कि वर्षा कम होने लगी और ब्रज की शस्य श्या-
मला भूमि की ओर राजस्थान का मरुस्थल मुँह फाड़कर भागने लगा ।

वन-महोत्सव का प्रारम्भ माननीय कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने
सन् १९५० की जुलाई में किया था । उस समय आप भारत के खाद्य-मन्त्री
थे । देश की खाद्य-समस्या पर विचार करते हुए आप इस परिणाम पर पहुँचे
कि वर्षा की कमी का कारण वृक्षों की कमी है । वैज्ञानिकों ने यह खोज की
थी कि वृक्ष अपनी ओर बादलों को खींचकर जल बरसाते हैं । प्रथम पंचवर्षीय
योजना के अन्तर्गत तीस करोड़ वृक्ष लगाने का निश्चय किया गया था । इसके
साथ पुराने वनों एवं वृक्षों की रक्षा का भी प्रयत्न किया । सरकार ने वनों का
नष्ट होना बन्द करा दिया तथा गाँव के वृक्षों के लिए भी यह नियम बना दिया
कि कोई भी फलदार वृक्ष सूखने से पहले न काटा जावे । यदि किसी बाग को
काटना ही आवश्यक हो तो अधिकारी लोगों की अनुमति ली जावे । बाग
लगाने वालों को सरकार से कुछ पौधे मुफ्त भी दिए जाने लगे ।

तब से प्रति वर्ष जुलाई मास में वन-महोत्सव मनाया जाता है । सैनिक
और विद्यार्थी इसमें काफी सहयोग देते हैं । वे लोग बेकार पड़ी हुई भूमि में
वृक्ष लगाकर आने वाली सन्तान के लिए एक वरदान का प्रबन्ध कर देते हैं ।
जब ये वृक्ष विकसित होकर बड़े होंगे तो किसी प्रकार की कमी नहीं रहेगी ।
सरकार ने भी इसमें काफी सहायता दी है । राजस्थान की सीमा पर सरकार
ने कई मील चौड़ी वृक्षों की पट्टी लगवाकर रेगिस्तान रोकने का भी प्रयत्न
किया है । इसी योजना के अन्तर्गत वृन्दावन में गोवर्धन के चारों ओर सुन्दर
वृक्ष लगाये गए हैं ।

इस योजना के शीघ्र सफल न होने का एक कारण है । महोत्सव मनाने
की उमंग में या नाम पाने के लिए लोग वृक्ष लगा तो देते हैं, पर बाद में उनका
पोषण एवं रक्षा नहीं हो पाती । वृक्षों को लगाना उतना कठिन नहीं है,

जितना कि उनकी रक्षा और वृद्धि। इसलिए सरकार को इनकी रक्षा का पूरा प्रबन्ध करना चाहिए। जितने वृक्ष जुलाई में लगाये जाते हैं, उनमें बहुतों को पशु खा जाते हैं, कुछ को बच्चे उखाड़ डालते हैं और अधिकांश अगली वर्षा तक पाले या धूप में दम तोड़ देते हैं। बिना वृक्षों की रक्षा का उचित प्रबन्ध हुए वन-महोत्सव का उद्देश्य कभी पूरा नहीं हो सकता। यह काम जनता की सहायता से ही हो सकता है। सरकार हर पेड़ के लिए पहरेदार या माली का प्रबंध नहीं कर सकती।

वनों की जो उपयोगिता आदिकाल में थी, आज सभ्यता के युग में वह बढ़ ही गई है, कम नहीं हुई। पहले के असभ्य लोग वृक्षों पर रहते, उनकी पत्तियाँ पहनते तथा फलों को खाते थे। वे वनों में रहने वाले पशुओं का शिकार भी करते थे। आज के मानव को भी वनों की लकड़ी की अत्यन्त आवश्यकता है। बड़े-बड़े शहरों में जलाने और इमारत बनाने के लिए प्रत्येक दिन हजारों मन लकड़ी की आवश्यकता रहती है। वनों से भाँति-भाँति की औषधियाँ भी मिलती हैं, जो रोग दूर करके मनुष्य को मृत्यु के फंदे से बचाती हैं।

वृक्षों से वर्षा तो होती ही है, ये भूमि को उपजाऊ भी बनाते हैं। पेड़ों की जड़ें जल को भूमि के नीचे तक पहुँचाकर उसकी उर्वरा-शक्ति बढ़ाती हैं। वृक्षों की पत्तियाँ पशुओं के खाने और भूमि में खाद देने के काम आती हैं। वृक्षों की छाया में बैठने से जो आनन्द मिलता है, वह धूप में चलते-चलते थका हुआ मुसाफिर ही जानता है। वृक्ष लगाना हमारे देश में धार्मिक कृत्य भी माना जाता है। हरे वृक्ष को काटने का अपराध मनुष्य की हत्या के बराबर है। इन सब के अतिरिक्त वृक्षों से एक बहुत बड़ा लाभ है। हमारा जीवन-प्राण वायु पर निर्भर है। हम जो साफ हवा अन्दर खींचते हैं, उसे गन्दा करके बाहर निकालते हैं। वह गन्दी हवा पेड़ों की खुराक है। पेड़ उस गन्दी हवा से जीवन-शक्ति ग्रहण करके उसे शुद्ध रूप में बाहर निकालते हैं, जो हमारे काम आ सके। इस प्रकार प्राणी और वृक्ष एक दूसरे के लिए उपयोगी वायु का लेन-देन करते रहते हैं। यदि वृक्ष न हों तो संसार के प्राणी कुछ ही दिन में सारी वायु को विषाक्त बना दें और स्वच्छ वायु के अभाव में कोई भी जीवित न

बचे । इससे ज्ञात होता है कि प्रकृति ने ही वृक्ष और मनुष्य का साथ बनाया है । मनुष्य यदि वृक्षों के उपकार का बदला देने के लिए नहीं तो कम से कम अपने स्वार्थ के लिए ही इनका पालन और रक्षण करे ।

वृक्षों के लगाने में कोई विशेष व्यय नहीं होता और न वे विशेष भूमि ही घेरते हैं । कुछ वृक्ष ऐसे भी हैं, जिन्हें ऊसर और कृषि की अयोग्य भूमि में भी लगाया जा सकता है । बबूल, ढाक आदि के पेड़ ऐसे हैं जो बिना खाद-पानी के थोड़े ही दिनों में हो जाते हैं । इन वृक्षों से जलाने को लकड़ी मिलेगी और भूमि उपजाऊ बनेगी । यदि गाँव के किसान सभी ऊसर-पर्ती भूमि इस प्रकार के वृक्षों से भर दें तो ईंधन की समस्या हल हो जाने के कारण वे गोबर को बचाकर उसकी खाद बना सकते हैं । नीम ऐसा पेड़ है जिसका होना प्रत्येक घर में आवश्यक है । इसकी छाया मात्र से बहुत से चर्म-रोग नष्ट हो जाते हैं । यदि एक मनुष्य प्रति वर्ष एक फलदार वृक्ष लगाये और कोई किसी वृक्ष को हानि न पहुँचाये तो भोजन की समस्या भी बहुत कुछ हल हो सकती है । फल खाने वालों का स्वास्थ्य अन्न खाने वालों की अपेक्षा बहुत अच्छा रहता है । वे जीवित भी अधिक दिन तक रहते हैं और बीमार भी कम पड़ते हैं । बच्चों को फल खिलाने से बहुत लाभ होता है ।

अभी हमारे देश में शिक्षा की कमी है, इसीलिए साधारण लोग अपने लाभ और कल्याण के कामों में भी उदासीन रहते हैं । ज्यों-ज्यों देश में शिक्षा का प्रचार होगा, लोगों की धारणाएँ बदलती जावेंगी । यदि लोगों ने वन-महोत्सव की वास्तविकता को समझकर उसे अपनाया तो एक दिन ऐसा होगा कि सारी भूमि हरे-भरे फलदार वृक्षों से ढकी ज्ञात होगी । राजस्थान का जो रेगिस्तान बीस मील प्रति वर्ष की चाल से दौड़कर आगरे का आधा भाग निगल चुका है, वह इसी चाल से लौटने लगेगा । सुना गया है, आँधी ने वृक्षों की रक्षा-दीवार कहीं-कहीं उखाड़ फेंकी है । यह निराश होने की बात नहीं, हमें शीघ्र ही उसे अधिक दृढ़ और विस्तृत बना देना चाहिए, तभी हमारी आशाएँ पूर्ण होंगी ।

२४. ब्रह्मचर्य

रूपरेखा—

१. जीवन की सफलता के लिए ब्रह्मचर्य की आवश्यकता।
२. भारत में ब्रह्मचर्य की मान्यता।
३. कुछ उदाहरण।
४. ब्रह्मचर्य पालन में कुछ वर्तमान बाधाएँ।

हमारे शास्त्रकारों ने चार आश्रमों के रूप में जीवन को जिन चार भागों में बाँटा है, उसमें सबसे पहला स्थान ब्रह्मचर्य अवस्था का ही है। ब्रह्मचर्य एक प्रकार से जीवन की नींव होती है। जिसकी नींव पक्की और टिकाऊ नहीं होगी, वह भवन पहले तो पूरा ही नहीं हो सकता और यदि किसी प्रकार बन भी गया तो अधिक दिन खड़ा नहीं रह सकता। संसार के सभी भागों के लोग जीवन का प्रारम्भिक भाग विद्याध्ययन में बिताते हैं। इस समय अपनी समस्त शक्तियों को एकत्र करके ज्ञान-संचय में लगाने की आवश्यकता है। जो व्यक्ति इसी समय अपना चरित्र बिगाड़ लेगा वह जीवन में कभी सुखी नहीं रह सकता।

ब्रह्मचर्य का अर्थ बड़ा व्यापक है। साधारणतया ब्रह्मचर्य से यह समझा जाता है कि वासना से दूर रहना चाहिये। इतना ही नहीं, जो वस्तुएँ, व्यक्ति और कार्य वासना को जगावें, ब्रह्मचारी को उनसे भी दूर रहना चाहिये। पच्चीस वर्ष तक जो ब्रह्मचर्य की सीमा रखी गई थी, इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इसके बाद ब्रह्मचर्य जीवन समाप्त हो जाता है। यह समय तो कम से कम है, जिसका पालन करना मनुष्यमात्र के लिए आवश्यक है। यदि कोई अधिक सफल जीवन बिताना चाहता है, तो वह अधिक समय तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे। बहुत से लोग तो जीवन भर ब्रह्मचारी बने रहे। विवाह के बाद भी अपनी वासनाओं पर संयम रखकर ब्रह्मचर्य का पालन किया जा सकता है। ब्रह्मचर्य-पालन के लिये सादा जीवन, सत्संगति, त्याग, तपस्या आदि की बड़ी आवश्यकता है। कोई भी व्यक्ति विलासपूर्ण जीवन बिताकर ब्रह्मचारी नहीं रह सकता।

ब्रह्मचर्य की महिमा संसार के सभी सभ्य पुरुषों ने गाई है। प्रत्येक धर्म में ब्रह्मचर्य का पहला उपदेश है। भारतवर्ष में ब्रह्मचर्य को सबसे अधिक मान्यता प्राप्त है। प्राचीन काल में प्रत्येक बालक को पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचारी रहकर त्यागपूर्ण जीवन बिताना आवश्यक था। ब्रह्मचारियों के रहने के लिए नगर की हलचलों से दूर जंगलों में आश्रम बने हुए थे, जिनमें विद्वान् ऋषि-मुनि गुरू के रूप में छात्रों की देखभाल करते और उन्हें ब्रह्मचारी रहने की प्रेरणा देते थे। उस समय ब्रह्मचारी कम से कम वस्त्र पहनते और भिक्षा माँग कर भोजन करते थे। ब्रह्मचारी जिस गृहस्थ के द्वार पर पहुँच जाता था, खाली हाथ नहीं लौटता था। वैसे भी लोग ब्रह्मचर्याश्रमों को धन, वस्त्र, भूमि आदि दान करना पवित्र कर्तव्य समझते थे। उस समय ब्रह्मचारी का इतना आदर था कि देश का राजा भी उसके लिए मार्ग छोड़कर अलग खड़ा हो जाता था।

यदि ब्रह्मचर्य के लाभों का विस्तार से वर्णन किया जावे तो एक अच्छा खासा ग्रन्थ बन सकता है। मानव-जीवन सफल बनाने और आजन्म सुखी रहने के लिए ब्रह्मचर्य जीवन एकमात्र आधार है। यह जीवन शक्तियों के संचय और ज्ञान की प्राप्ति का समय होता है। बिना ब्रह्मचर्य का पालन किये इन्हें कभी प्राप्त नहीं किया जा सकता। ब्रह्मचर्य, आरोग्य और दीर्घ जीवन की कुन्जी है। शास्त्रों का वचन है कि देवताओं ने ब्रह्मचर्य रूपी तपस्या के द्वारा ही मृत्यु को जीता है—"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।" ब्रह्मचर्य से बल बढ़ता है और बुढ़ापा कभी पास नहीं झाँकता। ब्रह्मचारी की शिराओं में रक्त और सारे शरीर में अमित वीर्य व्याप्त रहता है, जिसके बल पर वह प्रत्येक बाधा को सहज ही पार कर जाता है। अब तक जितने भी वीर, महात्मा और विद्वान् हुए हैं, सब ने ब्रह्मचर्य का पालन किया।

सांसारिक लाभों के साथ-साथ ब्रह्मचर्य से पारलौकिक लाभ भी हैं। ब्रह्मचर्य के बिना कोई भी मनुष्य धार्मिक जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। ब्रह्मचर्य-पालन के बिना आत्म-ज्ञान या आत्म-बल की प्राप्ति नहीं हो सकती। मन की चंचलता रोकने और इन्द्रियों को वश में करने का एकमात्र साधन ब्रह्मचर्य ही है। ब्रह्मचर्य धारण करने से विचार शुद्ध होते और सिद्धान्तों तथा

आदर्शों पर चलने का वल मिलता है। ब्रह्मचर्य के अभाव में श्रेष्ठ जीवन बिताने की इच्छा करना वालू से तेल निकालने के समान है। ब्रह्मचर्य साधन के बिना अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष किसी की भी प्राप्ति नहीं हो सकती।

जो व्यक्ति ब्रह्मचारी नहीं रहेगा, उसमें वल एवं विद्या की कमी सदा रहेगी। इनके विना धन कमाना असम्भव-सा है। ब्रह्मचर्य के बिना धर्म का पालन तो हो ही नहीं सकता। जो लोग ब्रह्मचारी नहीं रहते और आरम्भ में ही वासनाओं में फँसकर अपना चरित्र बिगाड़ लेते हैं, उनकी इच्छाएँ भी पूरी नहीं हो पातीं। संसार के सुखों को भोगने के लिए भी वलवान् शरीर की आवश्यकता है। असंयमी और चरित्रहीन लोग पहले तो सन्तान उत्पन्न करने योग्य ही नहीं रहतें, यदि किसी प्रकार सन्तान हो भी गई तो वह अल्पजीवी, रोगी और दुर्वल रहती है। पहले के लोग विवाह केवल सन्तान उत्पन्न करने के लिये किया करते थे, वासना-पूर्ति के लिये नहीं। तभी वे और उनकी सन्तान दोनों कितने दीर्घजीवी, स्वस्थ और योग्य होते थे।

ब्रह्मचर्य पालन भारतवासियों का प्रिय विषय रहा है। पच्चीस वर्ष तक तो यहाँ पहले सभी ब्रह्मचारी रहते थे; ऐसे लोगों के उदाहरणों की भी कमी नहीं है, जो जीवन भर ब्रह्मचारी रहे। इस प्रकार के लोग ही संसार में आश्चर्यजनक कार्य कर सके। ब्रह्मचारियों में पितामह भीष्म का नाम सबसे अधिक आदर के साथ लिया जाता है। ब्रह्मचर्य के वल पर ही उन्हें इच्छा-मृत्यु प्राप्त थी। वृद्धावस्था में भी उन्होंने महाभारत के युद्ध में वड़े-वड़े वीरों के छक्के छुड़ा दिये। उन्होंने कई मास तक तीरों की शैय्या पर सोने के वाद सूर्य के उत्तरायण होने पर प्राण त्याग किया था। महात्मा भीष्म की महिमा से सारा महाभारत भरा हुआ है। उन्होंने अपने पिता की इच्छा पूर्ण करने के लिये यह कठिन व्रत धारण किया था।

रामायण में हनुमान की बड़ी प्रशंसा की गई है। हनुमान को ब्रह्मचर्य के कारण ही 'महावीर' की उपाधि प्राप्त थी। ब्रह्मचर्य के वल पर ही वे रातों रात पहाड़ उठाकर हिमालय से लंका पहुँच गये थे। ब्रह्मचारी रहने के कारण उनमें इतना साहस था कि वे अकेले रावण के यहाँ चले गये और सोने की लंका जलाकर लौटे।

महात्मा बुद्ध ने जो सारे दुःखों का कारण और मृत्यु से छुटकारे का उपाय खोजा वह ब्रह्मचर्य के ही कारण मिल सका था। उनमें ब्रह्मचर्य का ऐसा तेज झलकता था कि लोग देखते ही उनकी ओर आकर्षित हो जाते थे। वे ब्रह्मचर्य के ही बल पर सभी बाधाओं से बचते हुए हिंसक और पापियों में भी शान्ति और अहिंसा की ज्योति जला सके। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती के जीवन की सफलता का भेद भी ब्रह्मचर्य ही था। घर के लोगों ने जब बलपूर्वक इनका विवाह करना चाहा तो ब्रह्मचर्य नष्ट होने की आशंका से इन्होंने घर त्याग करके वैराग्य ले लिया। स्वामी जी अपने ब्रह्मचर्य के बल पर ही अनेक बार दुष्टों के पंजे से छूट सके थे। उन्हें कई बार जहर दिया गया, पर ब्रह्मचर्य के कारण स्वामीजी पर उसका घातक प्रभाव नहीं पड़ा। ब्रह्मचर्य पालन करने वालों में महात्मा गांधी का दृष्टान्त सबसे उत्तम है। ब्रह्मचर्य पालन से ही महात्मा गांधी अपने अन्दर इतनी आत्मिक शक्ति संचय कर सके, जिससे देश स्वतन्त्र हो गया।

आजकल हमारे देश में ब्रह्मचर्य का अभाव-सा है। शादी न होने पर भी लोग विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। अश्लील साहित्य पढ़कर और गन्दे सिनेमा देखकर क्या कोई ब्रह्मचारी रह सकता है? प्राचीन काल की अपेक्षा आज की दशा उल्टी है। सबसे अधिक सिनेमा विद्यार्थी ही देखते हैं। उनका विचार है कि यदि अभी जीवन का आनन्द नहीं लिया तो आगे चलकर क्या लेंगे, जबकि घर-गृहस्थी का बोझ आ पड़ेगा। यही कारण है कि रोगों की वृद्धि बरसाती कीड़ों की सी हो रही है और अकाल मृत्यु की भरमार है।

२५. अनुशासन

रूपरेखा—

१. अनुशासन का अर्थ।
२. अनुशासन की आवश्यकता।
३. अनुशासन से सुविधाएँ।
४. सेना, विद्यालय एवं समाज का आधार।
५. वर्तमान काल की अनुशासनहीनता।

संसार नियम में बँधा हुआ है। कुछ प्रकृति के नियम मानते हैं और कुछ समाज के। सूर्य नित्य पूर्व से उदय होकर पश्चिम में अस्त होता है। मनुष्य कोई भी काम करने से पहले समाज, धर्म एवं राज्य के नियमों पर विचार कर लेता है। जो लोग इन नियमों का उल्लंघन करते हैं, उन्हें दण्ड दिया जाता है। इसी नियमबद्धता का नाम अनुशासन है। अनुशासन का अर्थ है किसी का कहना मानना, आज्ञानुसार कार्य करना और नियमों का पालन करना। जो लोग छोटे होते हैं, वे बड़ों के द्वारा बनाये नियमों का पालन करते हैं और जो बड़े होते हैं, वे अपने पूर्वजों या स्वयं अपने द्वारा बनाये नियम मानते हैं।

बहुत से लोग अनुशासन को परतन्त्रता समझते हैं। उनके विचार से स्वतन्त्रता किसी भी नियम को न मानने में है। ऐसे लोग अनुशासन में रहना लज्जा की बात समझते हैं। किन्तु वे भूल करते हैं, स्वतन्त्रता का अर्थ नियम-हीनता नहीं है। नियम न मानने से एक व्यक्ति को चाहे सुविधा मिले पर समाज के अनेक लोगों को कष्ट होता है। यदि सब लोग नियम मानना छोड़ दें, तब लोगों का अनुशासन का लाभ ज्ञात हो। एक ही रेलवे लाइन पर इतनी गाड़ियाँ दौड़ती हैं, पर अनुशासन में रहने के कारण कोई एक दूसरे से नहीं टकरातीं। यदि वे कोई नियम न मानकर स्वतन्त्र रूप से दौड़ने लगें तो प्रतिदिन न जाने कितनी दुर्घटनाएँ हुआ करें। यही दशा समाज की है। अलग-अलग जंगलों में रहने वाले आदिवासियों का काम चाहे अनुशासन के बिना चल जाता हो, पर आज के समाज का नहीं चल सकता और वे जंगली आदिवासी भी कम से कम अपने परिवार का अनुशासन तो मानते ही होंगे। अनुशासन में रहना गुलामी नहीं, गौरव की बात है।

जब से मनुष्य ने होश संभाला है, तब से उसे कदम-कदम पर अनुशासन की आवश्यकता रही है। बिना अनुशासन माने समाज में एक प्रकार का गदर सा फैल जावेगा। राजा या शासक प्रत्येक व्यक्ति के साथ नहीं रहता और न सब के माल की रक्षा स्वयं करता है। उसने कुछ नियम बना दिये हैं। बुद्धिमान् लोग उनके लाभ जानते हैं और सहर्ष उनका पालन करते हैं। मूर्ख जब कभी उनका उल्लंघन करते हैं, दण्ड पाते हैं। दण्ड के द्वारा तो हाथी और शेर

जैसे भयानक जानवरों को भी वश में रखकर अनुशासन में चलाने के लिए विवश किया जाता है, फिर मानव की विशेषता क्या रही ?

अनुशासन से जीवन में अनेक सुविधाएँ हैं। अनुशासन में रहने वाला व्यक्ति सभ्य, सुशील एवं नम्र हो जाता है, उसमें एक प्रकार की शालीनता आ जाती है। जो लोग अनुशासन नहीं मानते वे उद्दण्ड और असभ्य रहते हैं; उनके चेहरे से एक प्रकार की भयानकता सी टपकती है। अनुशासन से स्वयं सुखी रहकर दूसरों को सुख पहुँचाया जा सकता है। माता-पिता, गुरुजन एवं अधिकारी अनुशासन में रहने वाले से प्रसन्न रहते हैं तथा उसकी उन्नति की कामना करते हैं, जबकि अनुशासनहीन व्यक्ति को बुरी और हीन भावना से देखा जाता है।

टिकट लेते समय खिड़की पर लाइन में खड़े होने वाले अनुशासन की सुविधा को जानते हैं। यदि सब लोग इच्छानुसार टिकट खरीदें तो कमजोर बेचारे या तो टिकट ले ही न सकें या भीड़ में कुचल जावें। लाइन बनाकर जितनी देर में टिकट लिये जा सकते हैं, विना लाइन के लेने में उससे दूना समय लगता है। कितने ही लोगों की जेब कट जाती है और पचासों के कपड़े फट जाते हैं। चौराहे पर खड़े सिपाही के अनुशासन में चलने से सड़क पर भीड़ होते हुए भी कोई एक दूसरे से नहीं टकराता। यदि सब के सब इच्छानुसार आगे निकलने के लिये होड़ करने लगें तो सड़कें घायलों और मुर्दों से पटी दिखाई देने लगें।

अनुशासनहीनता में लड़कपन और चंचलता झलकती है तथा अनुशासन मानने में शालीनता। अनुशासनहीन व्यक्ति को लोग उत्तरदायित्व का कोई भी काम सौंपते में सोच-विचार करते हैं। ऐसे व्यक्ति का किसी को विश्वास नहीं रह जाता कि वह कहाँ क्या कर बैठेगा ? अनुशासन में चलना या आज्ञा मानना वास्तव में दूसरे के अनुभवों से लाभ उठाना है। लोगों ने जो भी नियम बनाये हैं वे वर्षों अनुभव करने के वाद ही निश्चित किए हैं। आज्ञा देने वाला कोई भी हितैषी सदा भलाई के लिए ही ऐसा करेगा। इसलिए अनुशासन को न मानना अपनी सुविधाओं को ठुकराना और सुखों से मुँह मोड़ना है।

१८५७ का स्वतन्त्रता-युद्ध जो इतने बलिदानों के होते हुए भी सफल नहीं हो सका, इसका एकमात्र कारण अनुशासनहीनता ही था। सबसे पहले तो उसे आरम्भ करने में ही अनुशासन का उल्लंघन किया गया, चाहे ऐसा किसी भी भावना से किया गया हो, जब ३१ मई को सारे उत्तरी भारत में विद्रोह करने का निश्चय था तो मेरठ की सेनाओं ने १० मई को ही उसे आरम्भ करके वास्तव में अनुशासन तोड़ा, जिसका फल उन्हें ही नहीं सारे देशवासियों को भोगना पड़ा। सब जगह एक साथ विद्रोह न होने से अँग्रेजों ने दूसरी जगह से सेना मँगाकर उसे दबा दिया। बाद में भी कोई किसी के अनुशासन में रहना नहीं चाहता था। इसी मनमानी के कारण अँगरेजी सेना ने संख्या में कम होते हुए भी इन्हें हरा दिया।

महात्मा गांधी ने जो शान्तिपूर्वक विदेशी शासन की जड़ें हिला दीं, इसमें भी अनुशासन ही कारण था। उनकी आज्ञा होते ही लोग सत्याग्रह करने चल पड़ते थे। जेलों में भाँति-भाँति के अत्याचार और कष्ट सहने पर भी किसी ने शान्ति और अहिंसा का उल्लंघन नहीं किया। पहली बार के सत्याग्रह में जब कुछ लोगों ने पुलिस के साथ मारपीट कर डाली तो गांधी जी ने तुरन्त सत्याग्रह बन्द करने की आज्ञा दे दी और कहा—"अभी देश सत्याग्रह के योग्य नहीं है। लोगों में अनुशासन की कमी है।" उन्होंने तब तक दुबारा सत्याग्रह नहीं किया, जब तक उन्हें जनता के अनुशासन का विश्वास नहीं हो गया। अनुशासन से मानव सदैव से सुविधा पाता आया है, इसका अनुभव न किया हो, यह दूसरी बात है।

सेना में सबसे अधिक अनुशासन की आवश्यकता रहती है। वहाँ अनुशासन न मानने के लिये कड़े से कड़ा दण्ड दिया जाता है। सेना में लोग यदि अपने अधिकारी की आज्ञा के अनुसार न चलें तो उसका बल कुछ भी न रह जाए। यह जानते हुए भी कि अधिकारी ने गलत आज्ञा दी है, सैनिक उसका पालन करता है, चाहे उसमें प्राणों का संकट ही क्यों न आ जावे? रेल का ड्राइवर यह देखते हुए भी कि प्लेटफार्म खाली है, सिगनल न होने से गाड़ी को भी आगे नहीं बढ़ाता। अनुशासन का महत्व विद्यार्थी-जीवन में भी कम नहीं है। अनुशासन के ही आधार पर अकेला अध्यापक चालीस-पचास लड़कों की कक्षा में शान्ति

रखता है। यदि लड़के अनुशासन मानना छोड़ दें तो वह बेचारा किस-किस को
शारीरिक दण्ड देता फिरेगा ? दूसरे, इस प्रकार अध्यापक का सारा समय
लड़कों को शान्त करने में ही चला जावेगा। सब लड़के अध्यापक का व्याख्यान
सुन रहे हों और एक लड़का गाने या हल्ला मचाने लगे तो सारी कक्षा में गड़-
बड़ी फैल जावेगी। एक प्रकार की लिपि का प्रयोग करना और एक प्रकार की
भाषा बोलना भी तो अनुशासन में ही रहना है। पहले के लोगों ने जो नियम
बना दिया है कि अमुक अक्षर इस प्रकार लिखो या इस वृक्ष को इस नाम से
पुकारो ; यदि उनका नियम मानेंगे तो हमारी लिपि और भाषा को सब सम-
झेंगे और मनमानी करेंगे तो कोई नहीं समझ सकेगा। समाज का भी आधार
अनुशासन ही है। यदि सब लोग समाज के नियमों का पालन बन्द कर दें तो
दो दिन भी काम नहीं चल सकता।

अनुशासन की दृष्टि से हमारे देश की वर्तमान दशा बड़ी शोचनीय है।
सबसे अधिक अनुशासनहीनता विद्यार्थियों में है। जब छात्र-जीवन में ही वे
नियन पालन करना नहीं सीखते तो आगे चलकर उसका अभ्यास कब करेंगे।
यही कारण है कि पढ़े-लिखे लोगों की अपेक्षा अपढ़ लोगों में अनुशासन की
भावना अधिक है। वे लोग अज्ञानवश चाहे किसी नियम का उल्लंघन भले ही
कर दें, पर जान-बूझकर नहीं करते। विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता के समा-
चारों से प्रायः अखबार भरे रहते हैं।

२६. वर्षा ऋतु

रूपरेखा—

१. वर्षा ऋतुओं की रानी।
२. वर्षा की प्राकृतिक शोभा।
३. अतिवृष्टि और अनावृष्टि।
४. वर्षा और आधुनिक विज्ञान।
५. वर्षा और कृषि।

सभी ऋतुएँ प्रकृति की देन हैं। उनकी सुविधा-असुविधाओं को मनुष्य इच्छा
या अनिच्छा से सहता है। सब ऋतुओं की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं किन्तु

वसन्त को सब का राजा माना गया है। इस समय जाड़ा कम हो जाता है, भाँति-भाँति से फूल फूलने लगते हैं और प्रकृति में एक स्वाभाविक मस्ती आ जाती है। वसन्त के बाद दूसरा स्थान वर्षा का है। इसे ऋतुओं की रानी कहा गया है। कवियों ने वसन्त के बाद वर्षा का ही अधिक वर्णन किया है। वास्तव में देखा जाय तो वर्ष का पूरा आनन्द और प्रकृति की सम्पूर्ण शोभा वर्षा पर ही निर्भर है। जिस वर्ष वर्षा कम या अधिक होती है, उस वर्ष कोई भी ऋतु पूरा आनन्द नहीं दे पाती। लोगों को समय काटना ही कठिन हो जाता है, ऋतुओं का आनन्द कौन लूटे ?

यद्यपि वसन्त में ही प्रकृति में यौवन आता है पर कण-कण में जीवन का संचार वर्षा की बूदें ही करती हैं। यदि खाने को रोटी न मिले तो मस्ती पास भी नहीं झाँकती। वसन्त की शोभा का आनन्द कुछ पढ़े-लिखे साहित्यिकों और साधन-सम्पन्न लोगों तक ही सीमित है, पर वर्षा से तो धनी-निर्धन सभी प्रसन्न हो उठते हैं। खेती का आधार तो वर्षा ही है, जिससे मनुष्य मात्र को अन्न मिलता है।

वर्षा से पहले ग्रीष्म में प्रकृति का रूप बड़ा उग्र होता है। दिन निकलते ही गर्मी पड़ने लगती है। छाता लगाकर भी बाहर निकलने की इच्छा नहीं होती। पंखे की हवा भी गरम लगती है। पशु-पक्षी सब प्यास और गर्मी से दुःखी हो जाते हैं। पेड़-पौधे सब पानी के अभाव में सूख जाते हैं। उस समय पानी का 'जीवन' नाम सार्थक जान पड़ता है। दिन में लुएँ और गर्म आँधियाँ चलती हैं, सारा वातावरण धूल से भर जाता है। ऐसे समय जब कि प्राणि-मात्र गर्मी से व्याकुल होकर ठंडक और पानी के लिए तरस जाता है, उसकी आँखें आकाश पर लगी रहती हैं और अनवरत वर्षा की प्रार्थना किया करता है। वर्षा रानी की सवारी आती है। ठण्डी-ठण्डी पुरवा हवा चलने लगती है, आकाश काले-भूरे बादलों से छा जाता है और बड़ी-बड़ी बूँदों के भूमि पर गिरने से एक प्रकार की सौंधी महक उठने लगती है।

वर्षा के जल को पीकर धरा की प्यास बुझ जाती है, चारों ओर पानी ही पानी दिखाई देता है और पेड़-पौधे हरे-भरे होकर झूमने लगते हैं। जमीन पर कीचड़ होने से सफेद कपड़े वाले बाबू लोगों को चाहे चलने-फिरने में परेशानी

होती हो, पर किसान का कोई काम नहीं रुकता। वह वर्षा में भीगता हुआ खेतों को जोतना और उनमें बीज बखेरना प्रारम्भ कर देता है। गर्मी के मारे पृथ्वी के भीतर छुपे हुए मेंढक बाहर निकल आते हैं और प्रसन्नता के मारे चिल्लाने लगते हैं। इधर झींगुर और झिल्ली भी अपनी कानफोड़ धुन लगाये ही रहते हैं। तरह-तरह के विचित्र आकार वाले जीव-जन्तुओं के दर्शन होते हैं। मखमल-सी कोमल और सुन्दर इन्द्रवधू खेतों में घूमने लगती हैं, केंचुए और गिजाइयाँ भी सर्वत्र देखी जा सकती हैं। सूखी हुई सरिताएँ उमड़ आती हैं और तालाब लहलाने लगते हैं।

कुछ दिन बाद सारी पृथ्वी हरियाली से ढक जाती है। फसलों की मुलायम कोंपलें देखकर किसान का मन मौज में भर उठता है। युवती स्त्रियाँ मस्त होकर झूले पर कजली और मल्हार गाने लगती हैं। आल्हा का उत्साहवर्द्धक राग किसी भी चौपाल में सुना जा सकता है। जिधर दृष्टि जाती है, आनन्द ही आनन्द दिखाई देता है। ऐसे में कवियों की कल्पना और कलाकारों की कूची भी मचल उठती है।

इस मादक और मोहक रूप के साथ वर्षा का एक भयानक रूप भी है। आसाढ़ में वर्षा होने में थोड़ी भी देर होने पर किसान अज्ञात आशंका से काँप उठता है। वर्षा के बिना खेती आरम्भ कैसे की जावे और खेती के बिना लोग खाएँगे क्या? साधारण रूप से ही वर्षा का होना लाभदायक है। वर्षा न होने पर या कम होने पर लोगों की आशाएँ असमय में ही मुरझा जाती हैं। पानी के बिना फसल के छोटे-छोटे अंकुर सूखने लगते हैं और सारा वातावरण बिल्कुल भयानक और नीरस बन जाता है। वर्षा न होना ही अकाल का कारण है, जिसमें अनेक लोग अन्न के अभाव में मर जाते हैं।

वर्षा की कमी की तरह इसकी अधिकता भी खतरनाक है। लगातार वर्षा होने से जब किसी का घर सहसा गिर पड़ता है तो उसके समान दुःखी कोई दिखाई नहीं देता। जिसके घर खाने को अनाज और जलाने को सूखा ईंधन नहीं होता, उसे भूखे रहने के सिवा कोई चारा नहीं रह जाता। जब गाँवों के चारों ओर पानी ही पानी भर जाता है तो कहीं भी जाना असम्भव सा लगता है। वर्षा की अधिकता के कारण आने वाली बाढ़ फसल नष्ट करने के साथ-

साथ धन और जन को भी काफी नुकसान पहुँचाती है। रातों रात गाँव के गाँव बाढ़ भी भेंट हो जाते हैं। यदि कोई अपनी जान लेकर भाग भी आता है तो उसके सामने भोजन की समस्या मुँह फाड़कर खड़ी हो जाती है। बाढ़ के उतरते ही रोगों का आक्रमण होता है, जो लोगों की कमर तोड़ देता है। वैसे भी वर्षा में अनेक बीमारियाँ फैलती हैं। वर्षा की समाप्ति पर क्वार के महीने में फसली बुखार और हैज़ा फैलना साधारण बात है। इन दिनों साँप-बिच्छू आदि ज़हरीले जानवर भी बहुत निकलते हैं, जिनके काटने से प्रति वर्ष अनेक दुर्घटनाएँ होती हैं। मच्छर इतने बढ़ जाते हैं कि शरीर का रक्त चूसने के साथ-साथ कानों पर लगातार शहनाई बजाकर सोना कठिन कर देते हैं। धूप न निकलने के कारण कपड़ों में बदबू आने लगती है और चारपाइयों में खटमल हो जाते हैं।

हमारे देश पर प्रकृति का कोप-सा मालूम होता है। असम में वर्ष में कई बार नाशकारी बाढ़ें आती हैं। बिहार प्रान्त पर भी बाढ़ का कोप अधिक रहता है। दो-तीन वर्ष से यमुना की बाढ़ नगरों और गाँवों के लिए समस्या बन जाती है। रेलवे लाइन टूट जाने से जो असुविधा रहती है, उसे घूमकर आने वाले यात्री ही जान सकते हैं। हमारी सरकार ने बाढ़ की मुसीबतों को रोकने के लिए प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत बहुत से शक्तिशाली बाँध बनाये हैं जिनके पूर्ण हो जाने पर बाढ़ से रक्षा के साथ-साथ सिंचाई की सुविधा भी हो सकेगी तथा वहाँ से निकाली गई बिजली से अनेक काम निकलेंगे।

वर्षा के विषय में विज्ञान ने भी बहुत खोज की है। जहाँ पहले के लोग वर्षा का आधार यज्ञों का धूम और इन्द्र की कृपा मानते थे, वहाँ विज्ञान ने सूर्य की किरणों से उठने वाली भाप को बादलों का कारण सिद्ध कर दिया है। भाप से भरी मानसून हवा जिधर होकर निकलती और पहाड़ों से टकराती है, वहाँ वर्षा कर देती है। ज्यों-ज्यों मानसून आगे बढ़ती है, वर्षा की कमी होती जाती है। अधिक वर्षा का कोई उचित कारण तो वैज्ञानिक नहीं खोज सके हैं, पर वर्षा कम होने का कारण उन्होंने वृक्षों का कम होना बताया है। वृक्षों में कुछ ऐसी आकर्षण-शक्ति होती है कि वे बादलों को बरसने के लिये

विवश कर देते हैं। वृक्षों की कमी से आये हुए बादल भी बिना बरसे या थोड़ी वर्षा करके चले जाते हैं। विदेशों में तो इच्छानुसार वर्षा करने का साधन भी ढूँढ लिया गया है। वायुमण्डल में हवाई जहाज द्वारा कोई रासायनिक द्रव्य छिड़ककर वायु में व्याप्त जल की बूँदें एकत्र की जाती हैं, जो भारी होते ही टपक पड़ती हैं। इसी प्रकार घिरे हुए विनाशकारी बादलों की घनीभूत बूँदों को भी रासायनिक द्रव्य की सहायता से भाप बनाकर वर्षा से बचने का उपाय खोजा जा चुका है किन्तु ये साधन इतने महँगे हैं कि सर्वसाधारण के वश का काम नहीं।

इतना सब होते हुए भी वर्षा का महत्व है। खेती का तो वह आधार ही है। सभी जगह हानि-लाभ तो लगा ही रहता है। एक बार की वर्षा अनियमित हो जाने से साल भर किसान भूखों मरता है। वर्षा के बिना बेचारा सीमित साधनों से किस-किस चीज की सिंचाई कर सकता है? वर्षा से खेती की रक्षा ही नहीं होती, भूमि भी उपजाऊ बनती है। जिन देशों में वर्षा नहीं होती या कम होती है, वहाँ की भूमि रेतीली और खेती के लिये बेकार होती है। वास्तव में वर्षा एक ईश्वरीय वरदान है, जिसके आधार पर सारे चर-अचर प्राणियों का जीवन चलता है। वसन्त चाहे ऋतुराज न हो पर वर्षा ऋतुओं की रानी अवश्य है।

२७. मित्र की बारात

रूपरेखा—

१. मित्र की घनिष्टता।
२. बारात की तैयारी।
३. मार्ग एवं जनवासे का वर्णन।
४. बारात की विशेष घटना।
५. हृदय पर प्रभाव।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है, इसलिये उसे दूसरों के हर्ष और शोक में सम्मिलित होना पड़ता है। जिन लोगों से हमारा सम्पर्क रहता है, उनमें कुछ हमारे मित्र बनते हैं और कुछ शत्रु। विद्यार्थी-जीवन में मित्र बनाने की जितनी

सुविधा होती है, आगे चलकर उतनी नहीं रहती। मेरे थोड़े दिन के जीवन में वैसे तो बहुत से मित्र आये हैं; पर सबसे अधिक घनिष्टता नरेश से ही अनुभव कर सका हूँ। ऐसा मालूम होता है कि हम दोनों का निर्माण विधाता ने एक से ही तत्वों से किया है। रुचि और स्वभाव की ऐसी एकता सगे भाइयों में भी नहीं मिलती। अनबन के अनेक अवसर आने पर भी हमारी मित्रता का धागा नहीं टूट सका। मैं तो कभी-कभी गरम भी हो जाता हूँ पर नरेश तो मानो शान्ति का सागर है। उसकी शान्तिपूर्ण, नम्र और मधुर बातें सुनकर कौन हृदय न दे बैठेगा ? हम दोनों की घनिष्टता इस हद पर पहुँच गई है कि प्रायः साथ-साथ सभी जगह आते-जाते हैं। वैसे नरेश मेरा पड़ोसी और सजातीय भी है; उसके और मेरे परिवार में भी अच्छा सम्बन्ध है।

जब नरेश की शादी पक्की हुई तभी मैंने समझ लिया कि मुझे बारात में अवश्य जाना पड़ेगा। न मेरे बिना नरेश को चैन पड़ेगा और न मैं ही बिना उसके रह पाऊँगा। नरेश के पिता ने अपने मित्रों और सम्बन्धियों को विवाह का निमन्त्रण देते समय उसे भी इस बात की सुविधा दी कि अपने दो-चार मित्रों को निमन्त्रित कर सके। नरेश ने मेरे अतिरिक्त दो मित्रों को और न्यौता दिया जो अपने मामा के यहाँ विवाह होने के कारण नरेश की बारात में सम्मिलित नहीं हो सके। मुझे किसी भी यात्रा में जाने की बड़ी उमङ्ग रहती है और फिर बारातों की तो बात ही क्या है ? तरह-तरह की स्वागत-सामग्री, भाँति-भाँति की हँसी-मजाक और सुन्दर प्रदर्शन किसे भले नहीं लगते ? मैंने नरेश की बारात के ही उद्देश्य से कई कीमती कपड़े बनवाये और नया जूता खरीदा। मुझे ताश खेलने से चिढ़ है, इसलिये कई अच्छे उपन्यास और पत्रिकाएँ एकत्र कीं, जिससे समय कटने में असुविधा न हो। नरेश के पिता ने मेरे पिता जी को भी बारात का न्यौता दिया था, किन्तु वे दूकानदारी का समय होने के कारण जा नहीं सके। पिताजी का न जाना मुझे अच्छा ही लगा क्योंकि उनके सामने संकोच के कारण मैं बारात का सच्चा आनन्द नहीं ले पाता।

बारात मेरठ पहुँचनी थी। हमारे कस्बे से अलीगढ़ तक मोटर से जाने का प्रबन्ध था, फिर रेल से। बारात प्रातःकाल ६ बजे जाने का निश्चय हुआ था। मैं जब अपना सामान लेकर नरेश के घर पहुँचा तो लोग तैयार से थे,

सवारियाँ मोटर में बुरी तरह भरी हुई थीं। मुझे बड़ी निराशा हुई कि जगह ठीक से मिलेगी भी या नहीं। तभी नरेश ने मुझे पुकारा और अपने पास बुलाता हुआ बोला—"उधर कहाँ घूम रहे हो ? यहाँ आओ, भले आदमी की तरह मेरे पास बैठो। तुम्हें बारात लौटने तक मेरे ही साथ रहना है।" मैं चुपचाप बैठ गया। थोड़ी देर बाद मोटर चली और हम अलीगढ़ स्टेशन पर पहुँच गये। वहाँ गाड़ी आने में कुछ देर थी, पर प्लेटफार्म सवारियों से पटा हुआ था। गाड़ी में भी बड़ी भीड़ आई। सैकिण्ड क्लास की भी यह दशा थी कि लोग खड़े होकर सफर कर रहे थे। एक्सप्रेस गाड़ी होने के कारण हम शीघ्र ही गाजियाबाद पहुँच गये। वहाँ हमें मेरठ के लिए गाड़ी बदलनी थी। गाजियाबाद पर लड़की वालों ने नाश्ते का ऐसा शानदार प्रबन्ध किया था कि अलीगढ़ से खड़े-खड़े आने की परेशानी हवा हो गई। इसके बाद गाड़ी गाजियाबाद से ही बनती थी, इसलिए मेरठ तक की यात्रा बड़ी सुखद रही। केवल गर्म हवा के झोंके अवश्य कभी-कभी तङ्ग करते रहे।

बारात लगभग बारह बजे मेरठ पहुँची। स्टेशन पर स्वागत का प्रबन्ध था। वहाँ की सी स्वादिष्ट लस्सी मैंने कहीं नहीं पी। इसके बाद बारात बस के द्वारा जनवासे में पहुँचाई गई। दूल्हा एवं उसके घनिष्ट लोगों के लिए कार का प्रबन्ध था, जिनमें मैं भी सम्मिलित था। जनवासे का स्थान एक विशाल और सुन्दर धर्मशाला में था। उसे झंडियों, रिबनों और बन्दनवारों से खूब सजाया गया था। सभी कमरों में एक-एक सीलिंग फैन था। लड़की वालों ने वहाँ इतना उत्तम प्रबन्ध किया था कि किसी को कोई असुविधा न हो सके।

दोपहर का भोजन करने के बाद सब लोग आराम करने लगे। शाम को द्वार-पूजा के लिए सब लोग कन्या-पक्ष वालों के घर गये। उस मकान की भव्यता और सुन्दरता देखकर सभी दङ्ग रह गये। सभी बारात वालों का मार्ग में भी सत्कार हो चुका था, पर इस स्वागत की तो बात ही निराली थी। आतिश-बाजी आदि में पैसा फूंकना दोनों पक्षों में किसी को पसन्द नहीं था। थोड़ी देर में लाउडस्पीकर पर किसी का मधुर कंठ सुनाई दिया। कोई सज्जन स्वागत-गान पढ़ रहे थे। साथ-साथ उसकी एक-एक प्रति सब को बाँटी जा रही

थी। स्वागत-गान समाप्त होने पर वर-पक्ष की ओर से कृतज्ञता-प्रकाश-पत्र भेंट किया गया, जिसे पढ़ने का काम मुझे सौंपा गया। द्वार-पूजा के बाद सब लोगों ने भोजन किया। उस समय की हँसी-मजाक और छेड़छाड़ का आनन्द विचित्र ही होता है।

विवाह का समय रात के दो बजे रखा था। मैं इस समय की नींद किसी भी मूल्य पर नहीं छोड़ता, पर नरेश के कारण विवाह-मण्डप में जाना ही पड़ा। पंडितों द्वारा किया जाता हुआ वेदपाठ बड़ा भला लग रहा था, विशेषता यह थी कि दोनों ओर के पंडित प्रत्येक मन्त्र का अर्थ और प्रत्येक क्रिया का महत्व समझाते जाते थे। वर-वधू द्वारा की जाने वाली प्रतिज्ञाओं को सुन कर मुझे भारतीय सभ्यता के प्रति बड़ी श्रद्धा हुई। यदि वर-वधू इन्हें ठीक से निभावें तो तलाक और असन्तोष को स्थान ही कहाँ रहे? विवाह समाप्त होते-होते दिन निकल आया। दूसरा दिन बड़ी मस्ती में कटा। हम लोगों ने इधर-उधर घूमकर मेरठ शहर देखा। छावनी देखने में बड़ा आनन्द आया। सन् १८५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम के दो-चार अवशेष भी देखने को मिले।

रात के दस बजे बरात विदा हुई। दहेज के सामान को ले जाना वास्तव में समस्या बन गया था। लौटते समय सब प्रसन्न थे—वर, योग्य कन्या को पाकर, वर के पिता धन और दहेज को पाकर तथा बराती अच्छी खातिर होने से। सब लोग बरात की बातों की चर्चा करते हुए कन्या-पक्ष वालों की प्रशंसा कर रहे थे। ऐसा बहुत कम होता है कि सभी बाराती कहीं से सन्तुष्ट होकर लौटें।

बारात में एक घटना ऐसी घटी जिसकी याद करके मुझे अब भी हँसी आ जाती है। हमारे पंडित जी कुछ मोटे हैं, चलने-फिरने एवं उठने-बैठने में उन्हें कुछ असुविधा होती है। जब वे बरौना लेकर गये तो किसी मजाकिये ने उनके पटले के नीचे मटर के दाने बिछा दिये। पंडित जी ज्योंही एक टाँग उचका कर उस पर बैठने लगे कि पटला सरक गया और पंडित जी बोझा न सम्भाल पाने के कारण पीछे की ओर गिर पड़े। वहाँ पहले ही काला रंग बिछा दिया गया था, जिससे उनके कपड़े रंग गये और उन्हें कुछ मालूम भी न हुआ। नाई ने जब लौटकर पूरी बात बताई तो हँसते-हँसते पेट में दर्द हो गया। अगर हम लोग वहाँ उपस्थित होते तो न जाने क्या दशा होती?

बारातों के मुझे अनेक मीठे-कड़वे अनुभव हैं, पर नरेश की बारात का मुझ पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। वहाँ यह ध्यान रखा गया कि दोनों पक्षों में किसी का पैसा व्यर्थ खर्च न हो। कन्या-पक्ष वालों की सभ्यता, नम्रता और तत्परता वास्तव में सराहनीय थी। ऐसा उत्तम प्रबन्ध बहुत कम हो पाता है।

२८. बाढ़ का वर्णन

रूपरेखा—

१. प्रकृति का कोप।
२. बाढ़ का समय और क्षेत्र।
३. बाढ़ के समय की दशा।
४. लोगों की सहायता।
५. सरकार के द्वारा रोकने के उपाय।

मनुष्य अनादि काल से प्रकृति के साथ संघर्ष करता आया है और इस संघर्ष में ही उसका जीवन है। गगन-चुम्बी दृढ़ भवन, बड़े-बड़े पुल और भाँति-भाँति के गरम-ठण्डे कपड़ों का निर्माण प्रकृति के साथ चल रहे संघर्ष का ही फल है। वैसे तो प्रकृति की सभी चोटों को मनुष्य सहता आया है किन्तु बाढ़ के सामने मनुष्य लाचार हो जाता है। बाढ़ वास्तव में प्रकृति का प्रकोप ही है। इससे कुछ भी नहीं बच पाता। फसल, घर, धन, अन्न, पशु सब इसकी भेंट हो जाते हैं।

बाढ़ प्रायः वर्षा ऋतु में आती है। पहाड़ों पर अधिक वर्षा होने और बर्फ पिघलने के कारण नदियों में पानी बढ़ जाता है। इधर मैदान की वर्षा का पानी लेकर सहायक नदियाँ उनमें मिलती हैं तो बड़ी नदियाँ दानवी हाहाकार करती हुई आस-पास के क्षेत्रों को समेट लेती हैं। वैसे तो नदी-किनारे के सभी गाँवों में बाढ़ आने का भय रहता है, पर उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों, बिहार, बंगाल और आसाम में बाढ़ के भयानक आक्रमण होते ही रहते हैं। कुछ वर्षों से यमुना नदी उत्तरी भाग को भी हानि पहुँचा रही है। पूर्व में राप्ती, गंडक, सरयू, गंगा, कोसी और ब्रह्मपुत्र की विनाश-लीला चलती रहती है। ब्रह्मपुत्र में तो वर्ष में कई बार ऐसी बाढ़ आती है कि यातायात के साधन एवं डाक की

व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाती है। बाढ़ का कारण प्राकृतिक ही है; उस पर किसी मानवी शक्ति का अंकुश नहीं है। मैदान की वर्षा की अपेक्षा बाढ़ का कारण पहाड़ों की वर्षा ही अधिक है। कैसी विचित्रता है कि जब एक स्थान पर बाढ़ आती है तो दूसरे स्थानों पर सूखा के समाचार सुने जाते हैं।

बाढ़ कभी रात में आती है और कभी दिन में। बाढ़ का रात में आना बड़ा खतरनाक होता है। बहुत से लोग सोते ही सोते समाप्त हो जाते हैं; जो जाग पड़ते हैं वे बेचारे अन्न का दाना नहीं बचा पाते। उस समय भागकर ऊँचे स्थान पर प्राण बचाने की इतनी जल्दी पड़ती है कि माताएँ बच्चों को नहीं सम्भाल पातीं। उस समय पशु रस्सी तुड़ाकर भागते हैं, स्त्रियाँ रोती हैं, बच्चे चीखते हैं और मनुष्य एक दूसरे को आवाज देते हुए शोर करते हैं, तो बड़ा कोलाहल और हल्ला मचता है। दिन में आने वाली बाढ़ का पता तभी चल जाता है, जबकि पानी कुछ दूर हो और पानी घरों में आते-आते लोग अधिकांशतः आवश्यक सामान लेकर ऊँचे स्थानों पर पहुँच जाते हैं। दिन में लोग नावों पर भी सामान लादकर सुरक्षित स्थानों पर ले जाते हैं।

बाढ़ आने पर लाखों मन अन्न की फसल सड़ जाती है, लोगों के घर गिर पड़ते हैं, या भीगकर कमजोर हो जाते हैं। कभी-कभी तो बाढ़ में हाथी जैसे विशाल पशु भी बह आते हैं। जब लोग कुछ नहीं बचा पाते तो मनुष्यों के खाने और पशुओं के चारे की कठिन समस्या सामने आती है। बाढ़ के जल में साँप, बिच्छू आदि विषैले जन्तु भी बह आते हैं और प्रायः रक्षा के लिए ऊँचे स्थानों पर आते हैं। नाव डूब जाने के कारण भी बहुत से लोग मौत के मुँह में चले जाते हैं।

बाढ़ के समय तो अपार धन-जन की हानि होतीं है, बाढ़ उतर जाने पर बहुत सी समस्याएँ सामने आती हैं। गृहस्थी की कोई वस्तु पास नहीं होती। भूमि की फसल नष्ट होने के साथ-साथ वह इस योग्य भी नहीं रह जाती कि उसमें अगली फसल लगाई जा सके। कभी बाढ़ के कारण .नदियों की रेत बिछ जाने से भूमि उपजाऊ नहीं रह जाती। गड्ढों में पानी और घास सड़ने से जो बीमारियाँ फैलती हैं, वह भी कम भयंकर नहीं होतीं। कुओं में बाढ़ का पानी भर.जाने से भी बीमारी पैदा होती है।

मनुष्य का कर्तव्य है कि संकट के समय दूसरों की सहायता करे । इसीलिये
नगर में जब बाढ़ के समाचार पहुँचते हैं तो लोग चन्दा करके बाढ़ से सताये
हुए लोगों की सहायता करते हैं । उन्हें पका हुआ खाना और वस्त्र पहुँचाते हैं।
नगरों में इस समय अनेक संस्थाएँ काम करने लगती हैं जिनका लक्ष्य नगर के
लोगों से पैसा इकट्ठा करके बेघरबार लोगों को आराम पहुँचाना होता है।
राजनीतिक दल भी इस अवसर पर नहीं चूकते । वे लोगों की सेवा करके उनके
हृदय में सहानुभूति की भावना उत्पन्न करने और चुनाव में वोट पाने के लिए
ही ऐसा करते हैं । स्कूल के विद्यार्थी भी गाँवों से चन्दा, नाज और वस्त्र इकट्ठे
करके लाते हैं । कुछ स्कूलों में इस काम के लिए अवकाश भी कर दिया जाता
है । इस समय बड़े-बड़े कॉलेजों के छात्र और छात्राएँ नाटक आदि खेलकर भी
पैसा एकत्र करते हैं । प्रायः अभिनेता और अभिनेत्रियाँ बाढ़-पीड़ितों की सहा-
यता के लिए मैच खेलते हैं और टिकट से आया हुआ धन सहायता में लगा देते
हैं । लोग अपने-अपने प्रिय अभिनेताओं को देखने के लिए टूट पड़ते हैं और कुछ
ही घण्टों में हजारों-लाखों रुपया एकत्र हो जाता है ।

बाढ़-पीड़ितों को सरकार भी सहायता पहुँचाती है । जहाँ जाने का कोई
साधन नहीं होता, रेलें और सड़कें खराब हो जाती हैं, वहाँ हवाई जहाज से
खाना गिराया जाता है । लोगों को घरों से निकालने और सुरक्षित स्थान पर
पहुँचाने के लिए इंजन से चलने वाली तेज नावें भेजी जाती हैं । सेना के बहुत
से लोगों को बाढ़-पीड़ितों की सहायता के लिये नियुक्त कर दिया जाता है ।
राज्य के अधिकारी और नेता बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों का दौरा करते हैं, जिनकी सिफा-
रिश पर किसानों का लगान माफ कर दिया जाता है, कर्जा दिया जाता है और
सस्ते गल्ले की दुकानें खुलवाई जाती हैं । बीमारी से बचाने के लिए मुफ्त औष-
धियाँ बाँटने का प्रबन्ध भी किया जाता है ।

जिन स्थानों में प्रति वर्ष बाढ़ आती है, वहाँ के लोगों को बरसात में
कष्टमय जीवन बिताने का अभ्यास-सा पड़ जाता है, फ़िर भी फसल की
हानि से तमाम देश पर प्रभाव पड़ता है। इसलिए जनता के साथ-साथ सरकार
का भी कर्तव्य हो जाता है कि बाढ़ रोकने या बाढ़ से लोगों की रक्षा के
उपाय करे । स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद से सरकार का ध्यान इस ओर गया है।

उसने करोड़ों रुपये की योजनाएँ भी इसी दृष्टि से चालू की हैं, किन्तु धन के अभाव के कारण उनके पूरे होने में समय लगेगा।

नदियों की बाढ़ रोकने का सफल प्रयत्न सबसे पहले चीन में किया गया था। वहाँ जनता की सहायता से नदियों के दोनों ओर विशाल और दृढ़ बाँध बनाये गये थे, जिनके बनाने में लाखों मजदूरों ने महीनों बिना वेतन लिए काम किया था। हमारे देश में भी श्रमदान के द्वारा छोटी-छोटी नदियों पर बाँध बनाये गये हैं। सरकार पूर्वी जिलों में अनेक बाँध बनाकर नदियों की विनाशकारी धारा को कल्याण की ओर मोड़ने का प्रयत्न कर रही है। बाढ़ का जल विशाल जलाशयों में एकत्र किया जावेगा, जिससे बिजली बनाकर भाँति-भाँति के कल-कारखाने चालू किये जावेंगे। उस जल से नहरें निकालकर सिंचाई की व्यवस्था भी की जा रही है।

बाढ़ से बचने के अन्य कई सुलभ साधन भी हैं। नदियों के दोनों किनारों पर कुछ हटकर स्थान-स्थान पर मजबूत बाँध बनाने चाहिए जिससे धारा उनसे आगे न बढ़ सके। नदियों को गहरा कर देने से भी बाढ़ की आशंका कम हो जाती है। जहाँ बाढ़ आती हो वहाँ के लोगों को एक ऊँचा सा स्थान बनाकर ऊँचे रास्ते द्वारा गाँव से जोड़ लेना चाहिए, जिस पर बाढ़ के समय शरण ली जा सके। प्रत्येक गाँव में चन्दे से कुछ ऐसी नावें भी खरीद लेनी चाहिए जो इंजन से चलती हों। मनुष्य का बाढ़ के प्रति संघर्ष जारी है और आशा है, मिट्टी का यह पुतला जल की नाशकारी लहरों पर अवश्य नियन्त्रण कर लेगा।

२६. सत्संगति

रूपरेखा—

१. सामाजिक जीवन में संगति आवश्यक है।
२. अर्थ और स्पष्टीकरण।
३. सत्संगति का प्रभाव।
४. दुष्टों के सुधार में मतभेद।
५. कुछ उदाहरण।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है, उसे अपने जीवन की आवश्यकताएँ पूर्ण करने के लिए दूसरों के सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार वह दूसरों से मिलकर रहने के लिए विवश है। जब मनुष्य असभ्य अवस्था में पेड़ों पर रहता था, पत्ते पहनता और पशुओं को मारकर खाता था, तब चाहे उसका काम सबसे अलग रहकर चल जाता हो, पर आज तो बिना दूसरों के सहयोग के वह थोड़े दिन भी जीवित नहीं रह सकता। बड़े-बड़े नगरों का निर्माण इसी-लिये हुआ है कि लोग एक दूसरे को सहयोग दे सकें।

सामाजिक प्राणी होने के नाते ही मनुष्य सब बातें दूसरों से सीखता है। मनुष्य उठने-बैठने, खाने-पीने और बोलने-चालने की शिक्षा दूसरों से ही लेता है। और इस प्रकार उस पर अच्छी-बुरी बातों का बड़ी जल्दी प्रभाव पड़ता है। देखा गया है कि अच्छी बातों का प्रभाव पड़े या न पड़े पर बुरी बातों का प्रभाव अवश्य होता है और जल्दी होता है। मनुष्य के सभी दोष-गुण दूसरों की संगति से ही उत्पन्न होते हैं। प्राचीन विद्वानों ने कहा भी है—"संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति" अर्थात् अच्छाइयाँ और बुराइयाँ संसर्ग (सहवास) से आती हैं।

सत्संगति शब्द का अर्थ (सत्=अच्छा, संगति=सम्पर्क) भले मनुष्यों के सम्पर्क में रहता है। जो लोग ईमानदारी से जीविका कमाते हों, जिनके मन, वचन और कर्म में कपट न हो, जो किसी को अकारण हानि न पहुँचाना चाहें और जो अच्छे मार्ग पर चलें, वे ही सज्जन हैं। उनके सम्पर्क में रहने से अच्छे गुण उत्पन्न होंगे। छोटे बच्चों को प्रायः माता-पिता और गुरुजनों के समीप रहकर अच्छी बातें सीखनी चाहिये। उन्हें गलियों में घूमने वाले आवारा लड़कों, बदमाश नौकरों और मक्कार नौकरानियों के फन्दे से दूर रहना चाहिये। बहुत लोग देखने में बड़े सज्जन और महात्मा मालूम होते हैं, बड़ी अच्छी-अच्छी ज्ञानपूर्ण बातें करते हैं, पर अवसर आने पर भोले बच्चों को बहकाकर ले जाते हैं और उनका जीवन बरबाद कर देते हैं। जब जीवन भर दूसरों के सम्पर्क में अवश्य रहना है, तब अच्छे लोगों के ही साथ क्यों न रहा जावे ?

सत्संगति से अनेक लाभ हैं। कहा तो यहाँ तक जाता है कि ऐसा कौन-सा अच्छा गुण है जो सत्संगति से प्राप्त न हो सके—"सत्संगतिः कथय किं न

करोति पुंसाम् ।" महात्मा तुलसीदास के मत से तो सत्संगति पाकर दुष्टों का भी सुधार हो जाता है—"सठ सुधरहिं सत्संगति पाये ।" सत्संगति के कारण ही छोटे और नीच लोग उन्नति करके महान् वन जाते हैं। आरम्भ में वच्चे की दशा कच्ची मिट्टी के समान होती है। कुम्हार कच्ची मिट्टी से जैसा चाहे वैसा वर्तन सरलता से वना लेता है, पर वही सूखा हुआ वर्तन टूट भले जावे, सुधर या विगड़ नहीं सकता। इसी प्रकार छोटे वच्चे पर कोई प्रभाव वड़ी आंसानी से डाला जा सकता है।

सत्संगति के ही कारण कीड़ा फूल के सहारे देवताओं और राजाओं के शीश पर पहुँच जाता है। सूखे बाँस के तिनके का मिसरी के साथ मिलकर विक जाना सत्संगति का ही प्रभाव है। सज्जनों से तो विरोध करने पर भी कल्याण ही वताया गया है, क्योंकि उनके विरोधी होकर हम भी उनके समान गुण अपने में लाने का प्रयत्न करेंगे। सभी महात्माओं और विद्वानों ने सत्संगति की महिमा का वर्णन किया है। सज्जनों को चलता-फिरता तीर्थ वताया गया है, जो लोगों को घर वैठे पवित्र करते फिरते हैं।

सत्संगति के लाभों के साथ-साथ वुरी संगति की हानियों पर भी विचार करना चाहिए। विना उसके सत्संगति का महत्व समझ में नहीं आवेगा। एक सुलफा पीने वाला साधु अगर गाँव में आ जाता है तो आधे लोगों को सुलफा पीना सिखा देता है। यदि उनका सुधार करने में दूसरा महात्मा वर्षों व्यतीत कर दे, तव भी सफल नहीं हो सकता। एक ही वायु जैसे-जैसे स्थानों पर होकर जाती है, वैसा ही प्रभाव ग्रहण करती है। रहीम ने संगति का वड़ा सुन्दर तुलनात्मक वर्णन किया है—

> कदली, सीप, भुजंग मुख एक स्वांति गुंन तीन,
> जैसी संगति वैठिये वैसे ही गुन दीन।

अर्थात् एक स्वांति की वूँद अगर केला में पड़े तो कपूर वन जाती है, सीप में पड़े तो मोती वन जाती है और साँप के मुँह में पहुँचे तो विष वन जाती है। जैसी संगति करो वैसा ही गुण आता है। एक वात और है—वुरी वातें सिखाने के साधन न होते हुए वे जल्दी और अधिक मात्रा में आ जाती हैं, जवकि सद्-गुणों का प्रचार होते हुए भी लोग उनसे हीन रह जाते हैं।

सत्संगति के द्वारा दुष्ट लोगों का सुधार होने के विषय में दो विचार हैं : कुछ लोगों का कहना है कि दुष्टों का सुधार असम्भव है। उनको समझाना अपना समय नष्ट करना है। इसी भाव को लेकर महात्मा सूरदास ने कहा है—

पाहन पतित बान नहिं बेधत रीतौ करत निषंग,
सूरदास खल कारी कामरि चढ़त न दूजौ रंग।

अर्थात् जिस प्रकार काले कम्बल पर कोई रंग नहीं चढ़ता, उसी प्रकार बुरे लोगों पर सज्जनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। पर तुलसीदास आदि महात्मा इस विचार से सहमत नहीं। उनके विचार से दुष्टों का सुधार कठिन भले ही हो पर असम्भव नहीं है। महात्मा गांधी भी इसी प्रकार का विचार रखते थे। उनका कहना था—"पाप से घृणा करो, पापी मनुष्य से नहीं। प्रेम के द्वारा उसका सुधार करो। ऐसा कोई भी बुरा मनुष्य नहीं है, जो प्रेम की लगन के साथ सुधर न सके।"

विचार करने पर महात्मा गांधी का मत ठीक जान पड़ता है। इतिहास इसका साक्षी है कि सन्तों और साधु पुरुषों के सम्पर्क से बड़े-बड़े हिंसक मनुष्य भी क्षणमात्र में सुधर गये हैं। कमी आत्म-शक्ति की है जो दुष्टों पर किसी का प्रभाव नहीं पड़ता। अंगुलिमाल एक भयङ्कर डाकू था। जो भी उसके निवास-स्थान के सामने होकर निकलता था, उसे वह बिना मारे नहीं छोड़ता था। जब सारी प्रजा अंगुलिमाल के अत्याचारों से त्राहि-त्राहि कर उठी तो महात्मा गौतम बुद्ध अकेले ही पात्र-चीवर लेकर उस ओर चले, जिधर अंगुलिमाल का निवास-स्थान था। अंगुलिमाल ने जब उन्हें देखा तो मारने दौड़ा, पर गौतम की योग-शक्ति से उसकी गति ही रुक गई। गौतम की सात्विकता का उस पर इतना प्रभाव पड़ा कि वह संन्यासी बनकर उन्हीं के साथ चला आया।

बाल्मीकि ऋषि, जिन्होंने संस्कृत के आदि-काव्य रामायण की रचना की थी, पहले लूटमार करने वाले बहेलिये थे। एक साधु ने उनसे कहा कि मुझे मारने से पहले अपने घर वालों से पूछ आओ कि तुम्हारे पाप में कौन-कौन सम्मिलित होगा ? बाल्मीकि के पूछने पर जब सब ने मना कर दिया तो वे

३१. परिश्रम का महत्व

रूपरेखा—

१. परिश्रम मानव-जीवन का आधार है।
२. परिश्रम से लाभ।
३. कुछ आलसियों की उक्तियाँ।
४. कुछ उदाहरण।
५. परिश्रम के प्रति श्रद्धा की आवश्यकता।

मानव की असभ्य अवस्था से लेकर आज तक सब ने परिश्रम किया है। बिना परिश्रम के न तब जीना सम्भव था और न अब। तब और अब में इतना अन्तर अवश्य हो गया है कि पहले अपने आप परिश्रम करना अनिवार्य था; अब बहुत से काम दूसरों के परिश्रम से भी हो जाते हैं। किसी भी वस्तु को ध्यान से देखा जावे तो उसके मूल में मानव का अपार परिश्रम दिखाई देगा। प्रकृति की प्रचण्ड शक्तियों ने सदैव मनुष्य को परिश्रम करने के लिये विवश किया। मानव-सभ्यता का विकास उसके परिश्रम का बहुत बड़ा इतिहास है। गगन-चुम्बी अट्टालिकाएँ, बड़े-बड़े कारखाने, लम्बी-चौड़ी सड़कें, विशाल ग्रन्थ सब परिश्रम का ही फल है। विज्ञान, जो आज मानव-जीवन का एकमात्र आवश्यक सहारा बन गया है, परिश्रम की ही देन है। एक-एक आविष्कार के लिए लोगों को कितना-कितना परिश्रम करना पड़ा होगा, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति को पग-पग पर परिश्रम की महत्ता का ज्ञान सदैव होता रहता है। जो विद्यार्थी पढ़ने में परिश्रम नहीं करता, वह असफल हो जाता है, जबकि उसका परिश्रमी साथी अच्छे अङ्कों से उत्तीर्ण होता है। परिश्रम करने वाले किसान की पैदावार सारा घर भर देती है, जबकि उसी की मेंड के खेत वाले परिश्रमहीन किसान का बीज भी नहीं लौटता। जो अध्यापक परिश्रम से छात्रों को पढ़ाता है, उसकी सदैव उन्नति और प्रशंसा होती है, जबकि परिश्रम न करने वाला एक दिन निरादर के साथ बाहर निकाल दिया जाता है। जो वकील मुकदमों में परिश्रम करता है, उसकी प्रैक्टिस दिन दूनी

बढ़ती है, जबकि परिश्रम न करने वाले मक्खियाँ मारा करते हैं। इस प्रकार परिश्रम जीवन के प्रत्येक अङ्ग में सफलता का ठेकेदार बना हुआ है।

परिश्रम करने वाले का सभी आदर करते हैं और उसके भविष्य के लिये अनेक शुभकामनाएँ प्रकट करते हैं। परिश्रमशील व्यक्ति में एक प्रकार का आत्म-विश्वास सा हो जाता है, जिससे उसे कोई भी कठिन काम करने में हिचक नहीं रहती। परिश्रमी व्यक्ति में आत्म-बल बढ़ता है और सन्तोष उत्पन्न होता है। उसके मन में किसी प्रकार की बेचैनी नहीं रहती। परिश्रम करने वाला मनुष्य अपने आस-पास के असंख्य लोगों की अनजाने ही सहायता करता है। उतनी प्रेरणा सैकड़ों उपदेशक नहीं दे सकते, जितनी वह अपने परिश्रम-पूर्ण जीवन के द्वारा देता है।

बहुत से लोग ऐसे भी हैं जो परिश्रम से भागते हैं और शारीरिक सुख को ही जीवन का लक्ष्य समझते हैं। ऐसे लोग भाग्य के गीत बहुत गाते हैं। उनका कहना है कि अगर भाग्य में है तो ईश्वर छप्पर फाड़कर देगा और अगर भाग्य में नहीं है तो लाख परिश्रम करने पर भी काम पूरा नहीं होता। ऐसे लोग बाबा मलूकदास का यह दोहा बहुधा कहा करते हैं :—

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम,
दास मलूका यूँ कहै, सबके दाता राम।

वातस्व में जो लोग कामचोर और आलसी होते हैं, वे ही ऐसी बातें करते हैं; परिश्रमी मनुष्य तो कभी हाथ पर हाथ रखकर बैठ ही नहीं सकता। असफल होने पर जहाँ भाग्यवादी लोग भाग्य को कोसते और ईश्वरीय क्रोध की दुहाई देते हैं, वहाँ परिश्रमी लोग अपने काम में कोई अभाव या त्रुटि जानकर दूने वेग से लग जाते हैं और सफलता एक दिन उनके चरण चूमती है। जो परिश्रमी नहीं हैं, वे ही दूसरों के सहारे जीने की कामना करते हैं। यह माना कि ईश्वर सब को सब कुछ देता है, पर परिश्रम करना तो मनुष्य का कर्तव्य है। अङ्गरेजी की एक कहावत कितनी उत्तम है—Heaven helps those who helps themselves अर्थात् विधाता उन्हीं की सहायता करता है, जो अपनी सहायता स्वयं करते हैं। इसलिए आलस्य को जीवन के लिए घातक मानकर दूर रहना चाहिए।

आज तक जितने भी महापुरुष हुए हैं या बड़े-बड़े कार्य सम्पन्न हुए हैं, वह सब परिश्रम का पुरस्कार है। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, स्वामी रामतीर्थ, कालिदास अपने परिश्रम के द्वारा ही इतने महान् बने हैं। व्यापार के क्षेत्र में बिरला, टाटा, डालमिया आदि की जो प्रसिद्धि है, उसके मूल में भी परिश्रम ही वर्तमान है। भारत की स्वतन्त्रता महात्मा गांधी के अथक परिश्रम की ही देन है। हमारे प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू प्रातः ८ बजे से रात के ३ बजे तक परिश्रम करके ही विश्व की राजनीति में इतना सम्मानपूर्ण स्थान पा सके हैं।

परिश्रम के विषय में एक कहानी प्रचलित है:—"एक राजा अपने शत्रु से हार गया और साधु का वेश बनाकर वनों में मारा-मारा फिरने लगा। अपना राज्य वापिस लेने का उसमें साहस नहीं रहा था। एक बार वह एक झोंपड़ी में लेटा था। उसने देखा एक चींटी अपने से कई गुने कीड़े को लेकर दीवार पर चढ़ रही थी। उस का बिल थोड़ी दूर रह गया था कि बोझ न संभाल सकने के कारण वह कीड़े सहित नीचे गिर पड़ी। उसने तनिक भी देर न लगाई और कीड़े को लेकर पुनः चढ़ने लगी। अब की बार वह थोड़ी दूर ही पहुँचकर नीचे गिर पड़ी। इस प्रकार वह कई बार नीचे गिरी किन्तु उसने हिम्मत न हारी और चढ़ने का उद्योग जारी रखा। राजा को उसकी मूर्खता पर हँसी आ गई कि देखो यह व्यर्थ जान खपा रही है। तभी राजा ने देखा कि चींटी कीड़े के सहित सकुशल अपने बिल तक पहुँच गई। अब राजा को अपने ऊपर बड़ी लज्जा और ग्लानि हुई। उन्होंने सोचा—"मैं इस चींटी से भी गया-बीता हूँ, जो एक बार की असफलता से ही हिम्मत हार बैठा।' राजा ने परिश्रम से सेना एकत्र की और एक दिन अपने शत्रु को पराजित करके राज्य छीन लिया।"

आज बहुत से लोग सफलता तो चाहते हैं, पर परिश्रम करना अपनी शान के विरुद्ध समझते हैं। वे लोग यह नहीं समझते कि सफलता तो परिश्रम की दासी है। एकाध बार कोई बिना परिश्रम भले ही सफल हो जाये, पर अधिकांश में परिश्रम बिना कोई भी सफलता स्वप्न ही रहेगी।

३२. मेले का वर्णन

रूपरेखा—

१. मेलों का प्राचीन महत्व।
२. समय, स्थान और निमित्त।
३. तैयारियाँ और मार्ग का वर्णन।
४. मेले की सजावट।
५. कोई विशेष घटना।
६. मेलों का मानव-जीवन पर प्रभाव।

प्रत्येक देश और जाति में मेलों का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व होता है। मेले एक प्रकार से मनुष्य की सभ्यता के प्रारम्भिक दिनों के प्रतीक हैं। पहले जबकि यातायात के साधन नहीं थे, समाचार भेजने की सुविधा नहीं थी, तो लोग मेलों के रूप में ही एक दूसरे से मिल लिया करते थे। आवश्यक वस्तुएँ खरीदने और मनोरंजन में भी मेलों से बड़ी सहायता मिलती थी। आज जबकि संसार बहुत आगे बढ़ गया है, समय और दूरी सिकुड़ते जा रहे हैं, मेलों का महत्व उतना नहीं रहा है, पर ग्रामीण जनता को मेलों की आवश्यकता आज भी उतनी ही है, जितनी कि पहले थी, क्योंकि उसे आज के वैज्ञानिक युग की सुविधाएँ सुलभ नहीं हैं। इसीलिए मेलों में नागरिकों की अपेक्षा ग्रामीण-जन अधिक रुचि रखते हैं।

प्रत्येक मेला किसी तीर्थ-स्थान, पवित्र नदी के किनारे या किसी महापुरुष के स्मृति-स्थल पर लगता है। कुछ मेलों का व्यापारिक महत्व भी होता है। ऐसे मेले प्रायः पशुओं के क्रय-विक्रय के लिये विशेष रूप से होते हैं, क्योंकि उनका प्रत्येक नगर-गाँव में पहुँचना कठिन है। हमारे समीप रामघाट में दशहरा का मेला लगता है। यह मेला गंगा स्नान के उद्देश्य से लगता है। बताया जाता है कि ज्येष्ठ शुक्ला दशमी को ही गंगा जी पृथ्वी पर आई थीं, अतः उसी स्मृति में प्रति वर्ष गंगा-तट पर मेला लगता है। इस दिन गंगा-स्नान का विशेष महत्व बताया जाता है। उस एक दिन में गंगा किनारे हजारों जगह मेले लगते होंगे। गंगा का भारतीय संस्कृति और हिन्दू धर्म में एक

विशेष स्थान माना गया है। इसके जल को लोग अमृत के समान पवित्र समझते हैं। गंगा का तट प्राचीन काल से ही ऋषि-मुनियों के निवास के लिए प्रसिद्ध रहा है। रामघाट का ऐतिहासिक महत्व यह बताया जाता है कि यहाँ भगवन् कृष्ण के बड़े भ्राता बलराम जी ने स्नान-पूजन-दान किया था, तभी से इसका नाम रामघाट पड़ा। वैसे भी उत्तर भारत अधिकांश तीर्थ एवं नगर गंगा के ही तट पर स्थित हैं।

रामघाट हमारे यहाँ से १३ मील है, अतः वहाँ जाने के लिए इतनी अधिक तैयारी नहीं करनी पड़ती कि जिसमें कई दिन लगें। फिर भी दो-चार दिन के खाने का प्रबन्ध तो करना ही होता है। वैसे तो अधिकांश लोग बैलगाड़ियों से जाते हैं, पर मेरे परिवार के लोग तो मोटर से जाना ही पसन्द करते हैं। लगभग ५ मील सड़क कच्ची है। उसमें बैलगाड़ियों पर बैठे लोगों पर बुरी तरह धूल आती है, दूसरे बैलगाड़ी पहुँचती भी देर में है।

माता जी को यह पसन्द नहीं है कि दिन के दिन लौट आयें। वे दशहरे से एक दिन पहले जाती हैं और दो दिन बाद आती हैं। वहाँ हम लोगों का एक विधवा ब्राह्मणी से पुराना परिचय है। जब कभी जाते हैं, वहीं ठहरते हैं। इस बार यह निश्चित किया गया है कि प्रातःकाल ही पहली मोटर से चल दें, अन्यथा धूप में परेशानी रहेगी। वहाँ खाने का सामान पहले तो अच्छा नहीं मिलता, दूसरे बहुत महँगा मिलता है, इसलिए माता जी ने आटा, घी, दाल, शाक आदि यहीं से बाँध लिए थे। बर्तन तो मिल ही जाते हैं और गर्मी का बिस्तर कोई बड़ा नहीं होता। इस प्रकार थोड़ा सा सामान लेकर हम लोग मोटर के अड्डे पर पहुँचे। हम कुल पाँच व्यक्ति थे—माता जी, पिता जी, दादी और हम दो भाई-बहिन। हमारा अनुमान था कि उस समय मोटर खाली होगी, पर वह अलीगढ़ से ही भरी हुई आई। माता जी और दादी के लिए बड़ी कठिनाई से अपर क्लास में बैठने की व्यवस्था करके हम लोग लोअर क्लास में ही लद गये।

मार्ग में बहुत से यात्री जा रहे थे, जिनमें अधिक संख्या पैदल चलने वालों की थी। वे लोग धूप तेज होने से पहले ही पहुँचने के विचार से जल्दी चल दिए थे। जाने वालों में स्त्रियों की संख्या अधिक थी, जो दस-पाँच की टोली

में भजन गाती जा रही थीं। बहुत से लोग साइकिलों पर भी थे। सबसे
अच्छा दृश्य तो आगे-पीछे धीरे-धीरे चलती हुई चार-पाँच ऊँटगाड़ियों का लगा,
जिनका हाँकने वाला और यात्री सब सो रहे थे। ऊँट अपनी इच्छा से जुगाली
करते चले जा रहे थे। जब मोटर कच्ची सड़क में पहुँची तो धक्के अधिक
लगने लगे और उसकी चाल अपेक्षाकृत धीमी हो गई। हवा कुछ ऐसी चल
रही थी कि धूल उड़कर ऊपर को ही आती थी। रामघाट पहुँचते-पहुँचते
तमाम कपड़े और चेहरा धूल से बुरी तरह ढक गया।

यद्यपि मेला नवमी-दशमी दो ही दिन रुकता है, फिर भी काफी दूकानें
आई थीं। बहुत सी दूकानें तो स्थायी थीं, जिन पर रामघाट के व्यापारी बैठते
हैं, पर बाहर से आयी अस्थायी दूकानें भी कम नहीं थीं। इधर से घुसते ही चरख
वालों की लाइन थी, जिन पर बच्चे, जवान और वृद्ध आनन्द ले रहे थे।
फिर सस्ते ढंग का मीठा और पूड़ी-पराठा बनाने वालों की दूकानें थीं। बिसा-
तियों की दूकानें सबसे अधिक सजी थीं, वहाँ भीड़ भी अच्छी थी। सबसे
अधिक भीड़ सन्दूकों वाले की दूकान पर थी। किताब बेचने वालों की भी कई
दूकानें थीं। एक दूकानदार हाथरस के खिच्चो आटे वाले के रसिया बड़े मधुर
कण्ठ और आकर्षक ढंग से गा रहा था। उसकी बिक्री भी खूब थी। अनेक
आदमी बच्चों के लिए बाँसुरियाँ, फुँकने, खिलौने, औरतों के चुटीले आदि
टाँगे घूम रहे थे। चाट बेचने वालों की भी कमी नहीं थी। गंगा-तट पर सबसे
अधिक संख्या प्रसाद बेचने वालों की थी।

सभी मेलों में एक न एक दुर्घटना हो ही जाती है। हमारा देश अभी
काफी पिछड़ा हुआ है। यहाँ की नारियाँ आभूषणों से अब भी बुरी तरह
चिपकी हुई हैं। वे मेले-हाट में भी उनको पहिनकर जाना शान समझती हैं।
एक घर की दो बहुएँ जो देवरानी-जेठानी थीं, चाँदी-सोने के आभूषणों से
लदी हुई एक जगह नहा रही थीं। सहसा देवरानी को किसी ने पैर पकड़कर
खींचा। उसने चिल्लाकर जेठानी का हाथ पकड़ लिया। जब तक किनारे के
लोगों का ध्यान उधर गया और वे सहायता के लिये दौड़े तब तक दोनों जल
में डूब चुकी थीं। गोताखोर लगाये गये, नाव पर चढ़कर जाल डलवाये गये,
पर उनका कहीं पता न लगा। अगले दिन दोनों की आभूषण-रहित लाशें

तीन मील आगे एक कुण्ड में मिलीं। बताया गया कि उन्हें पनडुब्बे खींच ले गये थे।

मेलों का चलन परस्पर मिलने और समीप आने के लिये ही किया गया था, किन्तु आजकल लोग अपनी ही भाग-दौड़ में लगे रहते हैं, किसी से बात नहीं करते। मेलों में लोग दूसरों को देखकर बहुत कुछ सीखते हैं। दूसरों के साथ होने वाली दुर्घटनाएँ भी बहुत कुछ सिखा जाती हैं। पर मेलों का वास्तविक प्रभाव तो मानव-समूह को देखकर भाई-चारे का भाव उत्पन्न करना है।

३३. मेरा मनपसन्द खेल (कबड्डी)

रूपरेखा—

१. खेलों में रुचि की अनिवार्यता।
२. भारतीय खेलों में कबड्डी का स्थान।
३. खेलने या ढङ्ग।
४. कबड्डी के लाभ।
५. चोट लगने की आशंका।

मानव ने जब से होश सम्भाला है, उसे खेलों में आकर्षण का अनुभव हुआ। सभ्यता की किसी भी सीढ़ी पर उसने खेलों का दामन नहीं छोड़ा है। आज भी संसार के सभी छोटे-बड़े देशों के सभ्य-असभ्य निवासी खेल को जीवन का आवश्यक अंग बनाये हुए हैं; यह बात दूसरी है कि बच्चों, युवकों और वृद्धों के खेल में थोड़ा बहुत अन्तर रहता हो। खेलों से मनोरंजन होने के साथ-साथ मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार की सुस्ती दूर भाग जाती है। शरीर स्वस्थ होता है, नयी जान आ जाती है सो अलग।

आजकल हमारे देश में दो प्रकार के खेल प्रचलित हैं—देशी और विदेशी, जिन्हें प्राचीन और नवीन नाम से भी पुकारा जा सकता है। दोनों में मोटा भेद यह है कि देशी खेल बिना किसी अतिरिक्त व्यय के खेले जा सकते हैं, जबकि विदेशी खेल काफी खर्चीले पड़ते हैं। फिर देशी खेलों के नियम भी विदेशी खेलों के समान जटिल नहीं होते। इसलिये भारत के लोगों को तो यहीं के खेल अनुकूल पड़ते हैं।

कबड्डी का खेल साफ कपड़े पहनने वाले, धूल से परहेज करने वाले और अपने शरीर में योरुप की आत्मा का अनुभव करने वाले बाबू लोगों को चाहे गँवारपन लगता हो, पर मुझे तो यह बेहद पसन्द है। यह नाजुक बाबुओं का खेल न होकर उठती जवानी के मस्त लोगों का खेल है। भारतीय खेलों में इसका अपना विशिष्ट स्थान है। खेल-प्रतियोगिताओं में इसे अवश्य स्थान दिया जाता है। गाँव में क्वार की चाँदनी देखकर जब कभी युवकों का मन उमंग भरता है, वे रबी के जुते हुए भुरभुरे खेतों की ओर कुलाँचें भरते हुए चल देते हैं।

भारतीय खेलों की जितनी भी विशेषताएँ हैं, कबड्डी में लगभग उन सब का समावेश है। भारतीय खेलों के निर्माताओं का ध्यान दौड़ने, कूदने, साँस रोकने और सावधान रहने की ओर विशेष रहा है। कबड्डी खेलने में उक्त सभी गुण खिलाड़ी में विकसित होते जाते हैं। कबड्डी खेलने का ढङ्ग ही कुछ इस प्रकार का है।

खिलाड़ी समान संख्या में दो ओर विभक्त हो जाते हैं। विदेशी खेलों की भाँति इसमें किसी खास संख्या का नियम नहीं है। खेलने वालों की संख्या जितनी ही अधिक होती है, खेल उतना ही जोरदार और मनोरंजक रहता है। बीच में एक रेखा खींचकर दोनों दल आमने-सामने खड़े हो जाते हैं। एक दल का एक खिलाड़ी 'कबड्डी-कबड्डी' कहता हुआ दूसरे दल की ओर दौड़ता है और उस दल के सदस्यों को छूने की कोशिश करता है। यदि वह किसी को छूकर खिंची हुई मध्य रेखा के इस पार आ जाता है तो वह छुआ हुआ व्यक्ति बैठ जाता है, जिसे 'मर जाना' कहते हैं। यदि दूसरे दल वाले उस 'कबड्डी-कबड्डी' कहने वाले खिलाड़ी को पकड़ लेते हैं तो वह मर जाता है और उसे बैठ जाना पड़ता है। एक बात और है कि यदि दूसरे दल वालों द्वारा पकड़ा जाने पर भी वह किसी प्रकार घिसटकर मध्य रेखा छू ले तो वे सब मर जाते हैं, जो उसे पकड़े होते हैं या जिन्हें वह छू चुका होता है। इसी प्रकार खेल आगे चलता रहता है। जिस दल के सब खिलाड़ी पहले मर जाते हैं, वह हार जाता है। दुबारा खेल चालू करने के लिये खिलाड़ी अपने स्थानों का परिवर्तन कर लेते हैं।

विदेशी खेलों का प्रभाव कबड्डी पर भी पड़ा है। नयी व्यवस्था में खिलाड़ियों के मरने और बैठ जाने की अपेक्षा विजयी दल का एक नम्बर मान लिया जाता है। जिस दल में जितने खिलाड़ी मरते हैं, विरोधी दल के नम्बर उतने ही बढ़ जाते हैं। जिस दल के नम्बर पहले एक निश्चित संख्या पर पहुँच जाते हैं, वही विजयी माना जाता है। इस नयी व्यवस्था से कबड्डी में अच्छाइयाँ-बुराइयाँ दोनों आई हैं। मरने और बैठ जाने वाले नियम के कारण हारने वाली टोली के खिलाड़ी दम पर दम कम होते जाते थे और विरोधी दल के खिलाड़ी को पकड़ लेने की सम्भावना मन्द पड़ती जाती थी। इस प्रकार हारती हुई टोली को अपनी दशा सुधारना बड़ा कठिन हो जाता था। नयी व्यवस्था के अनुसार खिलाड़ियों की संख्या पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। एक प्रकार से कहा जा सकता है कि यदि पुरानी व्यवस्था में गिरती हुई दशा को सुधारना कठिन था तो नवीन व्यवस्था में विजय प्राप्त करना मुश्किल है। फिर भी पुरानी व्यवस्था में खिलाड़ियों के जो जौहर प्रकाश में आते थे, वे नयी व्यवस्था में नहीं दिखाई देते।

कबड्डी खेलने के कई विशेष लाभ हैं, जिनके द्वारा यह मेरा प्रिय खेल बन गया है। इसमें तेज चाल से तुरन्त दौड़ने का व साँस रोकने का विशेष महत्व है। इन्हीं के सहारे शीघ्र दूसरे दल में पहुँचा और उस दल के खिलाड़ी को छूकर मध्य रेखा के इस पार आया जा सकता है। साँस रोकने से रक्त शुद्ध होता और दौड़ने से शरीर पुष्ट बनता है। बहुत से खिलाड़ियों द्वारा पकड़ लिये जाने पर जब पकड़ा हुआ व्यक्ति सब को खींचकर या सब से छूटकर मध्य रेखा छूने की कोशिश करता है तो उस पर रस्सा खींचने का सा बल पड़ता है। सावधानी और फुर्ती तो इस खेल की जान ही है। एक व्यक्ति अनेक के बीच जाकर उन्हें छकाने और सकुशल लौट आने की चेष्टा करता है, यह कम साहस का कार्य नहीं है। इधर दूसरी ओर वाले खिलाड़ी भी कम सावधान नहीं रहते। उनकी निगाह उसी खिलाड़ी पर जमी रहती है। ज्यों ही वह उनके बीच फँसा कि वे उसे चारों ओर से दबोच लेते हैं।

इस खेल में जो भी असुविधाएँ हैं, वे यहाँ के लोगों को अनुभव नहीं होतीं। पहली बात यह है कि इसमें कोई कपड़ा नहीं पहना जा सकता,

क्योंकि उसके फट जाने का भय रहता है। पर भारत की जलवायु ऐसी है कि यहाँ जनवरी-दिसम्बर में भी मात्र लंगोटी या अंडरवियर पहनकर खेला जा सकता है। दूसरी असुविधा मिट्टी में सनने की कही जा सकती है, सो यहाँ तो मातृभूमि की रज में लोट-लोटकर बड़े होने में ही गौरव माना जाता रहा है।

एक आशंका चोट लगने की भी हो सकती है, सो थोड़ी बहुत तो वह सब खेलों में रहती ही है। फिर चोट लगने मात्र के भय से इतने सुन्दर खेल के आकर्षण को दबाया भी तो नहीं जा सकता।

३४. सादा जीवन उच्च विचार

रूपरेखा—

१. जीवन के भिन्न-भिन्न स्तर।
२. सादा जीवन के लाभ।
३. जीवन की सादगी और विचारों की उच्चता का सम्बन्ध।
४. भारतीय आदर्श।
५. वर्तमान दशा।

संसार में भाँति-भाँति के विचारों वाले लोग रहते हैं (मुण्डे-मुण्डे मति-र्भिन्ना)। सबके काम, व्यवहार, रहन-सहन एवं वस्त्रों में भी भिन्नता के दर्शन हो सकते हैं। किसी ने अपनी आवश्यकताओं को कम करते-करते एक लंगोटी और कमण्डल तक ही सीमित कर लिया है तथा किसी ने अपनी आवश्यकताएँ इतनी बढ़ा रखी हैं कि बड़े-बड़े महल, सैकड़ों दास-दासियाँ तथा असंख्य धन-राशि भी उन्हें कम पड़ती है। भारतवर्ष में भी सब प्रकार का जीवन बिताने वाले लोग मिल सकते हैं, पर यहाँ सादगी का जीवन ही सदा आदर की दृष्टि से देखा जाता रहा है। यहाँ के नेता महात्मा बनकर ही जनता की श्रद्धा प्राप्त कर सके हैं।

सादा जीवन के अनेक लाभ हैं। सादगी आवश्यकताओं को कम करती है और आवश्यकताओं की न्यूनता ही व्यक्ति को दुःख से छुटकारा दिलाकर सुख का द्वार खोलती है। यदि सभी व्यक्ति तपस्या करें, अर्थात् शक्ति भर उत्पादन

करें और त्याग से काम लें अर्थात् कम से कम वस्तुओं को उपयोग में लावें तो
कोई भी भूखा-नंगा नहीं रह सकता। सादा जीवन व्यतीत करने वाले का
शरीर स्वस्थ और स्फूर्तिमय रहता है। आराम और विलासिता से दूर रहने
के कारण उसमें शारीरिक कष्ट सहने की शक्ति बनी रहती है। सादगी से
शारीरिक लाभ के साथ-साथ आत्मा का भी उत्थान होता है। सादा जीवन
विताने वाले का मन शान्त एवं सात्विक हो जाता है। मन की उन्नति के लिए
सादगी पहली शर्त है। सादगी से रहने वाला सहज ही दूसरों के हृदयों में
अपने लिये सहानुभूति और आदर का स्थान बना लेता है। सादा जीवन
व्यतीत करने वाले में प्रेम, कोमलता और दया-भाव अपने आप आ जाते हैं।
ऐसा व्यक्ति जहाँ कहीं जाता है, वहाँ का वातावरण स्वर्ग समान वन जाता है।
सादगी से रहने वाला व्यक्ति कभी किसी काम के करने में लज्जा का अनुभव
नहीं करता, सादगी के वल पर वह अपने आपको एक साधारण मनुष्य जो सम-
झता है। इसके विपरीत ठाट-बाट का शानदार जीवन व्यतीत करने वाला
तनिक सा काम करने में अपनी वेइज्जती समझता है। उसे जरा-जरा से काम
के लिए नौकरों की आवश्यकता पड़ती है। यह निश्चित है कि जो आदमी अपने
आप कुछ काम नहीं करता वह दूसरों की कमाई खाता है। इसका वेद ने निषेध
किया है—

ईषा वास्य मिदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत्,
तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्यस्वित् धनम्।

(सारे संसार में ईश्वर व्याप्त है, इसलिये दूसरों का भाग छोड़कर खाओ एवं
किसी के धन को लालच की नजर से मत देखो।) इस प्रकार सादा जीवन
बिताने वाला अपना कमाया हुआ दूसरों के उपभोग के लिए छोड़कर परोपकार
और दान का पुण्य सहज ही पा लेता है।

सादा जीवन के साथ ही विचारों की उच्चता का मानों गठवन्धन है।
सादा जीवन के विना किसी का मन उच्च विचारों से आलोकित नहीं हो
सकता। सादा जीवन सात्विकता और सरलता को जन्म देता है, जो उच्च
विचारों के लिए अनुकूल भूमि का निर्माण करती हैं। यही कारण है कि ऋषि,
मुनि, महात्मा, विद्वान् एवं विचारक सादा जीवन विताना पसन्द करते हैं।

बाहरी टीम-टाम की छोटी से छोटी बातों को देखने का उन्हें अवसर ही कहाँ मिलता है ?

जीवन की सादगी का तात्पर्य अभाव एवं दरिद्रता से नहीं है। इसलिए एक समय रूखी-सूखी रोटी खाने वाले किसान, जंगल में पड़े रहने वाले कंजर और एक कमीज में जाड़ा बिताने वाले भिखमंगों का जीवन सादा नहीं कहा जा सकता। वे ऐसा अभाव या विवशता के कारण करते हैं। जब कभी अवसर आता है, वे शराब, भोजन और कपड़ों की चोरी करने से भी नहीं हिचकिचाते ! यही कारण है कि उनके विचार उच्च होने की तो क्या एक साधारण मनुष्य से भी गये बीते होते हैं। दरिद्रता में पलने पर भी उनका मन ठाटबाट के जीवन में जो रमता रहता है। सादा जीवन के लिए धनी होना कोई अनिवार्य शर्त नहीं है। गरीब आदमी भी अपनी सीमित आवश्यकताओं में सन्तोष करके विचारों को उच्चता की ओर मोड़ सकता है। अधिकांश विचारशील साधु-पंडित अकिञ्चन ही हुए हैं।

सदा से भारतीयों का आदर्श सादा जीवन ही रहा है। धर्मप्राण देश होने से यहाँ के लोगों ने मौज-मजा करने में कभी सन्तोष अनुभव नहीं किया। यहाँ बड़े-बड़े सम्राटों की अपेक्षा अकिञ्चन ब्राह्मणों का अधिक आदर किया जाता रहा है। मनु का विधान है कि राजा विद्याध्ययन करने वाले ब्रह्मचारी के लिए मार्ग छोड़कर अलग खड़ा हो जावे। इससे स्पष्ट है कि उस समय ठाटबाट से रहने वाले शासक की अपेक्षा एक विचारशील छात्र का अधिक आदर किया जाता था। वन में रहकर सादा जीवन बिताने वाले और उच्च विचारों को जन्म देने वाले तपस्वियों का ही शासन पर वास्तविक अधिकार होता था। यदि कोई राजा निरंकुश होकर प्रजा को पीड़ा पहुँचाता था, तो ये अकिञ्चन विचारशील उसे राजसिंहासन से उतार कर किसी अन्य सुपात्र को शासन सौंप देते थे। गौतम बुद्ध ने ठाट-बाट को लात मारकर जब सादगी का जीवन अपनाया तभी उनमें उच्च विचार उत्पन्न हो सके, जिनका प्रचार दूर देशों तक हुआ। महात्मा गांधी ऐसी विचारधारा को जन्म दे सके, जिसके बिना एक बूंद रक्त बहाये भारत स्वतन्त्र हो गया। इसका कारण भी उनका सादा और तपस्यापूर्ण जीवन ही बताया जाता है। स्वामी विवेकानन्द, परमहंस रामकृष्ण

महर्षि दयानन्द यदि ठाट-बाट के जीवन में ही उलझे रहते तो इतने उच्च विचारों को जन्म देना सम्भव नहीं था।

भारतीयों का प्राचीन आदर्श चाहे जो रहा हो, पर आज तो गंगा उल्टी ही बहती दीखती है। आज के विचारकों की दृष्टि में भारतीयों की परतन्त्रता का कारण यही सादगी अर्थात् जीवन से उदासीन रहना है। वे परलोक की चिन्ता और विचारों की उच्चता में ऐसे तल्लीन हुए कि बाह्य जीवन की अवनति उनका ध्यान नहीं खींच सकी, उनका आदर्श 'कोउ नृप होहु हमहिं का हानी' हो गया। साधारणतया इस बात में बल मालूम होता है, पर वास्तव में यह तर्क एकदम निःसार है। सादगी जीवन से उदासीन होने का उपदेश नहीं देती और विचारशीलता किसी भी देश को परतन्त्र नहीं बना सकती। भारत को परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ने का काम तो बाहरी ठाट-बाट पर मिटने वाले विचारहीनों ने ही किया था।